PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website : www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली,आगरा,गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर,भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक डॉ. भरत मिश्र 'प्राची' की अनुमति से डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने छपवाकर
गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से डिजीटल/पीडीएफ वितरित की।

ISSN 2321:0540

Impact Factor : 5.621

ISSN : 2321-0540
July-Sept. 2026

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैल्फेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

KANCHANLATA

कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Editor-in-Chief :
Dr. Bharat Misra 'Prachi'

Executive Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

KANCHANLATA
कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

वर्ष-11, अंक-3 जुलाई-सितम्बर / 2026 आईएसएसएन : 2321-0540

प्रधान संपादक
• डॉ. भरत मिश्र प्राची
विला-15, अशियाना ग्रीनस,
सीकर रोड, जयपुर, राजस्थान।

कार्यकारी संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी
हरियाणा-127021

प्रबंध-संपादक
• डॉ. वैशाली

डिजिटल-संपादक
• डॉ. रोहतास निमि

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक/परामर्श मंडल

• आशीष कुमार, गाजियाबाद
• डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर
• श्री शियोन छन श्यू, चीन
• डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. सुनीता शर्मा, ऑस्ट्रेलिया
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा
• लवलीन ग्रोवर, हरियाणा

1. 'कंचनलता' का प्रबंधन और सम्पादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'कंचनलता' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार, लेखकों के अपने हैं उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी हैं।
3. पत्रिका से सम्बन्धित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी (हरियाणा) न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक, मुद्रक, स्वामित्व कलावती देवी, डॉ. भरत मिश्र प्राची के वास्ते डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवा, गीना प्रकाशन, भिवानी (हरियाणा) से डिजिटल/पीडीएफ प्रकाशित किया।

नोट : इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें। : 8383042929

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **PRINCE KUMAR**
  UGC NET-JRF, History, Senior Researcher, University History Department, B.R.A.Bihar University Muzaffarpur, Bihar
- **Dr Kanta Verma**
  Assistant professor, Political science, Govt College Lanji Balaghat, District Balaghat, M.P.
- **Dr. Sainath Kabade**
  Assistant Professor, Department of Educational Social Sciences, NIE, NCERT, New Delhi.
- **Mr. Sagar Gopal Rathod**
  Assistant professor, School of Social Science, Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University, Maharashtra.
- **Dr (Smt.) Manjulata Kashyap**
  Professor (Economics),Govt.T.C.L.P.G. College Janjgir, Chhattisgarh
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi, Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **Dr. Tikaram Sarthi**
  Hasmukh, Lecturer, Govt H.S.S.Churteli, Dist. Sakti (Chhattisgarh)-495688
- **Dr. Atul Chand**
  Hod Defence & Strategic Studies/ ex Principal in-charge "Government Degree college Baluwakote Pithoragarh "Uttarakhand
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **Sneha Deepak Wankhede**
  Assistant professor Hindi Department, Rajkumar Kewalramani College Jaripatka Nagpur, Maharashtra
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला–बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वा.सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, पोस्ट जिला–धनबाद, झारखंड

- **डॉ. मीरा चौरसिया,** चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ., आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. श्रीकांत राठोड**
  सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, श्री शांतेश्वर शिक्षा संस्थान, श्री जी.आर. गांधी कला, श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम पी दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, जिला विजयपुर, कर्नाटक
- **डॉ. मंजू देवी**
  सहायक आचार्य श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुनीता सारस्वत**
  सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी झुंझनू, राजस्थान
- **प्रा. डॉ. बोईनवाड कृष्णा बाबुराव**
  सहा. प्रा. दिगंबरराव बिंदू कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भोकर. जिला नांदेड, महाराष्ट्र
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **श्रीराम**
  एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, बीकानेर

"कंचन लता" त्रैमासिक साहित्यिक, शोध पत्रिका में रचनाएं, लेख आदि भेजने संबंधी

नियम एवं दिशा-निर्देश

1. पत्रिका का स्वरूप

"कंचन लता" एक त्रैमासिक साहित्यिक, शोध पत्रिका है, जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं के साहित्य, संस्कृति, लोकचेतना एवं समकालीन विमर्श को मंच प्रदान करना है। पत्रिका में हिंदी सहित भारतीय भाषाओं की मौलिक एवं स्तरीय रचनाएँ डिजिटल/पीडीएफ रूप में प्रकाशित की जाएँगी।

2. प्रकाशन अवधि

पत्रिका वर्ष में चार बार प्रकाशित होगी—

1. जनवरी मार्च अंक 2. अप्रैल जून अंक
3. जुलाई सितंबर अंक 4. अक्टूबर दिसंबर अंक

3. स्वीकार्य रचनाएँ

पत्रिका में निम्न विधाओं की रचनाएँ स्वीकार की जाएँगी—

- कविता
- गीत / ग़ज़ल / नज़्म
- कहानी / लघुकथा
- लेख / निबंध
- शोध आलेख
- समीक्षा
- संस्मरण
- यात्रा-वृत्तांत
- साक्षात्कार
- लोक साहित्य
- अनुवाद साहित्य
- बाल साहित्य

4. भाषा संबंधी नियम

1. रचनाएँ हिंदी सहित किसी भी भारतीय भाषा में भेजी जा सकती हैं।
2. देवनागरी लिपि को प्राथमिकता दी जाएगी।
3. अन्य भारतीय भाषाओं की रचनाओं के साथ हिंदी अनुवाद, पीडीएफ संलग्न करना वांछनीय होगा।
4. भाषा शुद्ध, मर्यादित एवं साहित्यिक होनी चाहिए।

5. मौलिकता संबंधी नियम

1. भेजी गई रचना पूर्णतः मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।
2. किसी अन्य पत्रिका, वेबसाइट अथवा सोशल मीडिया पर प्रकाशित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाएँगी।
3. साहित्यिक चोरी (Plagiarism) पाए जाने पर रचना निरस्त कर दी जाएगी तथा लेखक उत्तरदायी होगा।

6. संपादकीय अधिकार

1. संपादक मंडल को रचना में आवश्यक संशोधन, संक्षेपण अथवा अस्वीकृति का पूर्ण अधिकार होगा।
2. संपादकीय निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा।
3. प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के निजी होंगे; पत्रिका संपादक मंडल का उनसे सहमत हो यह आवश्यक नहीं।

4. किसी भी विवाद में पत्रिका का निर्णय अंतिम होगा, न्याय क्षेत्र भिवानी हरियाणा होगा।

7. रचना भेजने की प्रक्रिया

1. रचनाएँ मंगल, यूनिकोड हिंदी फॉन्ट में टाइप कर भेजी जाएँ।

2. रचना के साथ लेखक का संक्षिप्त परिचय, पता एवं मोबाइल नंबर अवश्य भेजें।

3. शोध आलेखों में संदर्भ सूची अनिवार्य होगी।

4. रचनाएँ ईमेल अथवा व्हाट्सएप माध्यम से स्वीकार की जा सकती हैं।

8. प्रकाशन शुल्क / सहयोग राशि

1. पत्रिका साहित्य सेवा हेतु डिजिटल/पीडीएफ रूप में प्रकाशित की जाती है।

2. विशेषांक अथवा शोधांक हेतु सहयोग राशि निर्धारित हैं इसे दिए बिना शोध आलेख/प्रपत्र प्रकाशित नहीं किए जा सकते है।

3. सहयोग राशि वापस नहीं की जाएगी।

4. पत्रिका की हार्ड/प्रिंट कॉपी हेतु आप प्रकाशक से संपर्क करें।

9. कॉपीराइट नियम

1. प्रकाशित रचनाओं का प्रथम प्रकाशन अधिकार “कंचन लता” पत्रिका के पास सुरक्षित रहेगा।

2. पुनर्प्रकाशन की स्थिति में पत्रिका का उल्लेख करना अनिवार्य होगा।

10. सम्मान एवं प्रमाणपत्र

1. चयनित रचनाकारों को ई-प्रमाणपत्र / सम्मान पत्र प्रदान किए जा सकते हैं।

2. उत्कृष्ट रचनाओं को विशेष सम्मान हेतु चयनित किया जा सकता है।

11. निषेध

निम्न प्रकार की रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाएँगी—

- अश्लीलता फैलाने वाली सामग्री
- जातीय / धार्मिक विद्वेष उत्पन्न करने वाली सामग्री
- राष्ट्रविरोधी विचार
- मानहानिकारक अथवा आपत्तिजनक लेखन

12. संपर्क

कंचन लता

त्रैमासिक पत्रिका

- प्रधान संपादक : डॉ. भरत मिश्र प्राची, जयपुर, राजस्थान
- प्रकाशन/ संचालन स्थल
- गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड बोहल भिवानी हरियाणा

13. विशेष घोषणा

पत्रिका का उद्देश्य भारतीय भाषाओं एवं साहित्यिक मूल्यों का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार करना है। सभी साहित्यकारों, शोधार्थियों एवं पाठकों का सहयोग अपेक्षित है।

इस पत्रिका का प्रकाशन संस्था को प्राप्त अनुदान से या शोध आलेखों के प्रकाशन हेतु प्राप्त होने वाली राशि पर निर्भर करता है।

संपादकीय : शोध, जनभाषाएँ और डिजिटल युग : ज्ञान-परंपरा का विस्तृत क्षितिज

प्रिय शोधकर्ताओं, विद्वानों एवं पाठकों,

'कंचन लता' के 'जुलाई-सितंबर 2026 (डिजिटल अंक)' को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यह अंक भारतीय जनभाषाओं, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हो रहे शोध, चिंतन और सृजनात्मक विमर्श को एक सशक्त अकादमिक मंच प्रदान करने का विनम्र प्रयास है। हमारा विश्वास है कि शोध केवल ज्ञान के संकलन का माध्यम नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और मानवीय मूल्यों के निरंतर पुनर्पाठ की एक सृजनात्मक प्रक्रिया है।

नई शिक्षा नीति, डिजिटल प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), मुक्त अभिगम (Open Access) तथा वैश्विक ज्ञान-साझेदारी के इस युग में शोध की प्रकृति निरंतर परिवर्तित हो रही है। आज शोध केवल विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल माध्यमों ने ज्ञान को वैश्विक स्तर पर संवाद का विषय बना दिया है। ऐसे समय में शोध पत्रिकाओं की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है कि वे गुणवत्तापूर्ण, मौलिक, संदर्भ-सम्पन्न तथा नैतिक शोध को प्रोत्साहित करें।

'कंचन लता' का उद्देश्य भारतीय जनभाषाओं के साहित्य, लोक-संस्कृति, भाषा-विज्ञान, अनुवाद अध्ययन, आलोचना, शिक्षा, समाज, इतिहास, दर्शन तथा समकालीन विमर्शों से जुड़े शोध कार्यों को एक विश्वसनीय मंच प्रदान करना है। हमारा मानना है कि भारत की भाषाई विविधता उसकी बौद्धिक और सांस्कृतिक शक्ति है। प्रत्येक जनभाषा अपने भीतर लोकज्ञान, ऐतिहासिक अनुभव, सांस्कृतिक स्मृतियों और सामाजिक चेतना का अमूल्य भंडार समेटे हुए है। इन भाषाओं में किया गया शोध भारतीय ज्ञान-परंपरा को नई दृष्टि प्रदान करता है तथा राष्ट्रीय और वैश्विक अकादमिक विमर्श को समृद्ध बनाता है।

वर्तमान समय में शोध की गुणवत्ता, शोध नैतिकता (Research Ethics), मौलिकता (Originality) तथा संदर्भों की प्रामाणिकता पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। डिजिटल संसाधनों की सहज उपलब्धता ने शोध को सरल अवश्य बनाया है, किंतु इसके साथ साहित्यिक चोरी (Plagiarism), अप्रमाणित सूचनाओं तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के अनियंत्रित उपयोग जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इसलिए आवश्यक है कि शोधकर्ता आधुनिक तकनीकों का उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करें तथा वैज्ञानिक दृष्टि, आलोचनात्मक चिंतन और अकादमिक ईमानदारी को सर्वोच्च प्राथमिकता दें।

इस अंक में हिंदी एवं भारतीय जनभाषाओं से संबंधित विविध शोध आलेख, समीक्षाएँ और वैचारिक लेख सम्मिलित किए गए हैं। इन शोधपत्रों में साहित्य, भाषा, संस्कृति, लोक परंपरा, समकालीन विमर्श, शिक्षा, अनुवाद, सामाजिक परिवर्तन तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा से जुड़े विविध पक्षों का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। हमें विश्वास है कि ये शोध-आलेख शोधार्थियों, अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा स्वतंत्र शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे और आगे के अकादमिक अनुसंधान को नई दिशा प्रदान करेंगे।

शोध पत्रिका का उद्देश्य केवल शोधपत्र प्रकाशित करना नहीं है, बल्कि एक स्वस्थ बौद्धिक वातावरण का निर्माण करना भी है, जहाँ विचारों का स्वतंत्र आदान-प्रदान हो, मतभेदों का सम्मान हो तथा प्रमाण-आधारित निष्कर्षों को महत्व दिया जाए। 'कंचन लता' इसी दृष्टि से अकादमिक गुणवत्ता, निष्पक्ष संपादन, समालोचनात्मक दृष्टि और शोध की विश्वसनीयता को सर्वोपरि मानते हुए अपने प्रकाशन दायित्व का निर्वहन कर रही है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय भाषाओं में उच्चस्तरीय शोध को वैश्विक पहचान मिले। यदि हमारी जनभाषाओं में निहित ज्ञान, साहित्य और लोकबुद्धि का व्यवस्थित अध्ययन एवं दस्तावेजीकरण किया जाए, तो भारतीय ज्ञान-परंपरा विश्व के अकादमिक परिदृश्य में और अधिक प्रभावी ढंग से स्थापित हो सकती है। इस दिशा में शोध पत्रिकाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे नवाचार, विमर्श और ज्ञान-संवाद का सेतु बनती हैं।

हम इस अवसर पर सभी शोधार्थियों, लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय सहयोगियों तथा पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग और विश्वास से 'कंचन लता' निरंतर अपनी अकादमिक यात्रा को आगे बढ़ा रही है। हमें आशा है कि यह डिजिटल अंक शोध की नई संभावनाओं, गंभीर चिंतन और सार्थक बौद्धिक संवाद को प्रोत्साहित करेगा।

आइए, हम सब मिलकर भारतीय जनभाषाओं की समृद्ध ज्ञान-परंपरा को शोध के माध्यम से नई पीढ़ी तक पहुँचाने, अकादमिक उत्कृष्टता को सुदृढ़ करने तथा मानवीय मूल्यों पर आधारित ज्ञान-संस्कृति के निर्माण का संकल्प लें। यही शोध का उद्देश्य है, यही साहित्य का धर्म है और यही 'कंचन लता' की सतत साहित्यिक एवं अकादमिक साधना है।

-संपादक
संपादक मंडल
कंचनलता साहित्यिक एवं शोध पत्रिका
गुगनराम सोसायटी (रजिस्टर्ड), भिवानी, हरियाणा

विषयानुक्रम

नियम एवं दिशा-निर्देश 4

संपादकीय : शोध, जनभाषाएँ और डिजिटल युग : ज्ञान-परंपरा का विस्तृत क्षितिज 6

The Relevance of Indian Mythology in the Twenty-First Century: A Comparative Study of Amish Tripathi and Devdutt Pattanaik 11
Dr. Rekha Rani

प्रगतिशील भारत में नारी शक्ति के योगदान: 'विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों/अधिकारों के आधार पर' 16
विवेचना पाण्डेय

उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का अध्ययन
डॉ. नुपूर अग्रवाल 20

डॉ. बी. आर. अंबेडकर की पत्रकारिता में सामाजिक चेतना का विमर्श : 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' एवं 'जनता' का आलोचनात्मक अध्ययन 27
दिनेश कुमार
डॉ. नरेंद्र कुमार मिश्रा

भारतीय कला में सौंदर्य परख दृष्टिकोण 33
डॉ. संध्या पाण्डेय

मध्यप्रदेश में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति (15वीं विधानसभा के विशेष संदर्भ में) 36
अंजुलि शुक्ला
डॉ. एस.पी. शुक्ला

नई कहानी आंदोलन और कमलेश्वर 41
विनोद कुमार
डॉ. धनेश कुमार मीणा

बालकृष्ण शर्मा नवीन के काव्यों में राष्ट्रीय चेतना 45
डॉ. जे. सेन्दामरै

पंकज बिष्ट के कथा साहित्य में बेरोज़गारी की समस्या : युगबोध के संदर्भ में 48
डॉ. इंधु के वि
सरिगा जे

सपनों की होम डिलिवरी में बाज़ारवादी संस्कृति और मानवीय संकट : एक विश्लेषण 52
जोस्ना जोस

'अकाल में सारस' का धृतिसंकुल अभिगम 57
प्रो. (डॉ.) अशोक बाचुळकर

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकनात्मक अध्ययन 69
डॉ. विनोद पुंडीर
लवनीन ग्रोवर

Relationship between Personality Dimensions and Competitive Performance among School Basketball Players of Bikaner Division 75
Neetu
Dr. Surjeet Singh Kaswan

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में भू-राजस्व प्रणालियां और कृषक समुदाय : संरचनात्मक परिवर्तन एवं शोषण के आयाम 79
डॉ. शिव कुमार सिंह

साहित्यिक दृष्टि में इतिहास से परिचय 84
हर्ष वार्ष्णेय

हिंदी उपन्यासों में बदलता पारिवारिक मूल्य-महानगरों के संदर्भ में 87
आर.डी. निर्मला
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि

मेघदूतस्य यक्षिण्या: प्रोषितभर्तृकानायिकारूपेण समीक्षा 91
डॉ. डायालाल: मालदेभाई मोकरिया

Book review: Saurav Kumar Rai, Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, C. 1890–1950 96
Ankur Majumdar

देह का नक्सलवाद और प्रेम विवाह : स्त्री प्रतिरोध और सामाजिक संस्थाओं का विश्लेषण 103
एन. के. शिष्णा प्रकाशन

श्रीधर पाठक : हिंदी स्वच्छंदतावाद के प्रवर्तक 107
दीक्षा राय

विकसित भारत की परिकल्पना में उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहरों का योगदान 112
डॉ. जया नैथानी
गीता रावत

Beyond Monetary Stability: Role of Reserve Bank of India in the Post-Pandemic Era 117
Dr. Satyawan Jatain

उदारीकरण के बाद भारतीय राजनीति में सत्ता एवं सामाजिक न्याय का विश्लेषण 124
कुमुदनी कश्यप
डॉ. जुल्फिकार

गढ़वाल हिमालय में पर्यटन का सकारात्मक प्रभाव (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन) 127
डॉ. विक्रम सिंह

Critical Evaluation Of Senior Secondary (Class 12) English Textbooks: A Study Based On Students' Responses 133
Mr. Vinod Kumar
Mani Saluja

शिवाजी सावंत के मराठी से हिंदी में अनूदित प्रमुख उपन्यासों में वंचितों के प्रति संवेदना और संघर्षशील जीवन 140
अनुराधा

गीतांजलि श्री का परिचय और व्यक्तित्व 144
दीपिका श्रीमाली

संबंधों की त्रासद नियति 'रेहन पर रग्घू' 149
राहुल वर्मा

अरुण कमल के काव्य में समय के तीन आयाम : स्मृति, यथार्थ और संभावना 154
डॉ. नीतू बाला

औद्योगीकरण और श्रमिक परिवारों के जीवन-स्तर में परिवर्तनः हनुमानगढ़ जिले का एक भौगोलिक विश्लेषण 157
मुकेश कुमार
डॉ. बबिता शर्मा

डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में विद्रूप संवेदनाओं से मुक्ति का स्वर एवं मानवीय सरोकार 164
प्रशांत चौरसे

मेहरून्निसा परवेज के कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श (कानीबाट व जंगली हिरणी के विशेष सन्दर्भ में) 168
मनोज गर्ग

ग्रामीण महिलाओं में शिशु पोषण एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता : एक समीक्षात्मक अध्ययन 173
डॉ. श्वेता व्यास
निर्मला तिवाड़ी

डॉ. विवेक द्विवेदी के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श 181
ममता कुमारी गोस्वामी
डॉ. शक्ति कुमार द्विवेदी

Patriarchal Restrictions and the Emergence of Female Impersonation in Haryana's Saang Folk Theatre: The Intensification of Sociocultural Constraints from the Manusmriti to the British Colonial Period 189
Nitin

Linguistic Diversity as Unity: A Theoretical Exploration of Bharatiya Bhasha Pariwar 197
Dr. Pushpita Dasgupta

The Role of Physical Activity and Healthy Lifestyle in Enhancing Happiness and Life Satisfaction 204
Amirah Kaisar Parvez Bagwan
Dr. Radha Rani Sain

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में चित्रित नारी दृष्टि 211
डॉ. ए. व्हि. सूर्यवंशी

हरियाणा में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं का राजनीतिक नेतृत्व : प्रतिनिधित्व, निर्णय-निर्माण और सशक्तीकरण का अध्ययन 217
पूजा शर्मा
डॉ. राकेश रोहिला

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

The Relevance of Indian Mythology in the Twenty-First Century: A Comparative Study of Amish Tripathi and Devdutt Pattanaik

Dr. Rekha Rani
Assistant Professor English
SBS College Of Law, Rohtak Haryana

Abstract

This paper looks at why Indian mythology has found such a large new audience in the twenty-first century by comparing two of its most visible contemporary voices, Amish Tripathi and Devdutt Pattanaik. The two writers are often mentioned in the same breath, but they are doing quite different work with the same inherited material. Tripathi turns myth into genre fiction: his Shiva Trilogy and Ram Chandra Series strip the gods of their miracles and rebuild them as flesh-and-blood figures who earn divinity through action, set inside fast-paced narratives that smuggle in present-day anxieties about terrorism, ecological collapse, and social exclusion under the cover of an ancient setting. Pattanaik, by contrast, works mostly outside fiction, using illustrated retellings, newspaper columns, and management books to treat myth as a diagnostic tool, a way of reading what a culture believes about itself, and increasingly a resource for corporate leadership, governance, and gender studies. Pattanaik has himself drawn a sharp line between mythological fiction, the genre Tripathi practises, and mythology proper, the interpretive discipline he identifies with. This paper takes that distinction as its organising idea, tracing how each writer humanises the gods, which present-day anxieties each smuggles into ancient material, and what their shared popularity suggests about the place of indigenous belief systems in a globalised, English-reading Indian middle class. It argues that Tripathi and Pattanaik represent two different answers to the same underlying question, whether inherited myth can still do useful work in a modern, secular, market-driven society, and that their combined popularity suggests the answer, for a very large Indian readership, is yes.

Keywords : Indian mythology, mythological fiction, Amish Tripathi, Devdutt Pattanaik, Shiva Trilogy, Hindu epics, cultural relevance, retelling, comparative literature, mythography

Introduction

Walk into any airport bookstore in India today and the mythology shelf is one of the busiest in the shop. Gods, demons, and epic heroes who once lived mainly in temple discourse, television serials, and school textbooks now turn up as protagonists in thrillers, business manuals, illustrated picture books, and podcast series. This is not simply nostalgia dressed up in a new cover. Writers working in this space are doing something more deliberate: taking material that Indian readers already half-know and using it to think through questions that belong squarely to the present, questions

about leadership, gender, ecology, and what it means to hold on to an indigenous worldview inside a globalised economy. Amish Tripathi and Devdutt Pattanaik are the two names most consistently attached to this revival, and putting them side by side shows two quite different strategies for making old material feel urgent again.

Amish Tripathi left a career in financial services to write The Immortals of Meluha (2010), the first volume of what became the Shiva Trilogy, followed by The Secret of the Nagas (2011) and The Oath of the Vayuputras (2013). The premise is euhemeristic: Shiva is not a cosmic deity from the start but a Tibetan tribal chief who migrates into the fictional land of Meluha, a stand-in for the Indus Valley Civilization, and is gradually recognised as the prophesied Neelkanth through his actions rather than his birth. Scholars who have studied the trilogy closely note that its plot, built around a substance called Somras whose production depletes a sacred river, causes a seasonal plague, and physically deforms the outcast Naga community, reads less like a historical reconstruction of the Bronze Age than a commentary on twenty-first-century concerns: ecological damage, biotechnology, terrorism, counter-terrorism, and the politics of ethnic othering (Twenty-first century imagination in Amish Tripathi's Shiva Trilogy, 2020). The trilogy's politics around Somras eventually escalate into war and an atomic-style detonation, a detail several critics have read as a direct gesture toward contemporary nuclear anxiety rather than anything drawn from the Puranic sources Tripathi is nominally adapting. Tripathi followed the Shiva books with the Ram Chandra Series, which performs a similar operation on the Ramayana, again presenting its divine figures as humans whose reputation for divinity has to be earned scene by scene.

Devdutt Pattanaik took a different route into the same territory. Trained and formerly employed as a medical doctor, with more than a decade spent inside the healthcare and pharmaceutical industry, he moved into mythology writing full time and has since produced more than fifty books along with well over a thousand newspaper columns (Wikipedia, 2026). His best-known titles, among them Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata, Sita: An Illustrated Retelling of the Ramayana, and Business Sutra: A Very Indian Approach to Management, are not written as thrillers or fantasy adventures. They are closer to annotated retellings, often illustrated by Pattanaik himself, in which the narrative is repeatedly interrupted by his own commentary on what a given episode reveals about Indian ways of thinking. His later books, including Leader: Fifty Insights from Mythology, push this interpretive habit further outward, applying stories about Krishna, Rama, and figures from Greek and Norse tradition directly to questions of workplace leadership, succession, and ethical decision-making (Pattanaik, 2017).

Pattanaik has himself supplied the clearest statement of what separates his project from Tripathi's, and it is worth taking seriously as an organising distinction rather than treating the two writers as interchangeable examples of one mythology boom. In an interview given after his own books had become bestsellers alongside the Shiva Trilogy, Pattanaik drew a line between mythological fiction, which he described as fantasy built on familiar traditional tales, and mythology proper, which he defined as the study of how a culture actually sees the world (Business Standard, 2017). By his own account, most popular writers in this space, Tripathi included, are working in the first category, while the serious study of mythology remains comparatively academic and out of step with what sells. This is not necessarily offered as a value judgement against fiction, but it does mark a genuine difference in method. Tripathi's books ask to be read as story first, with whatever philosophical content the reader wants to draw out sitting underneath the plot. Pattanaik's books ask to be read as

argument first, with narrative serving mainly as the evidence for a claim he is making explicitly, often in a very short authorial aside right after the story beat in question.

Both writers, despite this difference in method, perform the same basic move of humanising the divine. Tripathi's Shiva smokes, curses, argues with his advisors, and makes mistakes he has to live with, and his eventual status as Mahadev, the god of gods, is presented as something the Meluhan and Swadweepan people confer on him after watching what he does under pressure, not something he is born already possessing. Pattanaik performs a related stripping-down in Jaya, where Krishna's famously unscrupulous battlefield strategies in the Mahabharata are treated not as divine magic beyond human judgement but as a specific, defensible theory of pragmatic ethics, one in which context and consequence outweigh rigid rule-following. The difference is that Tripathi's humanising happens through plot, letting the reader watch Shiva grow into his legend across three long books, while Pattanaik's humanising happens through direct interpretive commentary, telling the reader plainly what a given episode is really an argument about.

The two writers also route present-day anxiety into ancient material through different channels. Tripathi's channel is allegory embedded in plot: the Naga community's physical deformities and social exclusion in the Shiva Trilogy read as a commentary on how societies stigmatise the visibly different, the Somras crisis reads as a commentary on unsustainable technological progress, and the eventual war over its supply reads as a commentary on resource conflict and weapons proliferation. None of this requires the reader to notice the allegory at all in order to enjoy the books as adventure fiction, which is precisely the point of working in a popular genre. Pattanaik's channel is direct application rather than allegory. He has argued explicitly that modern management theory is itself a kind of mythology, one built on Western, objective-driven assumptions that ignore consequence in the way that Indian frameworks built around karma do not, and he has suggested that workplaces modelled on what he calls a competitive battleground, or ranabhoomi, might instead be modelled on an enabling performance stage, or rangabhoomi (Pattanaik, 2023). Where Tripathi lets the contemporary resonance sit quietly underneath an adventure story, Pattanaik puts it in the foreground and names it outright.

Gender offers a further point of comparison. Scholars examining the Shiva Trilogy have noted that Tripathi gives his female characters, particularly Sati, a degree of agency, martial skill, and narrative weight that departs from more passive archetypes found in earlier popular retellings, a shift some critics read through a post-feminist lens even as they debate how completely it breaks from older patterns (The correlation of myth and feminism as presented in Amish Tripathi's Shiva Trilogy, 2017). Pattanaik takes up gender more analytically, examining across his wider body of work how myths have historically been used to construct and enforce gender roles, and treating this construction itself, rather than any single character's arc, as the object of study (Deciphering the layers of myth, 2025). Once again the same theme, the status of women in inherited narrative, is handled through fictional characterisation in one writer and through cultural analysis in the other.

Both writers belong to a wider marketplace that includes Ashwin Sanghi, Ashok Banker, Anand Neelakantan, Kavita Kane, and Chitra Banerjee Divakaruni, most of whom are, by Pattanaik's own distinction, writing mythological fiction rather than mythology (Mulimani, 2023). What separates Tripathi and Pattanaik from most of this wider field is scale and visibility: Tripathi's trilogy became one of the best-selling series in Indian publishing history, while Pattanaik's crossover into management consulting and television, including the show Devlok, has made him a familiar public voice on Indian

mythology well beyond readers of fiction. Their combined visibility raises a question neither writer answers directly but that this paper takes as its underlying concern: why does a self-consciously modern, English-educated, often globally mobile readership continue to reach for these particular stories, whether in adventure-novel form or management-book form, rather than treating them as settled history or discarded superstition. One partial answer suggested by both bodies of work is that myth in this context functions less as a claim about the past and more as a flexible vocabulary for present anxieties that have not yet found an equally native idiom of their own, whether that anxiety concerns ecological collapse and technological overreach, as in Tripathi, or the felt inadequacy of imported Western management theory, as in Pattanaik.

A further point worth holding onto is that neither writer treats mythology as a closed or finished text. Tripathi has been open about restructuring the sequence and causality of familiar episodes, reassigning motives, and inventing entirely new characters such as the Vasudev and Vayuputra orders that do not exist in any received Puranic source, treating the tradition as raw material for a new story rather than a script to be reproduced faithfully. Pattanaik makes a related point at the level of theory rather than plot, arguing that myth is by definition plural and re-told rather than fixed, and that insisting on one single authoritative version of any story misunderstands what myth is for in the first place. This shared premise, that Indian mythology survives precisely because it keeps being rewritten rather than preserved untouched, may be the deepest thing the two writers have in common, even though one expresses it by inventing new characters for a fantasy trilogy and the other expresses it by writing directly about the theory of myth itself.

It is worth noting, too, that both writers have faced a similar line of criticism from more traditional or academically trained readers, namely that popularising myth for a mass market risks flattening its complexity into something closer to self-help or airport fiction. Reviewers of Pattanaik's leadership books have sometimes found the corporate parallels forced, suggesting that a given mythological episode is being stretched to fit a management lesson it was never built to carry, even while conceding that the retellings themselves remain engaging and well researched. Tripathi has faced a parallel complaint from readers who feel that turning Shiva into a swearing, uncertain, occasionally short-tempered tribal migrant sacrifices the numinous quality that made the original stories meaningful in the first place. Both criticisms point to the same underlying tension: any attempt to make ancient material legible to a contemporary, secular, market-facing audience risks losing something the tradition originally protected, whether that is mystery, ambiguity, or a kind of reverence that resists explanation. Neither writer appears to see this risk as a reason to stop. Tripathi has continued to serialise new mythological material across the Ram Chandra Series, and Pattanaik has continued to expand his interpretive project into new domains, including television, corporate consulting, and, more recently, direct commentary on caste and minority history on his own website. Whatever the losses involved in popularisation, both writers appear to have judged that a widely read, imperfect engagement with the tradition is preferable to a narrowly guarded, purist one.

The two writers have also built rather different ecosystems around their core books, and this difference reinforces the fiction-versus-interpretation split traced above. Tripathi's ecosystem is largely extensions of narrative: audio adaptations, a television series based on the Shiva Trilogy, graphic novel spin-offs, and a continuing series of new novels that keep expanding the same fictional universe rather than reinterpreting it from a new angle. Pattanaik's ecosystem runs in the opposite direction, toward ever more direct explanation: the television programme Devlok, hundreds of

newspaper columns, illustrated lecture-style books, and public talks aimed explicitly at corporate audiences, all of which restate his central interpretive claims in slightly different packaging rather than building out a fictional world. A reader who finishes The Oath of the Vayuputras is left wanting to know what happens next to these characters. A reader who finishes Business Sutra is left wanting to know what other institutions or life situations the same interpretive lens might illuminate. Both forms of appetite have kept their respective writers commercially active for well over a decade, which is itself evidence that the twenty-first-century market for Indian mythology is large enough to support two genuinely different products built from the same raw material.

The chapters that would follow this introduction in a fuller study might take up each of these threads in more depth: a close reading of how euhemerism operates scene by scene in the Shiva Trilogy, a closer look at Pattanaik's management writing against actual case material from Indian corporate life, and a more extended treatment of gender across both writers' full output rather than a single representative text. What this introduction has tried to establish is the shape of the comparison itself: two writers working the same inherited material from opposite methodological directions, one through the pleasures of plot and the other through the discipline of direct argument, and both finding, by very different means, that twenty-first-century Indian readers still want their gods close at hand.

References

Benu, P. (2023). Re-imagining Hindu mythology in the twenty-first century: Amish Tripathi and Indian fantasy fiction in English. *SpringerLink*.

Business Standard. (2017, August 10). Mythological fiction and mythology are different: Devdutt Pattanaik [Interview]. business-standard.com

Deciphering the layers of myth: Devdutt Pattanaik's interpretative approach to mythology as a bridge between ancient wisdom and contemporary thought. (2025). *International Journal of Scientific Research in Humanities and Social Sciences*.

Keemiya Creatives. (2025). Retelling in fiction vs inspired stories: What Indian writers borrow from mythology. keemiyacreatives.com

Mulimani, R. S. (2023). Exploring the world of Indian mythological fiction in English. *The Academic*.

Pattanaik, D. (2010). *Jaya: An illustrated retelling of the Mahabharata*. Penguin Books India.

Pattanaik, D. (2013). *Business sutra: A very Indian approach to management*. Aleph Book Company.

Pattanaik, D. (2013). *Sita: An illustrated retelling of the Ramayana*. Penguin Books India.

Pattanaik, D. (2017). *Leader: 50 insights from mythology*. HarperCollins India.

Pattanaik, D. (2023, July 12). Devdutt Pattanaik on why Indian mythology is relevant in Western workplaces too [Interview]. devdutt.com

The correlation of myth and feminism as presented in Amish Tripathi's Shiva Trilogy. (2017). Academia.edu.

The Statesman. (2018). 5 authors who have given Indian mythology a modern twist. thestatesman.com

Tripathi, A. (2010). *The immortals of Meluha*. Westland.

Tripathi, A. (2011). *The secret of the Nagas*. Westland.

Tripathi, A. (2013). *The oath of the Vayuputras*. Westland.

Twenty-first century imagination in Amish Tripathi's Shiva Trilogy. (2020). *ResearchGate*.

Wikipedia. (2026). *Devdutt Pattanaik*. Wikimedia Foundation. en.wikipedia.org/wiki/Devdutt_Pattanaik

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

प्रगतिशील भारत में नारी शक्ति के योगदानः 'विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों/अधिकारों के आधार पर'

विवेचना पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर,
फैकेल्टी ऑफ लॉ-आर.के.डी.एफ. युनिवर्सिटी भोपाल (म0प्र0)

सारः- प्रगतिशील भारत में नारी शक्ति का योगदान विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों के आधार पर और भी सशक्त हुआ हैं। भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता और गरिमा का अधिकार प्रदान कर उन्हें राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदारी का अवसर दिया हैं। भारतीय संवधिान का अनुच्छेद-14 15 और 16 के अंतर्गत समान अवसर, भेदभाव निषेध और रोजगार में समानता का प्रावधान महिलाओं की शक्ति को मजबूती देता हैं। विधि द्वारा प्राप्त सुरक्षा जैसे-घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम दहेज निषेध अधिनियम कार्यस्थल पर यौन उत्पीडन निवारण अधिनियम तथा मातृत्व लाभ अधिनियम ने महिलाओं को सामाजिक और पेशेवर जीवन में सुरक्षित वातावरण दिया हैं। इसके अतिरिक्त पंचायती राज व्यवस्था में 33 प्रतिशत आरक्षण ने उन्हे राजनीतिक नेतृत्व में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया हैं। इन विधिक शक्तियों के आधार पर महिलाएँ शिक्षा रोजगार राजनीति विज्ञान कला खेल और प्रशासन जैसे क्षेत्रो में अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं। महिलाएँ न केवल आत्मनिर्भर बनी हैं बल्कि समाज और राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान भी दे रही हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों ने नारी शक्ति को सशक्त और सक्षम बनाकर प्रगतिशील भारत की आधारशिला की और मजबूत किया हैं।

प्रस्तावनाः- भारत एक प्राचीन संस्कृति और विविधताओं वाला राष्ट्र हैं जहाँ नारी को सदा से शक्ति प्रेरणा और आदर्श का प्रतीक माना गया हैं। यद्यपि इतिहास के विभिन्न कालखड़ो में महिलाओं ने अनेक प्रकार की सामाजिक असमानताओं और प्रतिबंधों का सामना किया परंतु आधुनिक और प्रगतिशील भारत में उनकी स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हमें देखने को मिले हैं। इस परिवर्तन की सबसे बड़ी नीव भारतीय संविधान और विविध व्स्थाएँ हैं, जिन्होंने नारी शक्ति को समानता स्वतंत्रता और न्याय के अधिकार प्रदान कर उन्हे सशक्त बनाया हैं। संविधान के अनुच्छेद-14 समानता का अधिकार अनुच्छेद-15 भेदभाव निषेध और अनुच्छेद 16 समान अवसर का अधिकार प्रदान करता हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा का अधिकार संपत्ति के अधिकार रानीतिक प्रतिनिधित्व और मौलिक स्वतंत्रताओ ने महिलाओ को पुरुषों के समान दर्जा दिलाने में अहम भूमिका निभाई हैं। विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ केवल अधिकारो तक सीमित नही हैं बल्कि सुरक्षा और संरक्षण का भी प्रावधान करती हैं। दहेज निषेध अधिनियम घरेलू हिंसा में मातृत्व लाभ अधिनियम और महिला आरक्षण जैसे व्यवस्थाओं में महिलाओं का सामाजिक और व्यवसायिक जीवन में सुरक्षित और सम्मानजनक स्थान प्रदान किया हैं। इन विधिक शक्तियों के बल पर आज नारी शक्ति शिक्षा राजनीति प्रशासन विज्ञान खेल और साहित्य जैसे विविध क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा और नेतृत्व क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं। ग्रामीण भारत में भी पंचायती राज व्स्था में आरक्षण ने महिलाओं को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को अभिन्न अंग बना दिया हैं। शहरी क्षेत्रों में वे उद्योग सेवा और तकनीकी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित कर रही हैं।

अतः यह कहा जा सकता हैं कि विधि प्रदत्त शक्तियों ने भारतीय नारी को केवल समान अधिकार ही नहीं दिए बल्कि उन्हे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी का अवसर भी प्रदान किया हैं। यही कारण हैं कि प्रगतिशील भारत की आधारशिला में नारी शक्ति का योगदान अत्यन्नत महत्वपूर्ण और निर्णयक हैं।

ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में नारी की स्थिति:- वैदिक काल को भारतीय नारी का स्वर्णयुग कहा जा सकता हैं। स्त्रियाँ वेद अध्ययन करती थी यज्ञों में भाग लेती थी, ऋशि और विद्युषी के रूप में सम्मानित होती थी। गागी मैत्रेयी अपाला जैसी विदूषियों के उदाहरण आज भी स्मरणीय हैं। मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। पर्दा प्रथा बाल विवाह सती प्रथा शिक्षा से वचन और समाजिक बंधनो में उन्हें सीमित कर दिया। फिर भी रजिया सुल्तान रानी दुर्गावती झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं ने साहस और नेतृत्व का परिचय दिया। परन्तु ब्रिटिश शासन के दौरान सामाजिक सुधार आंदोलनो ने नारी उत्थान की दिशा में कदम बढ़ाए। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा उन्मूलन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा पुनविर्वाह महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा दिया हैं।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त नारी अधिकार:- स्वतंत्रता के बाद निर्मित संविधान ने महिलाओं की पुरुषों के समान अधिकार देकर नई दिशा दी हैं। मौलिक अधिकार के तहत संविधान ने अनुच्छेद-14 समानता का अधिकार, अनुच्छेद 15- धर्म, जाति, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव निषिद्ध अधिकार अनुच्छेद-16 के तहत समान अवसर का अधिकार अनुच्छेद 21-जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार एवं अनुच्छेद 39 (क) समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार प्रदान करवाता हैं। हम यदि संवैधानिक प्रावधानो की बात करे तो अनुच्छेद 42-प्रसूति अवकाश और श्रमिक महिलाओ के लिए न्यायसंगत कार्य परिस्थितियाँ प्रदान करता हैं। इन सभी संविधानो के साथ अनुच्छेद SI(क) (ई) की बात करे तो यह हमें बताता हैं कि हर नागरिक का कर्तव्य हैं कि वह स्त्रियों की गरिमा का अपमान न करें। इस प्रकार से हम पाते हैं कि संविधान महिलाओं को हर कदम पर सुरक्षा और सम्मान प्रदान करता हैं।

विधिक अधिकार एवं विशेष कानून महिला संरक्षण पर:- भारतीय विधि ने महिलाओं की सुरक्षा सम्मान और सशक्तिकरण हेतु अनेक कानून बनाए हैं। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 एवं संशोधन 2005 जो हमें पुत्रियों को भी समान उत्तराधिकार का अधिकार देना या होना बताता हैं। दहेज प्रथा पर पूर्ण रूपेण प्रतिबंध लगाना बताता हैं, गृह हिंसा से संरक्षण अधिनियम 2005- महिलाओं को घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता हैं। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण अधिनियम 2013- महिलाओं को कार्यस्थलों पर सुरक्षित वातावरण प्रदान करवाता हैं। बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006- बच्चियों/बेटियों के बाल विवाह पर रोक लगाने का अधिकार प्रदान करता हैं। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 एवं संसोधन 2017 महिलाओं को गर्भवस्था होने पर प्रसूति अवकाश और लाभ का अधिकार प्राप्त करवाता हैं। इसी प्रकार से हम पाते हैं। कि महिलाओं के लिए फौजदारी संहिता (धारा-376 आदि) वर्तमान में भारतीय न्याय संहिता हैं। उसकी (धारा-63)- बलात्कार एवं लैंगिक अपराधो पर कठोर दंड का प्रावधान बताता हैं। इन सभी प्रकार के कानूनों ने नारी को भयमुक्त होकर समाज और राष्ट्र निर्माण में योगदान देने का अवसर प्रदान किया हैं।

प्रगतिशील भारत में नारी शक्ति का योगदान:- शिक्षा के क्षेत्र में आज की भारतीय नारी उच्च शिक्षा में तेजी से आगे बढ़ रही हैं। आई.आई.डी. आई.आई.एम मेडिकल लॉ, रिसर्च में महिलाएँ शीर्ष स्थान पर हैं। भारतीय महिला वैज्ञानिक दूसरो और डी.आर.डी.ओ. की अंतरिक्ष व रक्षा परियोजनाओं में योगदान दे रही हैं।

राजनीति और प्रशासन:- पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओ के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण ने लाखों महिलाओं को निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनाया हैं। इंदिरा गांधी, प्रतिभा पाटिल, सुशमा स्वाराज निर्मला सीतारमण जैसी हस्तियो ने नेतृत्व का परिचय दिया। एवं अनेक महिला आई.ए.एस. आई.पी.एस अधिकारी प्रशासनिक व्यवस्था में उत्कृष्ट कार्य कर रही हैं।

आर्थिक क्षेत्र:- कार्पोरेट जगत में इंद्रा नूयी किरण मजूमदार शनयना लाल किदवर्ड जैसी महिलाएँ वैश्रिक स्तर पर भारत का नाम रोशन कर रही हैं। स्टार्टअप संस्कृति में महिला उद्यामियों का योगदान उल्लेखनीय हैं। ग्रामीण क्षेत्र में स्वयं

सहायता समूहों (SHGs) ने महिलाओ का आत्मनिर्भर बनाया हैं।

समाज सुधार और सेवा के क्षेत्र में:- भारतीय महिलाओं ने शिक्षा स्वास्थ्य बाल कल्याण पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में सामाजिक कार्यो द्वारा समाज को नई दिशा प्रदान की हैं। मदर टेरेसा सुधा मूर्ति कल्पना सरोज जैसी महिलाओं का योगदान देश के विकास एवं समाज सुधार में हम सबके लिए प्रेरणा दायक हैं।

रक्षा और खेल:- भारतीय वायुसेना और नौसेना में महिला अधिकारियों की भागीदारी बढ़ी हैं। हमें देखने को मिलता हैं कि भारत की महिलाएँ मेरी काम पी.वी. सिंधु साक्षी मलिक मिताली राज जैसी महिलाएँ खिलाड़ियो में भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गौरवान्वित किया हैं।

महिलाओं पर आने वाली चुनौतियाँ और समाधान

चुनौतियाँ:- आज भी महिलाओ को अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पढ़ता हैं। जिसमें दहेज प्रथा घरेलु हिंसा लिंगानुपात असमानता कार्यस्थल पर भेदभाव जैसी समस्याएँ मौजूद हैं। ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी महिलाओं के प्रगति में बाधक हैं, हमारे समाज की परंपरागत मानसिकता और पितृसत्तात्मक सोच उन्हे पूण स्वतंत्रता प्रदान नहीं करती हैं।

समाधान:- महिलाओ के साथ होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए हमें सर्वप्रथम विधि चाहिए। ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को शिक्षा के प्रति जागरूक करना चाहिए। लैंगिक समानता को परिवार और समाज स्तर पर प्रोत्साहन देना अत्यन्त आवश्यक हैं। तथा इसके साथ तकनीकी और डिजिटल साक्षरता द्वारा महिलाओ को आत्मनिर्भर बनाने का हर संभव प्रयास करना अति आवश्यक हैं।

भविष्य की संभावनाएँ:- 21वीं सदी का भारत तभी प्रगतिशील कहलाएगा जब नारी शक्ति को समान अवसर सम्मान और सुरक्षा मिलेगी। डिजिटल इंडिया और स्टार्टअप इंडिया में महिला उद्यमियों की बड़ी भूमिका होगी तथा विज्ञार अंतरिक्ष रक्षा राजनीति और कला के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं का बढ़ता योगदान भारत को वैश्रिक महाशक्ति बनाने में सहायक होगा।

महिलाओं में सामाजिक आर्थिक मजबूती प्रदान करने वाले विभिन्न उपाय

● महिला श्रम बल भागीदारी में वृद्धि करने के लिए विश्व बैंक क आकलन के अनुसार महिला श्रम बल भागीदारी दर को वर्तमान के लगभग 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत करने से भारत 8 प्रतिशत जीडीपी विकास दर के निकट पहुच सकता हैं। सरकार को विनिर्माण क्षमता के विस्तार पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, विशेष रूप से रेडीमेड परिधान जूते और हल्के निर्माण जैसे श्रम-केन्द्रिय क्षेत्रो में जहाँ महिलाएँ श्रमिको के एक बड़े भाग का निर्माण करती हैं। भारत ''आइसलैंड के इक्वल पे सर्टिफिकेशन'' से प्रेरणा ग्रहण कर सकता हैं जो कंपनियों पर यह सिद्ध करने का दायित्व सौपता हैं कि वे लौंगिक भेदभाव नहीं करते हैं।

● कौशल तक पहुच में सुधार लाने से तात्पर्य महिलाओं को विशेष रूप से प्रशिक्षण देने वाले प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। वर्तमान में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानो की (ITIs) कुल संख्या के केवल 17 प्रतिशत ही विशेष रूप से महिलाओं को प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। कैरियर परामर्श प्रशिक्षण संस्थाओं में जॉब प्लेसमेंट प्रकोष्ठों का निमार्ण और महिला प्रशिक्षुओं के लिए महिला रोल मॉडल एवं परामर्शदाताओं को सक्रिय करने के लिए पूर्व छात्र नेटवर्क का उपयोग करना रोजगार परिणामों में सुधार लाने के लिए प्रभावी साधन सिद्ध हो सकते हैं।

● शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की गतिशीलता को सक्षम बनाने के लिए भारत में तीव्र गति से शहरीकरण हो रहा हैं, शहरो को ऐसे लैगिंक दृष्टिकोण से योजनाबद्ध किया जाना चाहिए जो महिलाओं की गतिशीलता को समायोजित एवं सक्षम कर सके। तीव्र जनसंधिकीय परिवर्तन और जनसंख्या की आयु वृद्धि के साथ एक उच्च गुणवरतापूर्ण एवं सब्डीयुक्त शहरी देखभाल अवसंरचना न केवल महिलाओं को देखभाल कार्य से युक्त करेगी बल्कि इस क्षेत्र में उनके लिए एक रोजगार भी

सर्जन करेगी।

● स्वच्छ ऊर्जा से फ्यूल ड्रीम एनर्जी की ओर आगे बढ़ने से सरकार उपभोक्ताओं को स्वच्छ प्रौद्योगिकी की खरीद के समय नकद छूट देने के साथ-साथ स्वच्छ ऊर्जा क्षेत्र में नए रोजगार के सृजन के लिए उत्पादन प्रोत्साहन प्रदान कर सकती हैं। और ऐसे उपायों को अपनाने में महिलाओ को अकुशल प्रदूशणकरी ईधन के साथ खाना पकाने जैसी गतिविधियों में लगने वाले समय के बोझ को कम करने में मदद मिल सकती हैं और उन्हे अपने लक्ष्यों के प्रति अधिक केन्द्रित बनाया जा सकता हैं।

● मइक्रो-क्रेडेशियल प्लेटफॉर्म विकसित करने से इन-डिमांड कौशल पर केंद्रित स्टैकेबल माइक्रो-क्रेडैशियल्स की पेशकश करने वाले आनलाइन प्लेटफार्म विकसित किए जाएँ। जिससे जेनरेटेड।प् की मदद से तैयार ऐसे लघु पाठयक्रमों को लचीले ढंग से पूरा किया जा सकता हैं जिससे बाल देखभाल या कार्य शेड्यूल को बाधित किए बिना महिलाओं को प्रासंगित या कार्य कौशल प्राप्त करने की अनुमति मिलेगी।

● महिलाओं को नेतृत्व वाले आपूर्ति श्रृंखला नेटवर्क को बढ़ावा देने से महिलाओं के नेतृत्व वोल स्वयं सहायता समूहों (SHGs) को प्रत्यक्षता बड़े निगमों और सरकारी खरीद कार्यक्रमों से जोड़ सकते हैं। इससे महिलाओं को अपने उत्पादों एवं सेवाओं के लिए एक स्थिर बाजार उपलब्ध होगा बिचौरियों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और महिलाओं क लाभ मार्जिन ने बढ़ोत्तरी होगी। महिला नेतृत्व वाले स्टार्टअप्स को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए सेल्फ-मेड उद्यमी 'फाल्गुनी नायर' ने देश के पहले ऑनलाइन व्यूटी ई- मार्केटप्लेस नायका की स्थापना के साथ भारतीय सौंदर्य बाजार को रूपान्तरित कर दिया हैं। महिलाएँ हित या बेल-बीइंग के कई मापदंडो पर पिछड़ी हुई हैं इसलिए भारत को सामाजिक-आर्थिक परिणामो में लैंगिक समानता की ओर आगे बढ़ने के लिए हर संभव नीतियों का अपनाने की आवश्यकता हैं।

ग्रंथ सूची

सुभाषिनी अली	-	''नारी शक्ति''
डॉ. शशिकला सिंह	-	''नारी सशक्तिकरणः स्वरूप और संदर्भ''
डॉ. सुधा शर्मा	-	'' भाारतीय नारीः शक्ति और संघर्ष''
डॉ. रामशरण शर्मा	-	'' भारतीय नारीः शक्ति और संघर्ष''
डॉ. मृणाल पाण्डेय	-	''नारी विमर्श''
डॉ. निर्मला जैन	-	''नारीः आज और कल''
डॉ. वीरेन्द्र कुमार	-	''नारी अधिकार और कानून''
डॉ. शकुन्तला देवी	-	''भारतीय नारी और विधि''
डॉ. सुधा सिंह	-	''नारी और मानवधिकार''
डॉ. उषा यादव	-	''नारी और संविधान''
डॉ. निर्मला शर्मा	-	''भारतीय नारीः अधिकार और कर्तव्य''
इन्टर संचार माध्यम	-	स्वयं के विचार।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का अध्ययन

Student of the impact of children's literature on the life values of upper primary level students

डॉ. नुपूर अग्रवाल
(सहायक आचार्य) जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर टीचर्स ट्रेनिंग
कॉलेज, बंधा धर्मपुरा मेनरोड लखावा, कोटा
nupuragrawal5217@gmail.com
mobile No. 7976968843, 9509253256
Address :- 4-L-70 Rangbari Yojna Kota, pin code 324005

Abstract

Values are socially accepted desires children's literature has a special impact on the life values of primary level students. The aim of children's literature is a provide healthy entertainment to children as well as to prepare children to face the struggle of life. Children's literature provides education about scientific, educational, social, cultured, moral, religious etc. life values to children.

If the impact of children's literature on the life value of the students is studied scientifically then we can get proper guidance as to what kind of literature should be made available to the children in present times and be collecting the scattered literature it can be made available to the children in a systematic manner. The findings of the present research can give great advice to the students teachers and present which can be used to develop among. The value of life the students.

Teachers by teaching the Balhams, Balsakha, Panchtantra's stories etc. information given in children's literature, inform of stories and poems, can cannot the education with the values of one's life and can make one's Teaching effective so that the students can imbibe the desired content and values.

In this period of transition, children are moving away from books, hence, it is the duty of the presents to impure the children to read the ambient historical and cultural stories in which the feedings like respect sandmen Tyag guru up, sacrifice of the body are awakened and life becomes alive and values of life can be riser up.

प्रस्तावना

शिक्षा एक ऐसी सामाजिक और गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है और सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बनाती है।

भारत प्राचीनकाल से विश्व में जगतगुरु की उपाधि से सुशोभित रहा है। क्योंकि यहाँ जो साहित्य उपलब्ध था, उसमें वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण और भागवत प्रमुख है।

मूल्यों का संबंध किसी 'व्यक्ति' या समूह के बराबर होता है। वही मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करते है, और वही उसके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते है। जीवन संबंधी ऐसा व्यवहार व आचरण जो बालक के व्यकितत्व के अभिव्यक्त एवं विकसित कर सके तथा सामाजिक प्रतिमान के अनुसार उचित मूल्यों की कसौटी पर परखते हुए मानव कल्याण व मानव एकता में सहभागी बन सके। जीवन मूल्यों के अन्तर्गत आता है।

आज के भौतिकवादी युग में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस परिवर्तन के कारण जनमानस के विचारों में बदलाव के साथ-साथ व्यक्तित्व निर्माण के स्वरूप ही बदल गए है। भौतिक संसाधनों द्वारा सूचना एवं तकनीकी का ज्ञान ही उसके जीवन का उद्देश्य बन गया है। बालक के चारित्रिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता है, जो कि व्यक्तित्व निर्माण की प्रमुख आधारशिला है। महात्मा गांधी के शब्दों का ज्ञान चरित्र के बिना मूल्यहीन हैं।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मल्य परक शिक्षा की जितनी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। उतनी पहले कभी नहीं की गई, आज सदाचरण, सत्य-अहिंसा, प्रेम, पवित्रता, शान्ति जैसे शाश्वत परम्परागत मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की महत्ती आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय में बच्चों का बचपन केवल विडियो गेम्स, इन्टरनेट, कार्टून चैनलों, मोबाइल में मशगुल है। घर और स्कूल दोनों ही जगहों पर माहौल ऐसा है जिससे बच्चों की अपनी अभिव्यक्ति और कल्पनाओं की उड़ान भरने के लिए उचित और पर्याप्त जगह नहीं मिल पा रही है। टी.वी. पर प्रसारित होने वाले कार्टून चैनलों ने तो स्थिति को और भी बद से बदत्तर बना दिया है। जिससे उनके जीवन मूल्यों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। इसका समाधान बाल साहित्य में निहित आज का विद्यार्थी कल से भावी नागरिक है अर्थात् देश की प्रगति की डोर आज के बालकों पर टिकी हुई है।

समस्या का औचित्य/महत्व

किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके श्रेष्ठ नागरिकों पर निर्भर करती है। नागरिकों की गुणवत्ता उसकी शिक्षा पर निर्भर करती है। अतः आवश्यकता है कि विद्यार्थी प्रारम्भिक अवस्था से ही जीवन मूल्यों को आत्मसात कर सकें। विद्यार्थी जीवन में बाल साहित्य पढ़ने में विद्यार्थियों को अत्यधिक रुचि होती है साथ ही उसका उनकी मानसिक, चारित्रिक गतिविधियों पर भी प्रभाव पड़ता है।

1. विद्यार्थी बाल साहित्य के प्रति क्या विचार एवं दृष्टिकोण रखते है।
2. विद्यार्थी जीवन मूल्यों के बारे में कितनी जानकारी रखते हैं।
3. प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का प्रभाव पड़ता है क्या ?

उक्त तथ्य सही है या नहीं ? यदि सही है तो इसके क्या कारण है। जीवन मूल्य विषय पर पर्याप्त शोध अध्ययन किए गए है परन्तु विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का अध्ययन के सम्बन्ध में शोध किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। अतः अनुसंधानकर्ता द्वारा इस प्रकरण का शोध हेतु चयन किया गया है।

समस्या कथन

"उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का अध्ययन"

"Student of the impact of children's literature on the life values of upper primary level students."

शोध अध्ययन के उद्देश्य -

1. उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का अध्ययन

करना।

2. उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का अध्ययन करना।

3. उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाएँ

1. उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

2. उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

3. उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अनुसंधान में प्रयुक्त विधि, प्रविधि एवं उपकरण

1. प्रस्तुत शोध जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के बालकों पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन से संबंधित है इससे सर्वे द्वारा दत्तों का संकलन किया जाता है। अतः अनुसंधान हेतु सर्वेक्षण उपागम का प्रयोग किया गया।

2. प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी द्वारा दत्त संकलन के लिए स्वनिर्मित विद्यार्थियों के जीवन मूल्य पर बाल साहित्य के प्रभाव की प्रमापनी का प्रयोग किया गया है।

3. आँकड़ों के विश्लेषण हेतु आवृत्ति, प्रतिशत एवं आरेख प्रदर्शन का प्रयोग किया गया है।

तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण

1. उच्च प्राथमिक स्तर - कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थी।

2. विद्यार्थी- विद्या या ज्ञान को जानने या सीखने को लालायित तथा प्रयत्नशील व्यक्ति ही विद्यार्थी कहलाता है।

3. जीवन मूल्य - जीवन मूल्य सामाजिक रूप से स्वीकृत इच्छाएँ है।''

4. बाल साहित्य - बाल साहित्य का मूल आशय छोटी उम्र के बच्चों को ध्यान में रखकर लिखा गया सृजनात्मक साहित्य से है। जिसमें कहानियाँ, कविताएँ, नाटक, उपन्यास, पहेलियाँ, चुटकले, आदि आते हैं।

शोध परिसीमन

1. प्रस्तुत शोधकार्य कोटा जिले के ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों तक परिसीमित किया गया है।

2. प्रस्तुत अध्ययन में 10 से 14 वर्ष तक के अध्ययनरत छात्र-छात्राओं को ही सम्मिलित किया गया हैं।

जनसंख्या एवं न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श के रूप में कोटा जिले के ग्रामीण क्षेत्र के उच्च प्राथमिक स्तर के दो निजी व दो सरकारी विद्यालय के 120 विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

परिकल्पना के आधार पर व्याख्या एवं विश्लेषण

परिकल्पना 1 उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी संख्या 1

उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के मध्यमान, प्रमाप विचलनों एवं टी-मूल्यों द्वारा अध्ययन

समूह	संख्या	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (SD)	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र	30	51.16	6.8	0.69	स्वीकृत
उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय की छात्रा	30	49.83	8.0		

$df = N_1 + N_2 - 2 = 30 + 30 - 2 = 58$

df = 58 पर 0.05 का मान = 2.00

df = 58 पर 0.01 का मान = 2.66

विश्लेषण एवं व्याख्या

उपर्युक्त सारणी के अनुसार उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का मध्यमान क्रमशः 51.16 व 49.83 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन क्रमशः 6.8 व 8.0 प्राप्त हुआ। इनसे प्राप्त टी मूल्य का मान 0.69 प्राप्त हुआ है जो स्वतंत्रता की कोटि (df) 58 पर सार्थकता स्तर पर सारणी मान 0.05 पर 2. 00 से कम है। इसलिए शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना 2 उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी संख्या 2

उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के मध्यमान, प्रमाप विचलनों एवं टी-मूल्यों द्वारा अध्ययन

समूह	संख्या	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (SD)	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र	30	51.83	6.2	0.25	स्वीकृत
उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय	की छात्रा	30	51.5	6.0	

$df = N_1 + N_2 - 2 = 30 + 30 - 2 = 58$

df = 58 पर 0.05 का मान = 2.00

df = 58 पर 0.01 का मान = 2.66

विश्लेषण एवं व्याख्या

उपर्युक्त सारणी के अनुसार उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का मध्यमान क्रमशः 51.83 व 51.5 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन क्रमशः 6.2 व 6.0 प्राप्त हुआ। इनसे प्राप्त टी मूल्य का मान 0.25 प्राप्त हुआ है जो स्वतंत्रता की कोटि (df) 58 पर सार्थकता स्तर पर सारणी मान 0.05 पर 2.00 से कम है। इसलिए शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिकल्पना 3 उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी संख्या 3

उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के मध्यमान, प्रमाप विचलनों एवं टी-मूल्यों द्वारा अध्ययन

समूह	संख्या	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (SD)	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राएँ	60	51.5	5.8	-0.14	स्वीकृत
उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राएँ	60	51.66	6.2		

df = $N_1 + N_2$ - 2 = 60 + 60- 2 = 118

df = 118 पर 0.05 का मान = 1.98

df = 118 पर 0.01 का मान = 2.63

विश्लेषण एवं व्याख्या

उपर्युक्त सारणी के अनुसार उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का मध्यमान क्रमशः 51.5 व 51.66 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन क्रमशः 5.8 व 6.2 प्राप्त हुआ। इनसे प्राप्त टी मूल्य का मान -0.14 प्राप्त हुआ है जो स्वतंत्रता की कोटि (df) 118 पर सार्थकता स्तर पर सारणी मान 0. 05 पर 1.98 से कम है। इसलिए शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

आरेख 1

उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का मध्यमान एवं मानक विचलन आरेख द्वारा प्रदर्शित (अगले पृष्ठ पर)

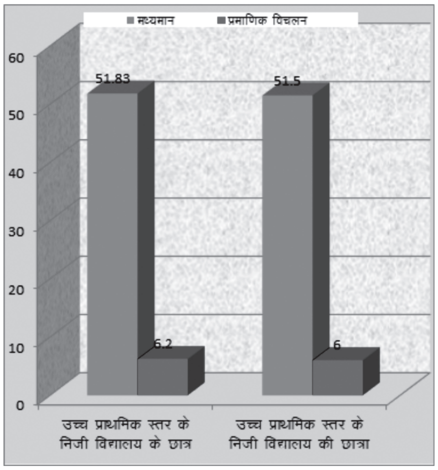

आरेख 2

उच्च प्राथमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के प्रभाव का मध्यमान एवं मानक विचलन आरेख द्वारा प्रदर्शित

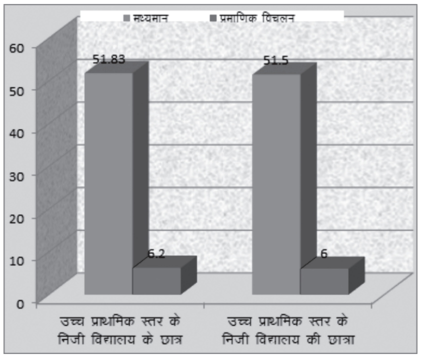

आरेख 3

उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य के के प्रभाव का मध्यमान एवं मानक विचलन आरेख द्वारा प्रदर्शित

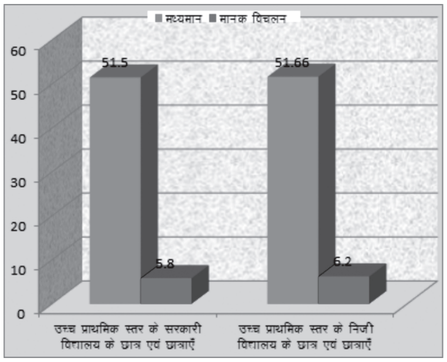

निष्कर्ष

1. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया है। अतः परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

2. उच्च माध्यमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया है। अतः परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

3. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर बाल साहित्य का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया है। अतः परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ : प्रस्तुत शोध का निहितार्थ यह है कि प्रस्तुत शोध के निष्कर्षों से अध्यापकों, छात्रों, अभिभावकों, प्रकाशकों व साहित्यकारों को महत्वपूर्ण सुझाव दिए जा सकते हैं, जिनका उपयोग कर विद्यार्थियों को जीवन मूल्यों को उच्च बनाया जा सकता है। उदाहरण - बालहंस, बालसखा, चंपक आदि। पंचतंत्र की कहानियाँ आदि अध्यापक बाल साहित्य में दी गई सूचनाओं, जानकारियों, कहानियाँ व कविताओं में दी गई शिक्षा को अपने शिक्षण से जोड़ सकते हैं।

भावी शोध हेतु सुझाव

1. प्रस्तुत शोध ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों पर भी किया जा सकता है।

2. आवासीय व गैर आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों पर भी यह अध्ययन किया जा सकता है।

3. बाल साहित्य के अध्ययन के अलावा मनोरंजन के विभिन्न साधन जैसे टी.वी., मोबाइल, नेट, विडियो गेम के प्रभाव का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

4. बाल साहित्य का विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. देवसरे, हरिकृष्ण (2008) : बाल साहित्य मेरा चिन्तन, दिल्ली मेथा बुक्स।
2. डॉ. पांडेय नागेश (2007) : बाल साहित्य के प्रतिमान, लखनऊ, बुनियादी साहित्य।
3. डॉ. पाण्डेय रामशकल एवं डॉ. करुणा शंकर मिश्र (2008) : मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. वर्मा मनोहर (2007) : बाल साहित्य एक विवेचन, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
5. सेवक, निरंकार देव (2006) : बालगीत साहित्य इतिहास और समीक्षा। हिन्दी संस्थान लखनऊ पृ.स. 119-125

Journals

क. सीयर्स, जे.बी. :- आँकड़ों का वर्गीकरण, विश्लेषण एवं व्याख्या (पीडीएफ)

ख. शर्मा, डॉ. विष्णु दत्त (2001), नैतिक शिक्षा से राष्ट्र का विकास

ग. पाण्डेय, संतोष (2013):- शाश्वत जीवन मूल्यों से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति, शैक्षिक मंथन पत्रिका

घ. व्यास, प्रो. सीताराम (2013) :- जीवन मूल्यों के क्षरण की चुनौती, शैक्षिक मंथन पत्रिका

ङ गुप्ता, डॉ. बजरंग लाल (2013) :- भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में शाश्वत जीवन मूल्य, शैक्षिक मंथन पत्रिका

Websites

i. www.pravakta. com (नैतिक मूल्य मानवता की पहचान : 8 अगस्त 2016)

ii. www.navneethindi.com (नैतिक मूल्य मनुष्य की पहचान : 17 अप्रैल, 2018)

iii. www.jagranjunction.com (नैतिक मूल्य धर्म और हमारा समाज : 8 मई 2015)

iv. w/ww website : थीसिस *shodhaganga*

v. http://www.google.co.in/

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

डॉ. बी. आर. अंबेडकर की पत्रकारिता में सामाजिक चेतना का विमर्श : 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' एवं 'जनता' का आलोचनात्मक अध्ययन

दिनेश कुमार
शोधार्थी, स्कूल ऑफ मीडिया, फिल्म और टेलीविजन अध्ययन,
आईआईएमटी विश्वविद्यालय, मेरठ
ई-मेल : dineshiimt002@gmail.com, मोबाइल : 9457418886
डॉ. नरेंद्र कुमार मिश्रा
प्राध्यापक, स्कूल ऑफ मीडिया, फिल्म और टेलीविजन अध्ययन,
आईआईएमटी विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांश (Abstract)

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर भारतीय सामाजिक न्याय आंदोलन के प्रमुख विचारक, संवैधानिक निर्माता तथा दलित मुक्ति आंदोलन के अग्रदूत थे। उन्होंने पत्रकारिता को केवल सूचना-प्रसार का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन, जनजागरण और राजनीतिक चेतना निर्माण के उपकरण के रूप में प्रयोग किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में अंबेडकर द्वारा संपादित एवं संचालित प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं—'मूकनायक' (1920), 'बहिष्कृत भारत' (1927) तथा 'जनता' (1930)—का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य इन पत्रों के माध्यम से निर्मित सामाजिक चेतना, जाति-विरोधी विमर्श तथा दलित सार्वजनिक क्षेत्र (Dalit Public Sphere) के विकास का विश्लेषण करना है। शोध में ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक एवं गुणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। निष्कर्षतः यह पाया गया कि अंबेडकर की पत्रकारिता ने दलित समुदाय को सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रूप से संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा भारतीय लोकतंत्र में वैकल्पिक जन-विमर्श की आधारशिला रखी।

कुंजी शब्द : डॉ. बी. आर. अंबेडकर, पत्रकारिता, सामाजिक चेतना, मूकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता, दलित विमर्श।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में पत्रकारिता को लंबे समय तक लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति और जनमत निर्माण के प्रमुख माध्यम के रूप में देखा गया है। किंतु औपनिवेशिक भारत के दौरान मुख्यधारा की पत्रकारिता पर उच्च जातीय वर्गों का वर्चस्व था, जिसके कारण दलितों, श्रमिकों तथा वंचित समुदायों की समस्याएँ सार्वजनिक विमर्श में पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं कर सकीं।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने इस स्थिति को गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में देखा। उनका मानना था कि यदि किसी समुदाय की आवाज़ सार्वजनिक क्षेत्र में अनुपस्थित है तो वह समुदाय राजनीतिक और सामाजिक रूप से भी हाशिये पर बना रहेगा। इसी कारण उन्होंने पत्रकारिता को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया।

अंबेडकर की पत्रकारिता केवल समाचार प्रस्तुत करने तक सीमित नहीं थी। इसका उद्देश्य दलित समुदाय में आत्मसम्मान, संगठन, राजनीतिक जागरूकता तथा अधिकार चेतना का विकास करना था। उनके समाचार पत्र सामाजिक अन्याय, जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता तथा ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष के मंच बने।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक, राजनीतिक तथा वैचारिक योगदान पर व्यापक शोध कार्य हुआ है, किन्तु उनकी पत्रकारिता को सामाजिक चेतना निर्माण के उपकरण के रूप में अपेक्षाकृत कम अध्ययन प्राप्त हुआ है। अम्बेडकर की पत्रकारिता केवल सूचना-प्रसार तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह दलित समुदाय के राजनीतिक संगठन, सामाजिक जागरण तथा वैकल्पिक सार्वजनिक क्षेत्र (Alternative Public Sphere) के निर्माण का महत्वपूर्ण माध्यम थी।

अम्बेडकर के जीवन एवं विचारों पर प्रारम्भिक और महत्वपूर्ण अध्ययन एलेनोर ज़ेलियट (Zelliot, 1992) द्वारा किया गया, जिन्होंने दलित आंदोलन के ऐतिहासिक विकास और उसमें अम्बेडकर की केंद्रीय भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत किया। ज़ेलियट के अनुसार अम्बेडकर ने दलितों के लिए वैचारिक नेतृत्व के साथ-साथ संचार के स्वतंत्र मंच भी निर्मित किए, जिनमें 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' तथा 'जनता' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गेल ऑम्वेट (Omvedt, 1994) ने अम्बेडकर को भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के प्रमुख चिंतक के रूप में प्रस्तुत करते हुए यह तर्क दिया कि उनकी राजनीति और लेखन दलित समुदाय के आत्मसम्मान तथा राजनीतिक सशक्तिकरण का आधार बने। ऑम्वेट के अनुसार अम्बेडकर की पत्रकारिता ने दलितों के लिए वैचारिक प्रतिरोध का एक सशक्त मंच तैयार किया।

क्रिस्टोफ़ जाफ्रेलो (Jaffrelot, 2005) ने दलित आंदोलन और भारतीय लोकतंत्र के विकास के संदर्भ में अम्बेडकर की भूमिका का विश्लेषण किया है। उनका मत है कि अम्बेडकर ने पत्रकारिता के माध्यम से दलितों को केवल सामाजिक अन्याय के विरुद्ध जागरूक नहीं किया, बल्कि उन्हें एक संगठित राजनीतिक समुदाय के रूप में स्थापित करने का कार्य भी किया।

शर्मिला रेगे (Rege, 2006) ने अम्बेडकर के लेखन को ष्दलित दृष्टिकोणष के निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखा है। उनके अनुसार अम्बेडकर की पत्रकारिता ने ज्ञान और सत्ता के पारंपरिक ब्राह्मणवादी ढाँचों को चुनौती दी तथा दलित अनुभवों को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया। यह दृष्टिकोण दलित पत्रकारिता को प्रतिरोधी ज्ञान-उत्पादन (Resistant Knowledge Production) के रूप में समझने में सहायक है।

आनंद तेलतुंबड़े (Teltumbde, 2018) ने समकालीन भारत में जाति, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के प्रश्नों का विश्लेषण करते हुए अम्बेडकरवादी चिंतन की वर्तमान प्रासंगिकता को रेखांकित किया है। उनके अनुसार अम्बेडकर की पत्रकारिता आज भी सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करती है।

पत्रकारिता और सार्वजनिक क्षेत्र के सिद्धांतों के संदर्भ में युर्गेन हैबरमास (Habermas, 1989) का "Public Sphere" सिद्धांत महत्वपूर्ण है। हैबरमास के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र वह लोकतांत्रिक मंच है जहाँ नागरिक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर विमर्श करते हैं। किन्तु नैन्सी फ्रेज़र (Fraser, 1990) ने इस अवधारणा की आलोचना करते हुए "Counter Public Sphere" की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसके अनुसार वंचित समुदाय अपने स्वतंत्र सार्वजनिक मंचों का निर्माण करते हैं। अम्बेडकर की पत्रकारिता को इसी वैकल्पिक या प्रतिरोधी सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में देखा जा सकता है।

उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि अम्बेडकर के सामाजिक और राजनीतिक विचारों पर पर्याप्त अध्ययन उपलब्ध

है, किन्तु उनकी पत्रकारिता को सामाजिक चेतना निर्माण, दलित सार्वजनिक क्षेत्र के विकास तथा प्रतिरोधी विमर्श के निर्माण के संदर्भ में समेकित रूप से कम विश्लेषित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन इसी शोध-अंतर (Research Gap) को भरने का प्रयास करता है तथा 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' के माध्यम से अम्बेडकर की पत्रकारिता में सामाजिक चेतना के विमर्श का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शोध-अंतर (Research Gap)

उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन पर पर्याप्त शोध कार्य उपलब्ध है, किन्तु उनकी पत्रकारिता को सामाजिक चेतना निर्माण, दलित सार्वजनिक क्षेत्र के विकास तथा प्रतिरोधी विमर्श के निर्माण के संदर्भ में 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में सीमित रूप से विश्लेषित किया गया है। विशेषतः इन पत्र-पत्रिकाओं की वैचारिक विकास-यात्रा, उनके भाषिक-वैचारिक प्रतिरोध तथा दलित समुदाय के राजनीतिक सशक्तिकरण में उनकी भूमिका का समेकित अध्ययन अपेक्षाकृत दुर्लभ है। प्रस्तुत शोध इसी शोध-अंतर को संबोधित करते हुए अम्बेडकर की पत्रकारिता का ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिससे दलित पत्रकारिता और वैकल्पिक सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा को समझने में नई अकादमिक अंतर्दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

शोध के उद्देश्य

- डॉ. अंबेडकर की पत्रकारिता में सामाजिक चेतना के स्वरूप का विश्लेषण करना।
- 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' के वैचारिक विकासक्रम का अध्ययन करना।
- दलित आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन में इन पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका का मूल्यांकन करना।
- अंबेडकर की पत्रकारिता की समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

शोध प्रश्न

1. अंबेडकर की पत्रकारिता सामाजिक चेतना निर्माण में किस प्रकार सहायक बनी?
2. 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' की वैचारिक दिशा में क्या परिवर्तन दिखाई देता है?
3. इन पत्र-पत्रिकाओं ने दलित सार्वजनिक क्षेत्र (Dalit Public Sphere) के निर्माण में क्या योगदान दिया?
4. समकालीन मीडिया विमर्श में अंबेडकर की पत्रकारिता की क्या प्रासंगिकता है?

शोध पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) एवं ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक (Historical&Analytical) शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में प्राथमिक स्रोतों के रूप में डॉ. अंबेडकर के संपादकीय लेख, Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches (BAWS) तथा उनके समाचार पत्रों की उपलब्ध प्रतियों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के रूप में पुस्तकें, शोध-पत्र, जर्नल लेख तथा दलित पत्रकारिता संबंधी साहित्य का उपयोग किया गया है।

सैद्धांतिक आधार (Theoretical Framework)

यह अध्ययन मुख्यतः निम्न सिद्धांतों पर आधारित है—

1. सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sphere) जर्गन हैबरमास

हैबरमास के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र वह स्थान है जहाँ नागरिक सामाजिक एवं राजनीतिक मुद्दों पर विमर्श करते हैं।

अंबेडकर की पत्रकारिता ने दलित समुदाय के लिए एक वैकल्पिक सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया।

2. काउंटर पब्लिक स्फीयर (Counter Public Sphere) नैन्सी फ्रेज़र- फ्रेज़र का तर्क है कि वंचित समूह अपने स्वतंत्र सार्वजनिक मंच विकसित करते हैं। अंबेडकर के समाचार पत्र दलित समुदाय के ऐसे ही वैकल्पिक मंच थे।

3. क्रिटिकल डिस्कोर्स एनालिसिस (Critical Discourse Analysis) यह दृष्टिकोण भाषा और सत्ता के संबंधों का अध्ययन करता है। अंबेडकर की पत्रकारिता ने जाति-आधारित सत्ता संरचनाओं को चुनौती दी और उनके विरुद्ध प्रतिरोधी विमर्श निर्मित किया।

'मूकनायक' : मौन समुदाय की आवाज़

31 जनवरी 1920 को प्रकाशित 'मूकनायक' अंबेडकर की पत्रकारिता यात्रा का प्रथम चरण था। इसका उद्देश्य उन समुदायों को आवाज़ देना था जो सामाजिक रूप से मौन बना दिए गए थे।

प्रथम संपादकीय में अंबेडकर ने भारतीय समाज को एक बहुमंजिला मीनार की उपमा दी, जिसमें विभिन्न जातियाँ अलग-अलग मंजिलों पर स्थित हैं और उनके बीच कोई सामाजिक गतिशीलता नहीं है। यह उपमा भारतीय जाति व्यवस्था की कठोरता को स्पष्ट करती है।

'मूकनायक' में अस्पृश्यता, शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर नियमित चर्चा की गई। इस पत्र ने दलित समुदाय में आत्मसम्मान और राजनीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

'बहिष्कृत भारत' : प्रतिरोध और संघर्ष का मंच

3 अप्रैल 1927 को आरंभ 'बहिष्कृत भारत' अंबेडकर की पत्रकारिता का अधिक संघर्षशील चरण था। यह महाड़ सत्याग्रह और दलित अधिकार आंदोलनों के दौर में प्रकाशित हुआ।

इस पत्र में जाति व्यवस्था, ब्राह्मणवादी वर्चस्व और धार्मिक रूढ़ियों की तीखी आलोचना की गई। अंबेडकर ने दलित समुदाय को केवल पीड़ित समुदाय के रूप में प्रस्तुत नहीं किया बल्कि उन्हें संघर्षशील सामाजिक शक्ति के रूप में स्थापित किया।

महाड़ सत्याग्रह से संबंधित संपादकीयों में उन्होंने सामाजिक समानता और नागरिक अधिकारों की आवश्यकता पर बल दिया। यह पत्र दलित आंदोलन के राजनीतिक विस्तार का महत्वपूर्ण माध्यम बना।

'जनता' : निर्माण और संगठन का विमर्श

25 नवंबर 1930 को प्रकाशित 'जनता' अंबेडकर की पत्रकारिता का सबसे परिपक्व चरण था। इस पत्र ने दलित प्रश्नों को व्यापक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भों से जोड़ा।

'जनता' में श्रमिक अधिकार, महिलाओं की स्थिति, लोकतंत्र, शिक्षा, आर्थिक विकास तथा धार्मिक स्वतंत्रता जैसे विषयों पर गंभीर चर्चा हुई। यह पत्र केवल दलित समुदाय तक सीमित नहीं रहा बल्कि व्यापक सामाजिक परिवर्तन की परियोजना का हिस्सा बना।

यहाँ अंबेडकर की भाषा अधिक रणनीतिक, विश्लेषणात्मक और रचनात्मक दिखाई देती है।

तुलनात्मक विश्लेषण

पक्ष	मूकनायक	बहिष्कृत भारत	जनता
प्रमुख उद्देश्य	जागरण	संघर्ष	निर्माण
स्वर	चेतनात्मक	प्रतिरोधात्मक	संगठनात्मक

लक्ष्य समूह	दलित समुदाय	बहिष्कृत वर्ग	व्यापक जनसमुदाय
प्रमुख विमर्श	शिक्षा एवं अधिकार	सामाजिक न्याय	लोकतंत्र एवं राष्ट्र निर्माण

इन तीनों पत्रों को अंबेडकर की वैचारिक यात्रा के क्रमिक चरणों के रूप में देखा जा सकता है। 'मूकनायक' चेतना का प्रारंभ है, 'बहिष्कृत भारत' प्रतिरोध का विस्तार है और 'जनता' सामाजिक पुनर्निर्माण की परियोजना है।

दलित सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण

अंबेडकर की पत्रकारिता ने दलित समुदाय को एक वैकल्पिक संवाद मंच प्रदान किया। यह मंच मुख्यधारा मीडिया के वर्चस्व को चुनौती देता था। इन पत्रों के माध्यम से दलितों ने अपनी समस्याओं, आकांक्षाओं और राजनीतिक मांगों को सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया।

इसी कारण अंबेडकर की पत्रकारिता को भारतीय लोकतंत्र में 'दलित सार्वजनिक क्षेत्र' के निर्माण की आधारशिला माना जा सकता है।

समकालीन प्रासंगिकता

आज भी मीडिया प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय और हाशिये के समुदायों की आवाज़ से जुड़े प्रश्न प्रासंगिक बने हुए हैं। डिजिटल मीडिया के विस्तार के बावजूद अनेक समुदाय सार्वजनिक विमर्श में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त कर पाए हैं।

ऐसी स्थिति में अंबेडकर की पत्रकारिता स्वतंत्र, जनोन्मुख और न्यायपरक मीडिया की प्रेरणा प्रदान करती है। उनका पत्रकारिता दृष्टिकोण लोकतंत्र, समानता और सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्यों को मजबूत करता है।

निष्कर्ष

डॉ. बी. आर. अंबेडकर की पत्रकारिता सामाजिक चेतना निर्माण का एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी प्रयास थी। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' केवल समाचार पत्र नहीं थे, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के वैचारिक उपकरण थे। इन पत्रों ने दलित समुदाय को आवाज़ प्रदान की, जातिगत अन्याय के विरुद्ध संघर्ष को संगठित किया तथा लोकतांत्रिक विमर्श में वंचित वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित की। अंबेडकर की पत्रकारिता आज भी सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है।

संदर्भ सूची (APA 7th Edition)

Ambedkar, B. R. (1989). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches (Vol. 1). Government of Maharashtra.

Ambedkar, B. R. (1990). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches (Vol. 9). Government of Maharashtra.

Ambedkar, B. R. (2014). Annihilation of caste. Navayana.

Ambedkar, B. R. (2016). Who were the Shudras? Critical Quest.

Fraser, N. (1990). Rethinking the public sphere: A contribution to the critique of actually existing democracy. Social Text, 25/26, 56-80.

Guru, G. (Ed.). (2009). Humiliation: Claims and contexts. Oxford University Press.

Habermas, J. (1989). The structural transformation of the public sphere: An inquiry into a category of bourgeois society. MIT Press.

Ilaiah, K. (2009). Why I am not a Hindu: A Sudra critique of Hindutva philosophy, culture and political economy. Samya.

Jaffrelot, C. (2005). Dr. Ambedkar and untouchability: Analysing and fighting caste. Permanent Black.
Keer, D. (2018). Dr. Ambedkar: Life and mission. Popular Prakashan.
Moon, V. (Ed.). (2002). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches (Selected Volumes). Government of Maharashtra.
Omvedt, G. (1994). Dalits and the democratic revolution: Dr Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. Sage Publications.
Pais, A. (2020). Becoming Babasaheb: The life and times of Bhimrao Ramji Ambedkar. Navayana.
Rege, S. (2006). Writing caste, writing gender: Narrating Dalit women's testimonios. Zubaan.
Rodrigues, V. (Ed.). (2002). The essential writings of B. R. Ambedkar. Oxford University Press.
Teltumbde, A. (2018). Republic of caste: Thinking equality in the time of neoliberal Hindutva. Navayana.
Thorat, S., & Kumar, N. (Eds.). (2008). B. R. Ambedkar: Perspectives on social exclusion and inclusive policies. Oxford University Press.
Zelliot, E. (1992). From untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar movement. Manohar Publishers.
Zelliot, E. (2001). Ambedkar's world: The making of Babasaheb and the Dalit movement. Navayana.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारतीय कला में सौंदर्य परख दृष्टिकोण

डॉ. संध्या पाण्डेय
(ललित कला विभाग)
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट
Email-Spandhya5@gmil.com

सौंदर्य और कला की रूप वाहिनी अपनी सांस्कृतिक परंपरा में अटूट संस्कार देती है। मन के धरातल पर कला की अवधारणा जब कृति में प्रकट होती है, तब वह कलात्मक कहलाती है। मानव प्रकृति दोनों के साहचार्य संबंधों में कलात्मक अभिव्यक्ति में मूलभूत उदभूत मानी गई है।

सौंदर्य वह गुण है जो आनंद एवं प्रशंसा की अनुभूति कराता है यह देखने वाले के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार की अनुभूति करता है, कला सौंदर्य को प्रकट करती है और सौंदर्य कला को अर्थपूर्ण बनता है। सौंदर्य को भाषा के जैसे से देखें तो सौंदर्य शब्द अंग्रेजी के Beauty से बनाया गया है Beau का अर्थ है प्रिया तथा टी भाव वाचक प्रत्यय हैं, इस पर इस प्रकार ब्यूटी का अर्थ है वह गुण जो इंद्रियों को तीव्र आनंद देता है और प्रफुल्लित करता है। सुंदर हमारी दृष्टि का बोध है लेकिन दर्शन इसका आध्यात्मिक रूप अर्थात जिस पक्ष पर मन और मस्तिष्क एक ही हो वही कलात्मक सौंदर्य कहलाता है। कला और सौंदर्य हमेशा ही एक दूसरे के पूरक का काम करते हैं। कला का पहला गुण रूप सौंदर्य परख है दूसरा बौद्धिक या शैक्षिक है तीसरा आध्यात्मिक है, इन्हीं तीनों के समावेश से कल संरचना का कार्य होता है, कला के लक्ष्य में मानव के समस्त भावों की अभिव्यक्ति अभिव्यंजक गुण है कलाकृति का सौंदर्य शाश्वत प्रतिमान है, प्राचीन काल हो या आधुनिक काल दोनों ही सौंदर्य की नई-नई परिभाषाएं संरचना प्रमाणित करते हैं। सुंदर के प्रति आकर्षण सदैव मनुष्य के मन में रहा है जिससे वह अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता था और वह कला कहलाती थी, कोई भी कला चाहे वह मूर्ति कला हो या कास्ट कला संगीत नृत्य नाटक कला चित्रकला आदि सभी कलाओं में सौंदर्य पक्ष अपना प्रभाव डालता है बिना सौंदर्य के कलाअधूरी है। कला और सौंदर्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं कला भावना की अभिव्यक्ति मानी गई है सौंदर्य उसकी अभिव्यक्ति का गुण है जो मन खुशी एवं शांति दुःख सभी अनुभवों का प्रभाव डालती है। कला उसका मार्ग प्रशस्त करती है। भारत में काल चिंतन तथा सौंदर्य शास्त्र का विशिष्ट अन्वेषण वैदिक काल में भी जिसमें वेदिकाओं ऋचाओं और देवी देवताओं के चित्रों मूर्तियों में अलंकरण सौंदर्य का भाव दिखाई देता है। जिसमें हमें पारलौकिक शक्ति अलौकिक शक्ति चेतन मन तथा अचेतन मन का सृजन भी देखने को मिलता है। जिसमें धर्म साधना में ऋषियों ने आत्मा एवं परमात्मा में ही सत्यम शिवम् सुंदरम को रस आनंद अनुभूति के रूप में पाया है। भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में भी सौंदर्य को श्री नाम से संबोधित किया गया है, वेदों में सौंदर्य के अनेक पर्याय मिलते हैं, जैसे चारु, चित्र, पिया रूप, कल्याण अद्भुत रस आदि। भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित नाट्य शास्त्र सौंदर्य एवं रस तत्व की सबसे प्राचीनतम प्रमाणिकता को दर्शाता है, जिसमें भाव रस सौंदर्य का वर्णन अद्भुत रूप से है, इसी से हमारे मन विचारों में रस एवं भावों की अनुभूति होती है।

भारतीय कला के क्षेत्र में सौंदर्य शास्त्र का विकास सहस्त्र शताब्दियों तक फैली एक आकर्षक यात्रा है, जो किसी राष्ट्र

की आत्मा के रूप में भी कार्य करती है, जिसमें तत्कालीन मानव द्वारा जो प्रतीकात्मक मंडल बनाए जाते हैं जैसे मोहरे, नकाशी, यंत्र मूर्तियां, चित्र रेखाएं आदि संरचनाएं जिसमें सौंदर्य और कला दोनों निहित रहती है, सिंधु घाटी सभ्यता में मिले मोहरे और पशु पक्षियों की मूर्तियां देवी देवताओं की आकृतियां भी सौंदर्य का प्रमाण है। इसी विकास की धारा के क्रम में अजंता एलोरा की गुफाओं के भित्ति चित्र से गुजरती है यात्रा मुगल काल के लघु चित्रों और बर्तनों इन वस्तुओं में अलंकरण की प्रथा सुंदरता का प्रमाण देती है। भारतीय चित्रकला के विकास की धारा में भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने देश के धार्मिक विश्वास और दर्शनों के साथ-साथ सामाजिक मुद्दों को भी एक साथ बुनती है। जिसमें नई तकनीकी नए विचार और प्रभावों को समाहित करके तत्कालीन परिवेश में नए सौंदर्य के साथ रच कर आगे बढ़ते हैं।

कलाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों से होती है इसमें सौंदर्य और भाव पक्ष अपनी एक गहन भूमिका निभाते हैं। पेंटिंग हो या मूर्ति कला संगीत और नाट्य ध यह कलाएं न केवल मनुष्य के जीवन को आनंदित करती हैं बल्कि उन्हें सौंदर्य भी प्रदान करती हैं, भारतीय सौंदर्य शास्त्र की दर्शन एवं आध्यात्मिक के गहन एकीकरण के द्वारा है जिसमें जो भावनाएं जोड़ने हृदय तक पहुंचाने का कार्य करते हैं।

निष्कर्ष के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मानव जीवन में सदैव कल की महत्वपूर्ण भूमिका रही है आदिकाल से लेकर मनुष्य के हथियारों के गठन में निरंतर सौंदर्य विकास की ओर बढ़ता चला गया है इसके साथ प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन पर चित्रकारी करके उसे सुंदर बनाते थे दीवारों पर पुट्टी या लेपन करके डिजाइन चित्रकार अलंकरण करने की भी प्रक्रिया देखी गई है जिसमें हम कह सकते हैं कि सभी कालों में जैसे अजंता एलोरा खजुराहो की कलाकृति में सौंदर्य एवं कला का अंगूठा संगम और उदाहरण के तौर पर हमारे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। नायक नायिका, सुर सुंदरी गंधर्व रानियों किशनगढ़ शैली में राधा कृष्ण की मनमोहक चित्रों के चित्रों में श्रृंगार रस से सौंदर्य का महत्व पूर्ण स्थान है, जिसमें समय के साथ सादगी कारण है, इसमें समय के साथ सादगी कनक पुनर्गठन आविष्कार का काम भी किया गया, सुंदर है हमारी आंखों से होकर मां के भाव को प्रभावित करता है मानव प्रवृत्ति के अनुसार मनुष्य सौंदर्य के और आकर्षित होता है, उसकी सभी वस्तुओं में जैसे वस्त्र, सजाने की वस्तुएं, घरेलू वस्तुएं के जीवन में उपयोग किए जाने सभी में सौंदर्य समाहित है।

कला अपने नए-नए स्वरूप से मनुष्य के रोम रोम में बसी हुई है मनुष्य के उठने बैठने चलने कार्य करने करने की विभिन्न शैलियों में कला और सौंदर्यता ना हो तो वह फुहरता सा प्रतीत होता है उसे कोई नहीं देखता। सौंदर्य के प्रति आकर्षित होकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करना ही कला है।

सौंदर्य और कला मनुष्य के सामाजिक भौतिक और दैनिक सभी जीवन पर प्रभाव डालते हैं, मानव और प्रकृति का संबंध जन्म के साथ है, जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता है और प्रकृति के बदलते हुए स्वरूप को जैसे फूल पेड़ वृक्ष नदी पेड़ पौधे पशु पक्षी आदि सभी सुंदर वस्तुओं को देखकर आकर्षित होता है, उन्हें पकड़ने की कोशिश करता है, और मन ही मन में आनंदित होता है प्रकृति सबसे बड़ी रचनाकार है इसके प्रत्येक कण में नई आकृतियां रचित होते हैं। प्रकृति सौंदर्य और कला का सबसे अनूठा उदाहरण है जो मानव के अंदर रचनात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देता है।

ललित कलाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती रही है, इन कलाओं के माध्यम से मनुष्य के जीवन को न केवल आनंद की अनुभूति होती है बल्कि सौंदर्यता भी प्रदान करती हैं। समाज में यदि कोई सार्थक बदलाव लाना है तो व्यक्ति की व्यक्तिकता को सार्थक दिशा प्रदान करने में कलाओं की अहम भूमिका रहती है यह व्यक्ति की भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करने का अवसर भी प्रदान करते हैं, समाज के दर्पण के रूप में प्रत्येक युग में ललित कलाओं के माध्यम से संस्कृति तथा व्यक्ति के कार्यों को प्रकट करने का माध्यम रहे हैं, यह कलाएं विभिन्न इमारत की संरचनाओं को डिजाइन करने की कला हो या मूर्ति कला हो सभी कलाओं में सौंदर्य और उपयोगिता का संयोजन उत्कृष्ट कृतियां देखने को मिलती हैं, इनसे हमें इन इमारत को देखने के बाद कलाओं को देखने के बाद हमें सौंदर्य बोध और विज्ञान दोनों का बोध होता है। कल मनुष्य और समाज दोनों का आईना का काम करती हैं।

विषय सूची

गोपाल मधुकर-प्राचीन चित्रकला विधि विधान
डॉ. राजेंद्र बाजपेई-सौंदर्य, मध्य प्रदेश हिंदी अकादमी -डॉ धीरेंद्र वर्मा -कला और सौंदर्य
डॉक्टर हरिद्वारी शर्मा-सौंदर्य शास्त्र
डॉ मोहन सिंह मावड़ी-भारतीय कला सौंदर्य
अर्थातो सौंदर्य जिज्ञासा-रमेश कुंतल (वाराणसी प्रकाशन नई दिल्ली)

मध्यप्रदेश में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति
(15वीं विधानसभा के विशेष संदर्भ में)

अंजुलि शुक्ला
शोधार्थी, शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

डॉ. एस.पी. शुक्ला
शोध निर्देशक, प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

सारांश

महिलायें देश की आबादी का आधा हिस्सा है, लेकिन राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व बेहद कम है। आजादी के 70 साल बीत जाने के बाद आज भी राजनीति में महिलाओं की भागीदारी मे कोई खास बढ़ोत्तरी नही हो पाई है। महिलायें जीवन के हर क्षेत्र में अपनी क्षमता साबित कर रही है। किन्तु राजनीति का क्षेत्र उनके लिए अभी भी दूर है, महिलाएं राजनीति में रूचि नहीं ले रही है। तथा महिलाओं के लिए राजनीति का अर्थ मतदान करना ही रह गया है। म.प्र. की 15वीं विधानसभा के मतदान में महिला मतदाता ने हिस्सा लिया किन्तु महिला प्रत्याशी की संख्या में कोई परिर्वतन नहीं हुआ। हमेशा की तरह पुरूष प्रत्याशी महिला प्रत्याशी से अधिक मत से विजयी रहे।

प्रस्तुत शोधपत्र मध्यप्रदेश में महिलाओं की राजनैतिक स्थिति पर केन्द्रित है। इस शोध पत्र में म.प्र. की राजनीति में महिला सहभागिता और जागरूकता का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द:- स्वतंत्रता, संवैधानिकता, राजनीति दल, महिला जागरूकता, विधानसभा, उम्मीदवार।

प्रस्तावना

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य का अंग रहा है। यह क्षेत्र सम्राट अशोक के समय बौद्ध धर्म के आलोक से प्रकाशित होने वाला मध्यप्रदेश 1 नबंबर 1956 को देश के नक्शे पर अपने अस्तित्व में आया। म.प्र. मध्यभारत, विंध्य प्रदेश, भोपाल राज्य एवं पुराने मध्य भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्र के एकीकरण से बना।

सन् 1956 के पूर्व छत्तीसगढ़ और वर्तमान महाकौशल सीपी बरार के हिस्से थे। जिन्हे सम्मिलित रूप से म.प्र. कहा जाता था। लेकिन सीमा रेखा और स्थिति वर्तमान म.प्र. से काफी भिन्न थी। म.प्र. देश के मध्य में स्थित है। इसलिए इसे हृदय प्रदेश भी कहा जाता है। म.प्र. को ब्रिटिश काल में सेट्रल प्रोविसेस के नाम से जाना जाता था। 1 नवंबर 2000 को छत्तीसगढ़ के अलग होने के पश्चात् 3,08,245 वर्ग कि.मी के. साथ म.प्र. वर्तमान स्थिति में है। वर्तमान में 52 जिले है।

म.प्र. में विधानसभा की 230 सीट है। राज्य से भारत की संसद को 40 सदस्य भेजे जाते है। जिनमें से 29 सदस्य लोक सभा और 11 सदस्य राज्यसभा के लिये नियुक्त होते है। राज्य का संवैधानिक प्रमुख राज्यपाल होता है। जोकि भारत के राष्ट्रपति द्वारा केन्द्र सरकार की अनुशंसा पर नियुक्ति किया जाता है। जो राज्य का कार्यकारी प्रमुख होता है। वर्तमान में राज्य के राज्यपाल लाल जी टंडन तथा मुख्यमंत्री कांग्रेस के कमलनाथ जी हैं। दिसंबर 2018 में राज्य के चुनाव में कांग्रेस

ने 114 सीटो में जीत हासिल की। म.प्र. विधानसभा में मनोनीत एग्लो इण्डियन मिलाकर 231 सदस्य है। एंग्लो इण्डियन सदस्य का मनोनयन राज्यपाल द्वारा किया जाता है। म.प्र. की विधानसभा में पुरूष प्रत्याशी के साथ साथ महिला प्रत्याशियों की भी उपस्थिति रही है। म.प्र. की विधानसभा में महिला प्रत्याशी रूचि ले रही है। तथा समय समय पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। म.प्र. राजनीति में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रहीं है। मतदान के दौरान महिलाएँ बढ़ कर हिस्सा लेती है। न सिर्फ मतदान में अपितु प्रत्याशी के रूप में भी महिलाओं की भूमिका अग्रणी है। समय-समय पर महिला मंत्री पद भी धारण की है। 2018 विधानसभा में 2 महिला विधायकों को मंत्री पद मिला है।

1. **श्रीमती इमरती देवी** - महिला एवं बाल विकास मंत्री
2. **डॉ. विजयलक्ष्मी साधौ** - संस्कृति शिक्षा एवं आयुष विभाग

उद्देश्य

1. म.प्र. की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन।
2. म.प्र. की राजनीति में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन।
3. म.प्र. विधानसभा में महिला विधायकों का अध्ययन।
4. म.प्र. महिलाओं में राजनीतिक जागरूता का अध्ययन।
5. म.प्र की राजनीति में महिला प्रत्याशी की संख्या में कमी के कारणों का अध्ययन।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोधपत्र, में द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। द्वितीयक स्रोतों से अध्ययन सामग्री एकत्र की गई है। जिसमें पत्र, पत्रिकायें, पुस्तके तथा Internet का प्रयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षा

1. **बारबरा बर्टेल** (2017)[1] ने अध्ययन में यह पाया कि सयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं ने राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी आवाज का इस्तेमाल किया है। तथा आर्थिक और सरकारी अभिजातवर्गो की असमान प्रथाओं के खिलाफ कार्यवाही का विरोध किया।

2. **मृणाल पाण्डे** (1987)[2] ने अपने अध्ययन में पाया कि हमारे उपनिषदों पुराणों के समय से स्त्रियों को लेकर जिन नियमों और मर्यादाओं की रचना हुई उनकी स्वाधीनता और आत्मनिर्भरता के खिलाफ निहित स्वार्थ द्वारा जो महीन किस्म का सांस्कृतिक षडयंत्र रचा गया है। वह आज के समय में भी चल रहा है। भारतीय राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति नाम मात्र की है।

3. **शीला मिश्रा** (1989)[3] ने अपने अध्ययन में पाया कि व्यवहारिक दृष्टि से सभी महिला राजनीतियों एवं सक्रिय कार्यकर्ताओं को किसी एक वर्ग में सम्मिलित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

4. **एस अखिलेश, संध्या शुक्ला** (2012)[4] ने अपने अध्ययन में पाया कि महिलाओं ने राजनीति एक वेहद कठिन डगर है। क्योंकि महिलाये खेतों, घरों में काम करती है। तथा बच्चों का पालन पोषण करती है। अधिकतर महिलायें स्वेच्छा से पंचायत का कार्य करने में असमर्थ प्रतीत होती है।

मध्यप्रदेश की राजनीति में महिलाओं की स्थिति

जब राजनीति में महिला भागीदारी की बात आती है तो ऑकड़े वेहद निराशाजनक होते है। राजनीति हिस्सेदारी के मामले के सभी पार्टियों का रवैया लगभग एक जैसा होता है। विधानसभा, लोकसभा और राज्य सभा में महिलाओं के लिये आरक्षण

की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं है। इसलिये पार्टियों का तर्क होता है। कि सरकार बनाने के लिये उस उम्मीदवार को टिकट दिया जाये जो जीत दिला सके। आजादी के 7 दशक बाद की संसद में महिलाओं की हिस्सेदारी मात्र 12 प्रतिशत ही है।

म.प्र. को गठन 1956 में हुआ और म.प्र. के आम चुनाव 1957 में हुये जिसमें उम्मीदवारों ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। 1957 के चुनाव में 36 महिला उम्मीदवारों ने हिस्सा लिया किन्तु उनमें से सिर्फ 15 उम्मीदवार ही विजय प्राप्त कर पाई। इसी क्रम में 1962 के आम चुनाव में 40 महिला प्रत्याशियों ने हिस्सा लिया और सिर्फ 15 प्रत्याशी ही जीत हासिल कर पाई। तथा 1967 के विधानसभा चुनाव में 17 महिला प्रत्याशियों ने भाग लिया और केवल 10 महिला की विधायक बन पाई। उसी तरह 1972 में भी विधान सभा का चुनाव हुआ और इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ की एक भी महिला प्रत्याशी जीत नहीं पाई। और महिला प्रत्यशियों का मनोवल टूट सा गया किन्तु अगले मतदान 1977 में फिर से 48 महिलाओं से भाग लिया और उनमें से 10 महिला प्रत्याशियों ने विजय प्राप्त की और अपना टूटा हुआ मनोवल फिर प्राप्त किया। 1980 में 50 महिला उम्मीदार चुनावी मैदान में आई और 18 महिला उम्मीदवार ने विजय प्राप्त किया। 1985 में महिला उम्मीदवारों की संख्या में वश्द्धि हुई और इस बार 75 महिला उम्मीदवार चुनावी मैदान में आई और अब तक की सबसे ज्यादा महिला विजयी विधायकों का रिकार्ड बनाया 1985 में सबसे ज्यादा महिला विधायक विधानसभा में थी। इस प्रकार 1990 में महिला उम्मीदवारों की संख्या में वश्द्धि हुई और उनकी संख्या 153 हो गई और विजय प्राप्त करके सिर्फ 11 महिला ही विधानसभा पहुंची। 1993 के आम चुनाव में महिला उम्मीदवारों की संख्या 153 थी में म.प्र. की दशवी विधान सभा चुनाव हुआ था जिसमें 181 महिला प्रत्याशी थी एवं मात्र 26 महिला उम्मीदवार ही विधायक बनी थी। 2003 के विधानसभा चुनाव में 199 महिला प्रत्याशियों ने भाग लिया और 18 महिला विधायक विधानसभा पहुंची। 2008 विधानसभा चुनाव में 226 महिला उम्मीदवारों ने भाग लिया और सिर्फ 19 महिला ही विजयी हुई है। 2013 में 200 महिला प्रत्याशी ने भाग लिया और 30 महिला विधायक बनी।

15वीं विधानसभा में महिला विधायक

म.प्र. की सभी 230 विधानसभा सीटों पर कुल 2899 प्रत्याशी मैदान में थें, जिसमें 250 महिलायें भी अपनी किस्मत अजमा रही थी। प्रदेश की 230 सीटों में से बीजेपी ने 23 और कांग्रेस ने 28 महिलाओं को मैदान में उतारा है। ये आंकड़ा 15 फीसदी से भी कम है। 15वीं विधानसभा में कुल प्रत्याशियों का विवरण -

तालिका क्र. 1

राजनीतिक दल	14वी विधानसभा	15वी विधानसभा
इण्डियन नेशनल कांग्रेस	58	114
भारतीय जनता पार्टी	165	109
बहुजन समाजवादी पार्टी	4	2
समाजवादी पार्टी	-	1
निर्दलीय	3	4
कुल सदस्य	230	230

स्रोत -चुनाव आयोग के आकड़े के अनुसार

इसी क्रम में महिला विधायकों की संख्या का विवरणः-

तालिका क्र. 2

राजनीतिक दल	14वी विधानसभा / 2013	15वी विधानसभा / 2018
इण्डियन नेशनल कांग्रेस	6	9
भारतीय जनता पार्टी	22	11
बहुजन समाजवादी पार्टी	2	1
कुल महिला सदस्य	30	21

स्रोत -चुनाव आयोग के आकड़े के अनुसार

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 14वी विधानसभा में 30 महिला विधायक थी तथा 15वी विधानसभा में 21 महिला विधायक ही विधानसभा में पहुँच सकी। तथा तालिका में यह भी ज्ञात होता है, कि महिला विधायकों की संख्या में कमी आई है। इस वर्ष जो भी महिला विधायक विजयी हुई है। वह निम्न हैः-

तालिका क्र. 3

क्र.	नाम	दल	निर्वाचन क्षेत्र
1	श्रीमती इमरती देवी	कांग्रेस	डबरा
2	श्रीमती रक्षा संतराम सरोनिया	कांग्रेस	भाण्डेर
3	श्रीमती यशोधरा राजे सिंधिया	भाजपा	शिवपुरी
4	श्रीमती रामबाई गोविन्द्र सिंह	बसपा	पथरिया
5	श्रीमती मनीषा सिंह	भाजपा	जैतपुर
6	सुश्री मीना सिंह	भाजपा	मानपुर
7	श्रीमती नंदनी भरावी	भाजपा	सिहोरा
8	सुश्री हिना लिखीराम कावरे	कांग्रेस	लांजा
9	श्रीमती सुनीता पटेल	कांग्रेस	गाडरवारा
10	श्रीमती लीना संजय जैन	भाजपा	बासौदा
11	श्रीमती राजश्री रूद्र प्रताप सिंह	भाजपा	शमशावाद
12	श्रीमती कृष्णा गौर	भाजपा	गोविन्द्रपुरा
13	श्रीमती गायत्री राजे पवार	कांग्रेस	देवास
14	श्रीमती सुमित्रा देवी कास्डेकर	कांग्रेस	नेपालनगर
15	श्रीमती झूमा डॉ ध्यानसिंह सोलंकी	कांग्रेस	भीकनगॉव
16	डॉ विजयलक्ष्मी साधों	कांग्रेस	महेश्वर
17	सुश्री चन्द्रभागा किराड़े	कांग्रेस	पानसेमल
18	सुश्री कलावती भशरिया	कांग्रेस	जोबट
19	श्रीमती नीना विक्रम वर्मा	भाजपा	धार
20	श्रीमती मालिनी लक्ष्मण सिंह गौड	भाजपा	इंदौर-4
21	सुश्री उषा ठाकुर	भाजपा	डॉ. अम्बेडकर नगर महु

उक्त तालिका द्वारा यह स्पष्ट है, कि 15 वी विधानसभा 2018 में 21 महिला विधायक हैं इनमें से कुछ विधायकों को दोबारा विधानसभा पहुंचने का मौका मिला जो निम्न है– श्रीमती इमरती देवी, श्रीमती यशोधरा राजे सिंधिया, सुश्री मीना सिंह, श्रीमती नंदनी भरावी, सुश्री हीना लिखी राम कावरे, श्रीमती गायत्री राजे पवार, श्रीमती झूमा, डॉ ध्यान सिंह सोलंकी, श्रीमती नीना विक्रम वर्मा, श्रीमती मालिनी लक्ष्मण सिंह गौड, सुश्री उषा ठाकुर तथा शेष विधायक नव निर्वाचित हुई है इनमें से 2 महिला विधायकों को मंत्री पद भी प्राप्त है।

1. श्रीमती इमरती देवी - महिला एवं बाल विकास
2. डॉ विजयलक्ष्मी साधौ - संस्कृति शिक्षा एवं आयुष विभाग

निष्कर्ष

म.प्र. की विधान सभा में कुल विधायकों की अपेक्षा महिला विधायकों की संख्या में कमी आई है। क्योंकि राजनीतिक पार्टियॉ टिकट के आंबटन में महिला प्रत्याशी के आपेक्षा पुरूष प्रत्याशियों पर अधिक विश्वास दर्शाते है जिस कारण 21वीं सदी में भी महिलाएँ राजनीति में अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करा पा रही है। जिस कारण महिला विधायकों की संख्या में कमी आई है। म.प्र. विधानसभा के 230 सदस्यों ने से सिर्फ 21 महिला सदस्य है। म.प्र. की 15 वी विधानसभा में केवल 8.4 प्रतिशत फीसदी ही महिलायें है। जबकि 14वीं विधानसभा में 13 फीसदी थी।

म.प्र. विधानसभा को लेकर कुछ शोध की किये गये है–

इण्डिया स्पेंड ने म.प्र. के विधान सभा चुनावों पर एक शोध किया था। जिसमें पाया गया कि कुल विधायकों की संख्या का सिर्फ 8.4 ही महिला विधायक है। बल्कि 2013-14 से हुई चुनावों में 13 प्रतिशत महिला विधायक थी।

सुझाव

1. सामाजिक न्याय के अन्तर्गत महिलाओं को एक धरातल पर स्थान प्राप्त है। महिलाओं को न्याय से भी दूर रखा जाता है इसके लिये महिलाओं को जागरूक होना चाहिए।

2. सामाजिक एवं राजनीतिक के क्षेत्र में महिलाओं की योग्यतानुसार निर्णय निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता सुनिश्चित करना।

3. महिलाओं की जागरूकता के लिये कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

4. म.प्र. की राजनीतिक पार्टियों को महिला प्रत्याशियों की संख्या में वृद्धि करना चाहिये।

5. पंचायती चुनाव में म.प्र. में 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है, ठीक इसी प्रकार विधानसभा में भी आरक्षण मिलना चाहिये।

संदर्भ सूची

1. Burrell, Barbara (2017) Woman and Politics, America, Policy Studies organization.
2. पाण्डे मृणाल (1987) स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।
3. मिश्रा शीला (1989), महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता एवं विविध राजनीतिक दल, Uppal public house for William carea Study research centre and joint woman's programme page 59,220,279.
4. अखिलेश एस, शुक्ला संध्या (2012) भारतीय नारी कल और आज।
5. नव निर्मित विधायक (2018) Retrieved from http://www.vidhansabha.nic.in
6. खान आरिफ (2018) भारतीय राजनीति में महिला प्रतिनिधित्व की दिशा और दशा Retrieved from http://www.aarambhpatrica.com
7. http://www.shodhganga.com

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

नई कहानी आंदोलन और कमलेश्वर

विनोद कुमार
शोधार्थी, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल तिबरेवाला विश्वविद्यालय, झुंझुनू

डॉ. धनेश कुमार मीणा
निर्देशक,
सहायक आचार्य, हिंदी, एस.जे.जे.टी.यू.

शोध-सार : प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी के प्रमुख कथाकार कमलेश्वर के नई कहानी आंदोलन में योगदान का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। पचास और साठ के दशक में उभरे नई कहानी आंदोलन ने हिंदी कथा साहित्य की दिशा और दशा बदल दी। कमलेश्वर ने इस आंदोलन के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज की जटिलताओं, मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं और मानवीय अस्तित्व के संकट को अपनी कहानियों में अत्यंत प्रामाणिक रूप से चित्रित किया। यह आलेख उनकी कहानियों की संवेदनशीलता, शिल्प की नवीनता और आंदोलन में उनकी केंद्रीय भूमिका का विश्लेषण करता है।

मुख्य शब्द : नई कहानी, कमलेश्वर, मध्यवर्गीय जीवन, नई संवेदना, हिंदी कथा साहित्य।

प्रस्तावना : हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वतंत्रता के बाद का काल अत्यंत महत्त्वपूर्ण और परिवर्तनकारी रहा है। 1947 के बाद भारतीय समाज में जो उथल-पुथल आई, जो नई आकांक्षाएँ जन्मीं और जो मोहभंग हुआ, उसे साहित्य में अभिव्यक्ति देने की आवश्यकता थी। इसी ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नई कहानी आंदोलन का उदय हुआ। यह आंदोलन केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सांस्कृतिक, वैचारिक और सामाजिक आंदोलन था जिसने हिंदी कथा साहित्य को नई दिशा दी।

कमलेश्वर, जिनका पूरा नाम कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना था, का जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ था। वे हिंदी साहित्य के उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने न केवल अपनी रचनात्मकता से साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि एक आंदोलनकर्ता की भूमिका निभाकर साहित्यिक विमर्श को भी नई दिशा दी। मोहन राकेश और राजेंद्र यादव के साथ मिलकर उन्होंने नई कहानी आंदोलन को उसका वैचारिक और व्यावहारिक आधार दिया। उनकी कहानियाँ आज भी हिंदी कथा साहित्य की धरोहर मानी जाती हैं और उनका अध्ययन हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य माना जाता है।

नई कहानी आंदोलन का उदय उस समय हुआ जब हिंदी कहानी प्रेमचंद के बाद की परंपरागत लीक पर चलती आ रही थी। आदर्शवाद, रोमानियत और नैतिक उपदेशवाद से भरी कहानियाँ उस बदलते समाज की सच्चाई को पकड़ने में असमर्थ थीं। ऐसे में नई कहानी ने एक जरूरी हस्तक्षेप किया। कमलेश्वर इस हस्तक्षेप के सबसे मुखर और प्रभावशाली स्वर थे। उनकी कलम में एक ओर जहाँ संवेदना की गहराई थी, वहीं दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ को उजागर करने की निभीकता भी थी।

नई कहानी आंदोलन : उद्भव और वैचारिक पृष्ठभूमि

नई कहानी आंदोलन का उदय पचास के दशक के मध्य में हुआ। इस आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए उस समय के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश को समझना आवश्यक है। 1947 में स्वतंत्रता मिली और भारतीय जनमानस में एक नई उम्मीद का संचार हुआ। लेकिन धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि स्वतंत्रता के फल सभी को समान

रूप से प्राप्त नहीं हो रहे। नौकरशाही का फैलाव, भ्रष्टाचार की जड़ें, शहरीकरण की समस्याएँ और मध्यवर्ग का संकट ये सब उस दौर की केंद्रीय सच्चाइयाँ थीं जिन्हें परंपरागत कहानी की शैली और संवेदना पकड़ने में असमर्थ थी।

नई कहानी आंदोलन ने तीन मूलभूत मोर्चों पर काम किया। पहला, विषय-वस्तु के स्तर पर उसने ग्रामीण आदर्शवाद और रोमानी प्रेम की जगह शहरी जीवन की जटिलता, मध्यवर्गीय संघर्ष और मानवीय अकेलेपन को केंद्र में रखा। दूसरा, शिल्प के स्तर पर उसने रैखिक कथा-क्रम की जगह मनोवैज्ञानिक गहराई, अंतःचेतना की धारा और प्रतीकात्मक भाषा को अपनाया। तीसरा, दृष्टिकोण के स्तर पर उसने पात्रों के प्रति लेखकीय सहानुभूति के बजाय तटस्थ और यथार्थवादी दृष्टि अपनाई। इन तीनों मोर्चों पर कमलेश्वर ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

नई कहानी के प्रमुख रचनाकारों में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर की त्रयी सबसे प्रभावशाली मानी जाती है। इन तीनों ने मिलकर 1956-57 के आसपास नई कहानी की वैचारिक नींव रखी और उसे एक सुसंगठित आंदोलन का रूप दिया। 'कहानी' पत्रिका में नई कहानियों का प्रकाशन और उन पर चर्चाएँ इस आंदोलन को सैद्धांतिक आधार देने में महत्त्वपूर्ण रहीं। कमलेश्वर ने 'नई कहानियाँ' पत्रिका का संपादन कर इस आंदोलन को एक सशक्त मंच प्रदान किया।

नई कहानी आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रगतिवाद और मनोवैज्ञानिकता दोनों का समन्वय था। एक ओर जहाँ प्रगतिशील लेखक संघ की परंपरा से प्रेरणा ली गई, वहीं दूसरी ओर अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषण के प्रभाव में पात्रों की आंतरिक दुनिया की खोज भी हुई। यह आंदोलन किसी एक वाद का अनुयायी नहीं था, बल्कि यह भारतीय यथार्थ को उसकी समग्रता में पकड़ने का प्रयास था। कमलेश्वर ने इस समन्वयवादी दृष्टि को अपनाकर ऐसी कहानियाँ रचीं जो एक साथ सामाजिक यथार्थ की पड़ताल करती थीं और मानवीय मन की गहराइयों में उतरती थीं।

इस आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने 'आम आदमी' को साहित्य के केंद्र में रखा। प्रेमचंद ने किसान और दलित को केंद्र में रखा था, लेकिन नई कहानी ने शहरी मध्यवर्ग के उस आदमी को साहित्य का विषय बनाया जो न पूरी तरह समृद्ध था और न पूरी तरह गरीब। यह आदमी टूटती हुई सामंती व्यवस्था और उभरती हुई पूँजीवादी व्यवस्था के बीच पिस रहा था। उसकी पीड़ा, उसका संघर्ष और उसकी विवशता को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में जीवंत रूप से चित्रित किया।

कमलेश्वर की कहानियों में नई संवेदना और शिल्प

कमलेश्वर की कहानियाँ नई संवेदना और शिल्प की दृष्टि से हिंदी कथा साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनकी पहली उल्लेखनीय कहानी 'राजा निरबंसिया' (1957) को नई कहानी के क्षेत्र में मील का पत्थर माना जाता है। इस कहानी में उन्होंने एक ऐसे दंपत्ति की कथा कही जो संतानहीनता की पीड़ा झेल रहा है। इस कहानी में मानवीय संबंधों की जटिलता, परंपरागत मूल्यों और आधुनिक जीवन के बीच का तनाव तथा भावनात्मक अकेलेपन को जिस सूक्ष्मता से उकेरा गया है, वह नई कहानी की संवेदनशीलता का प्रतिनिधि उदाहरण है।

'देवा की माँ', 'नीली झील', 'तलाश', 'मांस का दरिया', 'खोई हुई दिशाएँ' आदि कहानियों में कमलेश्वर ने स्त्री-जीवन, पुरुष के अहंकार, सामाजिक दबाव और मानवीय कमज़ोरियों को अत्यंत ईमानदारी से चित्रित किया। उनकी 'देवा की माँ' एक ऐसी स्त्री की कथा है जो अपने पुत्र की मृत्यु के बाद टूट कर भी जीवन से जोड़ी रहती है। इस कहानी में स्त्री की शक्ति और उसकी विवशता का द्वंद्व इतने संवेदनशील तरीके से उपस्थित किया गया है कि पाठक उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

कमलेश्वर के शिल्प की विशेषता यह है कि वे कथा को एक निश्चित दिशा में नहीं ले जाते, बल्कि पात्रों की चेतना के माध्यम से कथा को स्वाभाविक रूप से विकसित होने देते हैं। उनकी भाषा सहज, बोलचाल के निकट और भावपूर्ण है। वे बड़े-बड़े वाक्यों की जगह छोटे, तीखे और अर्थपूर्ण वाक्यों का प्रयोग करते हैं। इस शिल्प से कहानी में एक विशेष प्रकार का तनाव और गति उत्पन्न होती है जो पाठक को अंत तक बाँधे रखती है।

उनकी कहानियों में प्रतीकात्मकता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'नीली झील' में झील एक ऐसे स्वप्न का प्रतीक है जिसे पाने की आकांक्षा तो होती है, लेकिन जो हमेशा अपने रूप को बदलती रहती है। इस प्रतीक के माध्यम से कमलेश्वर ने मानवीय आकांक्षाओं की अपूर्णता और जीवन की विडंबना को अत्यंत कलात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है। उनकी कहानियों में शहरी परिवेश, गलियाँ, चौराहे, किराए के मकान, दफ्तर और बाज़ार, जीवंत रूप से उपस्थित रहते हैं और ये स्थान पात्रों की मनःस्थिति के प्रतीक बन जाते हैं।

कमलेश्वर की नई संवेदना का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंधों को परंपरागत नैतिकता की कसौटी पर नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना की कसौटी पर परखा। उनकी कहानियों की स्त्री पात्र न केवल पीड़ित हैं, बल्कि वे संघर्षशील और जिजीविषा से भरपूर भी हैं। वे परंपरागत भूमिकाओं के विरुद्ध भले न विद्रोह करें, लेकिन अपने भीतर एक स्वतंत्र अस्मिता बनाए रखती हैं। यह संवेदना नई कहानी की एक विशिष्ट उपलब्धि है जिसमें कमलेश्वर का योगदान केंद्रीय है।

शिल्प के स्तर पर कमलेश्वर ने फ्लैशबैक, अंतर्कथा, मनोवैज्ञानिक एकालाप और परिवेश-चित्रण जैसी तकनीकों का उपयोग किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि हिंदी कहानी केवल घटनाओं की माला नहीं है, बल्कि वह जीवन के अनुभवों की एक समग्र व्याख्या है। उनकी कहानियाँ पढ़ते समय पाठक को ऐसा अनुभव होता है जैसे वह किसी वास्तविक जीवन-खंड से गुज़र रहा हो। यह यथार्थपरकता नई कहानी की सबसे बड़ी शक्ति है और कमलेश्वर इसके सबसे सक्षम प्रतिनिधि हैं।

नई कहानी आंदोलन में कमलेश्वर की केंद्रीय भूमिका

नई कहानी आंदोलन में कमलेश्वर की भूमिका केवल एक रचनाकार की नहीं थी, बल्कि वे एक वैचारिक नेतृत्वकर्ता, संपादक, सिद्धांतकार और प्रचारक के रूप में भी सामने आए। उन्होंने 'नई कहानियाँ' पत्रिका का संपादन किया जो इस आंदोलन का सबसे महत्त्वपूर्ण मंच बनी। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने न केवल नई कहानियों को प्रकाशित किया, बल्कि उन पर विमर्श और बहस को भी प्रोत्साहित किया। इस संपादकीय भूमिका ने नई कहानी आंदोलन को एक संगठित और सुसंगत रूप देने में बड़ी सहायता की।

कमलेश्वर ने नई कहानी की सैद्धांतिकी को विकसित करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने तर्क दिया कि नई कहानी केवल एक साहित्यिक शैली नहीं है, बल्कि यह एक नई जीवन-दृष्टि और नई संवेदना है। उनके अनुसार नई कहानी को जीवन से अलग करके नहीं देखा जा सकता वह जीवन का ही एक आवश्यक हिस्सा है। इस दृष्टि से उन्होंने साहित्य और जीवन के बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया।

कमलेश्वर की कहानियों की संख्या और विविधता उनकी उर्वर प्रतिभा का प्रमाण है। उन्होंने तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं जो हिंदी कहानी के इतिहास में एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। इन कहानियों में विषयों की विविधता उल्लेखनीय है—कहीं विभाजन का दर्द है, कहीं शहरी अकेलेपन की पीड़ा है, कहीं मध्यवर्गीय जीवन की विडंबना है, तो कहीं स्त्री-जीवन की जटिलता है। इस विविधता के बावजूद उनकी रचनाओं में एक सूत्र सदैव विद्यमान रहता है—मानवीय संवेदना की पक्षधरता और सामाजिक यथार्थ के प्रति ईमानदार प्रतिबद्धता।

नई कहानी आंदोलन ने हिंदी कहानी को जो नई दिशा दी, उसके फलस्वरूप बाद की पीढ़ियों के कहानीकारों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। सातवें और आठवें दशक के कहानीकारों ने नई कहानी से प्रेरणा लेकर अपनी रचनात्मकता को विकसित किया। कमलेश्वर की इस विरासत का मूल्यांकन करते हुए कहा जा सकता है कि उन्होंने हिंदी कहानी को एक ऐसी भाषा और संवेदना दी जो उसे आम पाठक के करीब ले आई।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि नई कहानी आंदोलन में कमलेश्वर का योगदान बहुआयामी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। एक ओर जहाँ उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से इस आंदोलन की संवेदनशीलता को साकार किया, वहीं दूसरी ओर अपनी संपादकीय और वैचारिक भूमिका से उसे संगठित और सक्रिय रखा। उनकी 'राजा

निरबंसिया', 'देवा की माँ', 'नीली झील' और 'तलाश' जैसी कहानियाँ हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। कमलेश्वर की रचनात्मकता ने सिद्ध किया कि साहित्य जब जीवन से जुड़ता है, तो वह सच्चा और प्रभावशाली होता है। नई कहानी आंदोलन की सफलता में उनका योगदान अविस्मरणीय और अद्वितीय है।

संदर्भ सूची

1. कमलेश्वर (1957). राजा निरबंसिया. नई कहानियाँ, अंक 1. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
2. मोहन राकेश (1966). नई कहानी की भूमिका. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. राजेंद्र यादव (1974). कहानी : स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली : राजपाल एंड सन्स।
4. नामवर सिंह (1966). कहानी : नई कहानी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
5. देवीशंकर अवस्थी (1965). कहानी की बात. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
6. विश्वनाथ त्रिपाठी (2009). हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास. नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैकस्वान।
7. इंद्रनाथ मदान (1968). नई कहानी : परंपरा और प्रगति. इलाहाबाद : साहित्य भवन।
8. रामदरश मिश्र (1981). हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
9. मधुरेश (1977). हिंदी कहानी का विकास. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
10. सुरेश सिन्हा (1972). नई कहानी का परिप्रेक्ष्य. लखनऊ : ज्ञान प्रकाशन।

पता : विनोद कुमार
गाँव : करमगढ़, डाकघर : साहूवाला फर्स्ट
जिला/तहसील : सिरसा-125077

बालकृष्ण शर्मा नवीन के काव्यों में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. जे. सेन्दामरै
असोसिएड प्रोफेसर हिन्दी विभाग,
सीतालक्ष्मी रामस्वामी कॉलेज, तिरुच्चि, तमिलनाडु
ई-मेल - sentha2011@gmail.com
भ्रमण ध्वनि -9443764823

श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन हिन्दी के रस-सिद्ध कवि है। उनमें आवेग और कल्पना का मणि -कांचन योग साधित हुआ है। कवि के काव्यों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना कूट-कूट के भरी है। देशप्रेम की भावना आधुनिक काल की एक मुख्य प्रवृत्ति रही है। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित साहित्य जन-जीवन के स्वातंत्र्य के लिए मुखरित हो उठा था। डॉ॰ नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति को ''आधुनिक हिन्दी की एक अत्यन्त प्रबल प्रवृत्ति'' माना है जिसमें उनके अनुसार ''भावात्मक और क्रियात्मक दोनों रूपों की अभिव्यक्ति मिलती है''।

देश-प्रेम की भावनाओं से संकुल रचनाएँ अत्यन्त विस्तृत भावभूमि पर स्थित होती है। इसका कारण यह है कि 'देशभक्ति में प्राधान्य तो निस्संदेह 'उत्साह' का ही है परन्तु उसमें राग का आधार भी वर्तमान है। देशभक्ति व्यक्तिपरक न होकर समष्टिपरक भाव है, अर्थात् यह राग-मिश्रित उत्साह व्यक्ति के प्रति न होकर समष्टि के प्रति होता है। जब मनुष्य के रागवृत्त का विस्तार होता है तो वह अपने व्यक्तित्व से परिवार, परिवार से ग्राम नगर फिर प्रदेश देश और इसके आगे विश्व तक व्यापक हो जाता है। यह वास्तव में स्व का विस्तार ही है, उसका निषेध नहीं है—देशभक्ति में स्व का वृत समग्र देश और उसके निवासियों तक विस्तृत हो जाता है।

देशभक्ति की रचनाएँ वीरगाथा काल से लेकर आज तक के हिन्दी-साहित्य में देखने को मिलती हैं किन्तु राष्ट्रीयता के जिस अर्थ को आज हम प्रयोग में लाते हैं, उस अर्थ में वीरगाथा काल की तथा बाद में भूषण आदी की रचनाएँ ग्रहीत नहीं होती। वीरगाथा काल की कविता में देशभक्ति केवल वैयक्तिक शौर्य तथा गौरव के गुणगान तक ही सीमित थी, जबकि भूषण में राष्ट्रीयता की भावना का अर्थ हिन्दुत्व था। ''हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना भारतेन्दु युग से मिलती है। इसके पहले चन्दबरदाई, भूषण आदि कवियों की रचनाओं में हिन्दू-मुसलमानों का संघर्ष मिलता है जो सामन्तों के परस्पर झगड़ों का ही एक रूप है।'' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं की तुतलाहट भारतेन्दु जी में देखी जाती है जिसकी पृष्ठभूमि में 1757 के विद्राह का अभियान था। ''भारतेन्दु के समय तक सन् 27 का गदर तो विफल हो चुका था, परन्तु, वह अपने पीछे एक राष्ट्रीय चेतना छोड़ गया था जिसका प्रभाव उस युग के विचारवान व्यक्तियों पर पड़ रहा था। अंग्रजों की बढ़ती हुई वणिक् वृत्ति, भारतीय जन की शोचनीय अवस्था, विदेशी दासता और अराजकता, सभी ने भारतेन्दु जी को वाणी प्रदान की और उनकी ''वे ही अभिव्यक्तियाँ जो शैशव की तुतलाहट के समान थीं तथा किंचित् संकोचमयी भावना भी थी, हिन्दी के राष्ट्रीय कविता साहित्य की मूल हुई।'' ''फिर भी उस युग की देशभक्ति और राजभक्ति में एक प्रकार का समझौता रहा।'' देशवासियों के मन में दासता की बेड़ियों से जकड़े होने के फलस्वरूप ग्लानी की भावना उत्पन्न हो गई थी जिसके निवारणार्थ देश में कुछ ऐसे नेता उत्पन्न हुए जिन्होंने

धार्मिक-सांस्कृतिक पुनरुस्थान की आवाज ऊँची उठाई। ऐसा करके उन्होंने दासता की बेड़ियों पर आघात किया था। इसके पश्चात् कांग्रेस का रणभूमि में उतरना एक वरदान सिद्ध हुआ जिसने देशवासियों को बतला दिया कि गुलामी सबसे बड़ा अभिशाप है। इस अभिशाप के विरुद्ध जन-जीवन भड़क उठा। द्विवेदी-युग राष्ट्रीय कविताओं का मध्याहन् काल कहा जा सकता है। 'खड़ीबोली के काव्य-साहित्य में राष्ट्रीय भावनाएँ श्रीधर पाठक द्वारा प्रस्फुटित हुईं।' 'एक भारतीय आत्मा' मैथिलीशरण गुप्त, निराला, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों की ओजस्विनी ध्वनी भारतीय गगन मंडल में पराधीनता और दमन के विरुद्ध गूँज उठी। भारतेन्दु जी के स्वरों में ओज और जोश नहीं था, उसमें दुखी और अशक्त व्यक्ति की ग्लानि ही थी—

''आवहु, सब मिलि रोवहु भारत भाई,
हा, हा, भारत-दुर्दशा देखि न जाई।''

किन्तु इस युग के कवियों की वाणी तो चीत्कार कर उठी थी। कवियों ने ललकार भरे स्वर में कहा-

''बलि होने की परवाह नहीं, मैं हूँ कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता-जीता हूँ, माता के हाथ स्वराज्य रहे।''-(माखनलाल चतुर्वेदी)

देशभक्ति की ऐसी रचनाओं के लिए एक तथ्य और लक्ष्य है कि इन रचनाओं में सक्रियता है, क्रियात्मकता है। 'नवीन' जी तथा इस युग के अन्य राष्ट्रीय कवि स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेते रहे। वे जन-जीवन के लिए आवश्यक कर्मप्रवणता से दूर कहीं बैठकर केवल गाते ही नहीं रहे। ''उत्तेजक परिस्थिति और कवियों के समानुभूतिपूर्ण सक्रिय सहयोग ने कवियों की रचनाओं को आदर्श नैतिक उद्‌गार मात्र न बनने दिया। ये कवि सिंहासन पर आसीन रहनेवाले उपदेशक नहीं थे।'' 'नवीन' जी ने तो कई बार जेल-यात्राएँ की हैं और उनका अधिकांश साहित्य जेल-जीवन की ही देन है।

'विप्लव-गायन' कविता की पंक्ति-पंक्ति में विप्लव फूट पड़ता है। महानाश, महाप्रलय का ऐसा आह्‌वान है जिसमें 'प्राणों के लाले पड़ जाएँ और त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए।' वे जन-जीवन में जागृति चाहते थे। एक ओर वे मिल मालिक से कहते हैं-

''इतना छोटा अस्तित्व और
इतनी लिप्सा ? इतना प्रमाद ?
इतना शोषण ? इतना दोहन ?
इतना यह भैरव शँखनाद ?

'नवीन' जी की कविता में राष्ट्रवाद का प्रौढ़ और परिष्कृत रूप हम देखते हैं। क्योंकि 'नवीन' जी ने स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया है और कठोर यंत्रणाएँ सही है अतः इनकी ''राष्ट्रीय भावनाओं में स्वाभाविक उन्मेष है। उसमें हृदय की सच्ची अनुभूतियों का अभिव्यंजन है तथा दृढ़ता एवं साहस का पूर्ण विकास है।'' देशभक्त भावुक कवि की कल्पना स्वतंत्रता प्राप्ति तक ही सीमित नहीं थी, वह विभिन्न सामाजिक संबंधों तक पहुँची है। ''राष्ट्रीय आन्दोलन गांधीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित गीतों में उनका व्यक्तिवाद 'दिनकर' की तरह प्रगति का इतिहास चेतना का विश्वास भरा गर्वस्फीत स्वर लेकर प्रकट हुआ—

मैं हूँ भारत के भविष्य का,
मूर्तिमान विश्वास महान्''

देश में तीव्र होते हुए वर्ग-संघर्ष, मजदूर आन्दोलन और प्रगतिवादी विचारधारा के प्रभाव में 'नवीन' जी का भावप्रवण कवि-हृदय फेंकी पत्तल से उठाकर जूठन खाते हुए इन्सान की दुर्दशा से कुपित हो उठा और उन्होंने भी अन्य प्रगतिशील कवियों की तरह अपने कवि से माँग की- ''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।'' 'नवीन' जी की ऐसी कविताओं मे ंजो ओज-भरा गर्वस्फीत स्वर है, वह क्रान्तिवादी कहा जा सकता है। क्रांतिवादी कविता धारा का उल्लेख करते हुए डा॰ केशरी नारायण शुक्ल ने लिखा है कि ''क्रान्तिवादी कवियों में समझौता और सुधार की भावना नहीं मिलती। ये अधिकतर अधिकार और विद्रोह करने का निमंत्रण देते हैं।'' 'नवीन' जी मनुष्यों को ऐसी दुनिया बनाने के लिए बुला रहे हैं जिसमें गरीब अपना सर उठकर चल सके''--

“हे मानव कब तक मिटोगे यह निमर्म महा भयंकरता,
बन रहा आज मानव देखो मानव का ही भक्षणकर्ता”

‘नवीन’ जी को हिन्दी कविता में क्रान्ति का अग्रदूत बताते हुए श्री कन्हैयालाल सहल ने लिखा है कि “कवि केवल भारत में ही उथल-पुथल नहीं चाहता, वह विश्व भर में एक नई व्यवस्था देखना चाहता है। जिस दिन वह मनुष्य को लपककर जूठे पत्ते चाटते देखता है, उसके मन में यह इच्छा होती है कि आज मैं इस दुनिया भर को आग क्यों न लग दूँ ? इतना ही नहीं, वह यह भी सोचता है कि-

“यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का,
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।”

शिवदानसिंह चौहान ने ’नवीन’ जी के विद्रोही स्वर को प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित माना है किन्तु वास्तव में यह स्वर किसी वाद विशेष के कारण नहीं है अपितु यह युगीन-परिस्थिति-जन्य स्वर है। डॉ॰ प्रभावकर के अनुसार, “उनकी रचनाओं में एक विद्रोह-पूर्ण अराजकता का स्वर भरा है।

‘नवीन’ जी में राष्ट्रीय कविता की यह धारा अपने लगभग सभी रूपों में प्रवहमान दीख पड़ती है। भारतमाता की वन्दना तथा भारत के सांस्कृतिक विकास के सिंहावलोकन से पूर्ण “हिन्दुस्तान हमारा है” कविता से लेकर भारत की पीड़ित और शोषित जनता के करुणा चित्र उपस्थित करने वाली रचनाओं तक यह धारा प्रवहमान दीखती है। पीड़ित और शोषित जनता का चि़त्र ‘जूठि पत्तल चाटनेवालों’ की कविता में बड़ा खरा उतरा है। इस प्रकार की कविताओं में मानवता के शोषण के विरुद्ध पृष्ठभूमि तैयार करने की क्षमता है। ’नवीन’ जी की लगभग सभी ऐसी राष्ट्रीय रचनाओं में क्रान्ति और विद्रोह की भावना ही प्रमुखता मिलती है। ‘नवीन’ जी गॉधी जी की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित है। उनकी कविता में पूज्य बापू के प्रति वे कहते मिलते हैं–

“ओ करुणाकर मेरे बापू, जियो जियो शत वर्ष जियो तुम।
मानवता के अर्थ शम्भु है, गरल पियो तुम, गरल पियो तुम।।”

अहिंसा के तत्व के विषय में वे कहते मिलते हैं–

“हिंसा में विचार मन्थन का,
समय नहीं, अभ्यास नहीं है,
हिंसा में सान्तता भरी है,
वॉ अनन्त अवकाश नहीं है।”

‘नवीन’ जी की क्रान्ति भावना में गाँधीवादी विचारधारा अवश्य काम कर रही है। अहिंसा को वे हिंसा से श्रेष्ठ मानते हैं। “ऊर्मिला” प्रबन्ध काव्य में भी उन्होंने उसी अहिंसा के तत्व पर स्थित सदाशयता, शुद्ध विचार और सदाचरण को प्रमुखता दी है–

“शुद्ध विचार प्रौढ़ता ही है,
भित्ति, सभ्यता संस्कृति की।”

नवीन जी की कविताओं में ओज, आक्रोश, उत्साह, देशभक्ति का रागात्मक स्वरूप है। ’नवीन’ जी में पाई जानेवाली राष्ट्रीय -सांस्कृतिक कविता की यह धारा मानवता के गीतों को अपने में समेटे हुए है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

जगदीश प्रसाद, श्रीवास्तव नवीन और काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

पंकज बिष्ट के कथा साहित्य में बेरोज़गारी की समस्या : युगबोध के संदर्भ में

डॉ. इंधु के वि
शोध निर्देशिकाः
सह आचार्य, केरल विश्वविद्यालय

सरिगा जे
शोधार्थी, केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम कैंपस, तिरुवनंतपुरम

समकालीन भारत के सामने जो समस्याएँ फन फैलाए खड़ी हैं, उनमें से एक महत्वपूर्ण समस्या हैं-बेरोज़गारी। लोगों के पास हाथ हैं, पर काम नहीं प्रशिक्षण है, पर नौकरी नहीं। योजनाएँ और उत्साह है, पर अवसर नहीं। बेरोज़गारी समाज के लिए एक अभिशाप है, इससे न केवल व्यक्तियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है बल्कि बेरोज़गारी पूरे समाज को भी प्रभावित करती भारत में सवा अरब (अर्थात्-125 करोड़) लोग रहते हैं। यहाँ बेरोजागारी की समस्या बहुत ही विकारल रूप धारण कर लिए हुए हैं। बेरोज़गारी भी बहुत से प्रकार के होते हैं जिसमे शिक्षित बेरोज़गारी, अशिक्षित बेरोज़गारी, मौसमी बेरोज़गारी, अल्प बेरोज़गारी और प्रछन्न बेरोज़गारी जैसे कई सारी चीजें शमिल हैं। प्रतिवर्ष हमारे स्कूल और कॉलेजों से लाखों नवयुवक-युवतियाँ शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं परन्तु इनमें से आधों को भी बमुश्किल काम मिलता है। ये बेकार नवयुवक न केवल अपने कुटुम्बों के ऊपर भार हैं अपितु समाज के लिए भी उनसे भय पैदा होता है क्योंकि निराशा उनको घेर लेती है। राज्य तथा समाज के प्रति इस नैराश्य के कारण उनके मन में कटुता उत्पन्न होती है और वे असामाजिक विध्वंसात्मक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं। ''औद्योगिक क्षेत्र में भी बेरोजगारी निरन्तर बढ़ रही है। प्रतिवर्ष हजारों व्यक्ति देहातों से नगरों में काम की खोज में आते हैं। उनमें से थोड़े ही काम पाते हैं शेष वैसे ही मारे-मारे फिरते हैं।''[1] श्रम की अति उपलब्धता के कारण उसका मूल्य घट जाता है। श्रमिकों को कम पैसों में और मालिक की शर्तों पर काम करने को बाध्य होना पड़ता है।

समकालीन हिन्दी साहित्य जगत में कथाकार, उपनयासकार, पत्रकार और चिंतक के रूप में पंकज बिष्ट के स्थान उच्चकोटि का है। आपकी रचनाओं में समाज की विसंगतियों, राजनीतिक भ्रष्टाचार, मानवीय संकट, स्त्री अस्मिता, मध्य वर्गीय जीवन, शोषित वर्ग की समस्याओं को प्रभावित ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनका साहित्य सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। आप अपने लेखन में आम आदमी के संघर्ष, व्यवस्था की क्रूरता तथा बदलते सामाजिक मूल्यों को केन्द्र में रखा है। इन्हीं विशेषताओं के कारण उनकी रचनाएं पाठकों पर गहरा प्रभाव उठाया है। आपकी रचनाओं में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामाजिक यथार्थ का सशक्त चित्रण इसमें पाया जाता है। उनके के कथा साहित्य में बेरोजगारी की समस्या का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। उनकी कहानियों में शिक्षित युवा वर्ग रोजगार की तलाश में संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। रोजगार प्राप्त करने के लिए उन्हें आर्थिक अभाव, सामाजिक उपेक्षा तथा व्यवस्था की विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। लेखक बेरोजगारी के माध्यम से उस आर्थिक संकट को रेखांकित करते हैं, जिसने मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है।

पंकज बिष्ट द्वारा रचित कहानी 'पन्द्रह जमा पच्चीस' में महानगरीय जीवन की विसंगतियां, आर्थिक विषमता और बेरोज़गारी का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण मिलता है। कहानी जीवन के कई अनछुए पहलुओं को उभारती हैं। एक तरफ यह

कहानी शिक्षित बेरोजगार के दंश को बयान करती हैं। इसमें हमारा युवा वर्ग पेट की खातिर मजबूरी-वंश प्राइवेट नौकरी कर रहा हैं। यहां पर उसके श्रम की पूरी कीमत भी नहीं मिलती वहीं दूसरी तरफ मात्र भोज्य पदार्थ के आधार पर मनुष्य मनुष्य में भेद किया जाता हैं। भोज्य पदार्थ को धर्म के साथ जोड़ दिया जाता हैं। इसके कारण धर्म के ठेकेदार की दूकाने चलती हैं। इसके अतिरिक्त यह कहानी महानगरों की झुग्गी झोपडियों में रहने वाले लोगों के जीवन के कटु यथार्थ का वर्णन करती हैं। इसके साथ-साथ वह यह प्रश्न भी उठाती हैं कि आखिर वे वहां क्यों रह रहे हैं यह उनकी मर्जी है या मजबूरी और अगर मजबूरी है, तो इसकी वजह कौन लोग हैं। यह कहानी भारत-पाकिस्तान के विभाजन के उस दर्द को व्याख्या हित करने भी समक्ष रही हैं, जिसमें हजारों लोगों को अपनी मातृभूमि छोड़कर विस्थापन का शिकार होना पड़ा। ना चाहते हुए भी उन्हें नर्क के समान जीवन व्यतीत करना पड़ा था। अतः 'पद्रह जमा पच्चीस' कहानी एक साथ कई पहलूओं पर सोचने को मजबूर करती हैं। इस सदर्भ में पंकज बिष्ट ने पंद्रह जमा पच्चीस कहानी के विषय पर 'शताब्दी से शेष' की भूमिका में लिखा हैं कि यहॉं विभाजन की विभीषिका, बल्कि उसके दूरगामी प्रभावों (तीन दश के) को दर्शाने की कोशिश की गई है, जो परंपरागत, यथार्थवादी में लिखी गई हैं। कथावाचक का आंतरिक एकालाप यह है कि-''मेरा दिल हुआ था जोर से चीखूँ नौकरी! बी.ए. किए दो साल होने को आ रहे हैं, कहीं काम नहीं मिला है। एप्लिकेशन पर एप्लिकेशन भेजी है पर कहीं से जवाब आए तब न। और भी ऊपर से डाक और पोस्टल ऑर्डर के पैसों पर अलग खर्चा होता है। घरवाले कहते हैं हमने पढ़ा दिया क्या कम है। अब कुछ नहीं हो सकता।''[2] यह उद्धरण देश के शिक्षित बेरोज़गार युवाओं की मानसिक पीड़ा और लाचारी को दर्शाता है। बी.ए. जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी दो साल तक नौकरी न मिलना और लगातार आवेदन करने पर भी कोई जवाब न आना व्यवस्था की विफलता को उजागर करता है। आर्थिक तंगी के बावजूद डाक और पास्टल ऑर्डर का अतिरिक्त खर्च और परिवार की ओर से मिलने वाली उपेक्षा युवा मानस को गहरे अवसाद और आर्थिक असुरक्षा की ओ धकेलती है।

'खून' कहानी में महानगरीय जीवन की विडंबना, सांप्रदायिक संकीर्णता और सबसे बढ़कर बेरोज़गारी की भयावह समस्या को बेहद संजीदगी से उकेरा गया है। कहानी के मुख्य पात्र इशरत और लक्ष्मी है दोनों एक ही दफतर में काम करते थे और वहीं दोनों में प्रेम हुआ। दोनों अलग-अलग धर्म मुस्मिल और हिंदु धर्म का था। जिस कारण से दफतर के रीजनल मैनेजर ने दोनों को नौकरी से निकाल दिया। नौकरी छूटने के बाद दोनों का जीवन पूरी तरह बिखर जाता है। इशरत पर अपनी विधवा माँ और छोटे भाई की जिम्मेदारी है, वहीं लक्ष्मी ने भी अपने परिवार के खिलाफ जाकर इशरत का साथ चुना था। बड़े शहर में बिना नौकरी के रहना उनके लिए अभिशाप बन जाता है। इशरत का अंतरर्मन का विचार -''नौकरी बदलना आसान नहीं था और भागकर कोई जा भी कहां सकता था। वैसे भी नौकरी उसके लिए काफी महत्वपूर्ण थी, सिर्फ इसीलिए नहीं कि बेराज़गारी के लंबे दौर के बाद कहीं वह इस कंपनी में आ सका था, बल्कि उसकी रोजी से दो पेट और जुड़े थे।''[3] यह वक्तव्य इशरत के मानसिक द्वंद्व को व्यक्त करता है। यहां यह साफ़ होता है कि वर्तमान नौकरी मिलने से पहले वह बेरोज़गारी के लंबे दौर का दंश झेल चुका था। कहानी में बेरोज़गारी केवल काम न होने की स्थिति नहीं , यह एक गरिमाविहीन जीवन जीने पर विवश करती है। इशरत अपनी बीमार पत्नी लक्ष्मी को आस्पताल से डिस्चार्ज होने के समय भी लेबर आफिस के चक्कर काटने को मजबूर है, क्योंकि उसके पास रोजगार की अनिश्चितता है।

'फर्क' कहानी सीधे तौर पर बेरोज़गारी और रोजगार के सीमित व अपमानजनक अवसरों की समस्या को बहुत ही यथार्थवादी ढंग से बुना गया है। यह कहानी मुख्य रूप से दिल्ली के जनपथ इलाके में स्थित एक जूता दुकान पर काम करने वाले एक सेल्समैन और उसके मित्र आनंद के संवादों, उनकी आंतरिक उलझनों और वर्ग-भेद की मानसिकता पर आधारित है। कहानी की शुरुआत मुख्य पात्र के बस के सफर से होती है, जहां वह भारी भीड़, गर्मी और महिलाओं के लिए सीट छोड़ने की सामाजिक अपेक्षाओं से परेशान है। वह जनपथ की एक शानदार जूते की दूकान में काम करता, जहां अमी और विदेशी महिलाएं आती हैं। उसे बार-बार महिलाओं के पैरों में झुककर चप्पल-जूते महनाने पड़ते हैं, जिससे उसका आत्मसम्मान आहत होता है और वह इस नौकरी को छोड़ना चाहता है। महानगर में एक अदद नौकरी के लिए युवाओं को अपने आत्म-सम्मान का जो सौदा करना पड़ता है और इसके कारण जो हताशा पैदा होती है, उसे लेखक ने मुख्य पात्र आनंद के माध्यम से दिखाया

है—''सोचता मारो गोली ऐसी नौकरी को जिसमें केवल औरतों की जूतियां पहनानी पड़े। एक मर्द के लिए इससे बड़ी अपमान और क्या हो सकती है कि वह औरतों के पैर पकड़-पकड़ कर जूतियां पहनाए। धिक्कार ऐसी जिन्दगी को। पढ़-लिखकर यही करना था! खैर, कल से नहीं आऊँगा चाहे भूखों मरना पड़े।''[4]

यह उद्धरण सीधे तौर पर शिक्षित बेरोज़गारी और अर्ध-बेरोजगी की समस्या पर चोट करता है। मुख्य पात्र यानी कथावाचक पढ़ा-लिखा है, लेकिन बाजार में रोजगार के बेहतर अवसर न होने के कारण वह एक जूते के दूकान में काम करने को मजबूर है जो अपने आत्म-सम्मान के खिलाफ है। भारत में बेराजगारी की मार झेल रहे युगाओं की यह सबसे बड़ी त्रासदी है कि उन्हें अपनी योग्यता से बहुत नीचे जाकर, मन मारकर काम करना पड़ता है ताकि वे भूखों न मरें। कहानी के आगे बेरोजगी और आर्थिक तंगी के सबसे भयानक दुष्परिणाम को दिखाती है—युवाओं का अपराध की ओर झुकाव। जब आनंद देखता है कि मुख्य पात्र दिन-रात मेहनत करके और अपना आत्म-सम्मान खोकर भी बेहद कम आय प्राप्त होती है। यहां आनंद जल्दी पैसा कमाने क लिए स्मगलिंग जैसे गलत रास्ते को सही ठहराने लगता है। लेखक ने यहां दिखाया है कि कैसे रोजगार का अभाव युगाओं को नैतिक रूप से भटका देता है। फर्क कहानी में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि बेरोजगारी केवल पैसा न होना यह एक युवा से उसकी गरिमा, उसकी शिक्षा का मूल्य और अंततः उसका मानसिक संतुलन तक छीन लेती है। मुख्य पात्र इस अपमानजनक रोजगार को सहने पर मजबूर है क्यों कि बाहर पूर्ण बेरोजगारी का डर है, आनंद इस स्थिति से भागने के चक्कर में अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है।

'आवेदन करो' नामक कहानी शिक्षित बेराज़गारी की भयावह समस्या और युवा मानस पर उसके पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक सामाजिक प्रभावों को बेहद तीखे ढंग से उकेरती है। इस कहानी में लेखक ने केवल आर्थिक अभाव को ही नहीं, परंतु व्यवस्था द्वारा युवाओं के स्वाभिमान को कुचले जाने की त्रासदी को भी रेखांकित किया है। इस कहानी में एक शिक्षित युवा मुन्ना के माध्यम से बेरोज़गारी के कारण उपजे अवसाद को दर्शाया गया है। कहानी में मुन्ना ने अपने मुख्य पात्र उसका भाई को पत्र लिखा था। मुन्ना अपनी डिग्रियों और प्रमाणपत्रों को सूँघने की बात करता है, जो यह दर्शाता है कि बरसों की बात करता है, जो यह दर्शाता है कि बरसों की मेहनत से हासिल की गई ये डिग्रियां नौकरी न मिलने के कारण अब महज़ टुकड़ा बन चुकी हैं। व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद के कारण येग्य युबाओं की डिग्रियां बेकार हो जाती हैं जिससे उन्हें आत्मग्लानि और निराशा की भावना पैदा होती है। एक अखबार में छपी एक रिपोर्ट का अंश यह है कि-''और उसी दिन उनके सिटी-रिपोर्टर की पुलिस के जनसंपर्क अधिकारी द्वारा दी सूचना के आधार पर तीसरे पेज पर चार-पांच लाइन की तीन वाक्यी रिपोर्ट छपी थी। कुँवर सिंह नाम 28 वर्षीय युवक चौराहे पर सिटी बस से टकरा गया था। पुलिस ने उसे तुरंत आस्पताल पहुंचाया और वहां चार घंटे बाद उसने गत वर्ष एक सूत्र मिलने पर खोंमचा शुरू किया था। इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री ने किया था।''[5] यह कहानी का मर्मस्पर्शी और झकझोर देनेवाला विश्लेषण प्रस्तुत करता है। एक ग्रेजएट युवक जब सालों तक बेरोज़गार रहता है, तो वह अंत में जीवनयापन के लिए रेहड़ी-पटरी लगाने पर मजबूर हो जाता है। यहां सबसे बड़ा कटाक्ष यह है कि उस खोंमचे का उद्घाटन देश के प्रधानमंत्री ने किया था, जो सरकारी रोजगार नीतियों और विज्ञापनों के खोखलेपन को आत्मनिर्भर बनाने के नाम पर दी जाने वाली योजनाएं धरातल पर कितनी लाचार हैं और एक शिक्षित युवा की असमय मौत मीडिया के लिए सिर्फ तीन वाक्यों की रिपोर्ट बनकर रह जाती है।

'लेकिन दरवाज़ा' उपन्यास के अध्याय 'मेरा ढोल' 70 और 80 दशक की शिक्षित बेरोजगारी, बौद्धिक कुंठा और साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में संघर्ष को बहुत ही यथार्थवादी ढंग से दिखाया गया है। हमारे देशकाल के बहुत सारे इस विडंबना के शिकार हैं, इससे जूझ रहे हैं। इस उपन्यास का देवेन भी एक ऐसा ही युवक है जो इन स्थितियों में भरी जवानी में अपने भीतर निस्तेज व निशक्तता को महससू करता हैं। उच्चा शिक्षा होने के बावजूद युवा किस तरह एक अदद नौकरी और पहचान के लिए भटकने को विवश हैं। इस अध्याय के मुख्य पात्र देवेन और उनके मित्रों नीलांबर और राकेश माथुर के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि-''तुम्हें अपनी प्रतिभा के बारे में भ्रम तो नहीं है? तुम्हें पता है, तुम्हारी पत्रिका में अनिल शर्मा नामक लड़के के लेख-पर-लेख क्यों छपते हैं? क्या हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी प्रतिभा वही लड़का हो गया है कि हर दूसरे अंक में

लेख के साथ उसका फोटो छापा जाए? इसलिए कि, 'नीलांबर ने झटके से कहा, 'वह तुम्हारे कवि-डॉक्टर-संपादक की कविताओं पर दिल्ली विश्वपिद्यालय से रिसर्च कर रहा है, क्या समझे!''[6]

इस उद्धरण दर्शाता है कि शिक्षित बेरोजगारी के उस स्याह पहलू को उजागर करता है जहां डिग्रियां होने के बाद भी एक योग्य युवा को तब तक काम या पहचान नहीं मिलती, जब तक कि वह व्यवस्था में बैठे संपादकों की चाटुकारिता न करे। नीलांबर यहां लेखक को समझा रहा है कि केवल योग्यता या एम.ए, पी.एच.डी. हाने काफी नहीं है, अकादमिक और साहित्यक जगत में भाई-भतीजावाद और अपने फायदे के लिए दूसरों का इस्तेमाल करना ही सफलता की कुंजी बन चुका है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन एवं समस्याएँ: डॉ. एम.एम. लवानिया, पृ. 306
2. शताब्दी के शेष, पंकज बिष्ट, राजकमल प्रकाशन, 'पन्द्रह जमा पच्चीस' कहानी, 2013, पृ. 58
3. शताब्दी के शेष, पंकज बिष्ट, राजकमल प्रकाशन, 'खून' कहानी, 2013, पृ. 127
4. शताब्दी के शेष, पंकज बिष्ट, राजकमल प्रकाशन, 'फर्क' कहानी, 2013, पृ. 40
5. शताब्दी के शेष, पंकज बिष्ट, राजकमल प्रकाशन, 'आवेदन करो ' कहानी, 2013, पृ. 186
6. पंकज बिष्ट-लेकिन दरवाजा, कमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड नई दिल्ली 1997 पृ. 51

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

सपनों की होम डिलिवरी में बाज़ारवादी संस्कृति और मानवीय संकट : एक विश्लेषण

जोस्ना जोस
शोधार्थी, केरल विश्वविद्यालय, कार्यवट्टम कैंपस
नं -8281197551
Email - josnajose581996@gmail.com

इक्कीसवीं सदी में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद ने भारतीय समाज की जीवन-दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया है। बाजार अब केवल वस्तुओं का विनिमय नहीं करता, बल्कि मनुष्य की इच्छाओं, संबंधों, पहचान और जीवन-मूल्यों को भी नियंत्रित करता है। सफलता का मूल्यांकन संवेदनशीलता या नैतिकता से नहीं, बल्कि धन, प्रसिद्धि और उपभोग-क्षमता से होने लगा है। ममता कालिया का उपन्यास 'सपनों की होम डिलिवरी' इसी बाजारवादी व्यवस्था के बीच उत्पन्न मानवीय संकटों का सशक्त चित्रण करता है। इसमें मीडिया, उपभोक्तावाद, स्त्री-अस्मिता, पारिवारिक विघटन और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण को गहनता से प्रस्तुत किया गया है।साथ ही यह उपन्यास मीडिया और बाज़ार के गठजोड़, प्रसिद्धि की निर्मित संस्कृति, युवा पीढ़ी के अस्तित्वगत संकट तथा महानगरीय जीवन की विडंबनाओं को भी उजागर करता है। उपन्यास यह रेखांकित करता है कि बाज़ारवाद ने व्यक्ति की पहचान, संबंधों और नैतिक मूल्यों को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। इसके बावजूद मानवीय संवेदना, आत्मीयता और नैतिक चेतना के रूप में प्रतिरोध की संभावनाएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। इसी दृष्टि से यह उपन्यास समकालीन भारतीय समाज में बाज़ारवादी संस्कृति और उसके विरुद्ध मानवीय प्रतिरोध का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज बनकर सामने आता है।

बाजारवादी संस्कृति और सपनों का निर्माण

उपन्यास का शीर्षक ही बाजारवादी संस्कृति का प्रतीक है। आज बाजार केवल वस्तुएँ नहीं बेचता, बल्कि सपने बेचता है—सफलता, प्रसिद्धि, सुंदर जीवन और सुखी परिवार के सपने। रुचि शर्मा का लोकप्रिय पाककला टेलीविजन कार्यक्रम इसी कृत्रिम सपनों की दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है। साधारण गृहिणी से प्रसिद्ध मीडिया व्यक्तित्व बनने तक की उसकी यात्रा बताती है कि आधुनिक समाज में व्यक्ति की पहचान बाजार और मीडिया के माध्यम से निर्मित होती है-"रुचि के अनेक प्रशंसक और प्रशंसिकाएँ थीं। वे उसे सराहना के खत लिखते, फोन करते और ई-मेल भी। टी.वी. चैनल के माध्यम से भी पत्र आते। कभी किसी दिलचस्प खत का जवाब कार्यक्रम के दौरान दिया जाता। इससे कार्यक्रम की टी.आर.पी. बढ़ जाती। प्रायोजकों के सुझाव पर महीने में एक दिन, सबसे दिलचस्प खत लिखनेवाले दर्शक को कार्यक्रम में आमंत्रित किया जाता। उससे उसी की पसन्द का व्यंजन बनवाया जाता"[(1)] इस प्रकार चैनल अपनी प्रसिद्धि और लोकप्रियता बनाए रखने का निरंतर प्रयास करता है, क्योंकि टीआरपी बढ़ाने और दर्शकों को अपने साथ बनाए रखने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ-साथ रुचि की लोकप्रियता निरंतर बढ़ती गई और वह लोगों के बीच एक प्रसिद्ध मीडिया व्यक्तित्व के रूप में स्थापित हो गई।

मीडिया और बाजार का गठजोड़

उपन्यास में मीडिया बाजारवादी संस्कृति का सबसे प्रभावशाली माध्यम बनकर सामने आता है। मीडिया व्यक्ति की छवि बनाता भी है और उसे बाजार की वस्तु भी बना देता है। रुचि की लोकप्रियता मीडिया द्वारा निर्मित है, वहीं उसके निजी जीवन की घटनाएँ भी समाचार बन जाती हैं। रुचि ने सर्वेश नारंग से अपने बेटे गगन की बात छिपाई थी। जब यह रहस्य सामने आता है, तो नारंग क्रोधित होकर कैफ़े में बातचीत के दौरान रुचि का गला पकड़ लेता है। दूसरे टेबल पर बैठी एक महिला पत्रकार इस घटना का चित्र खींच लेती है, जो अगले दिन समाचार-पत्र में प्रकाशित हो जाता है। इससे रुचि की प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचता है-"इसका पूरा परिचय उसे अगली सुबह मिला जब हर अखबार के स्थानीय पन्ने पर, कहीं दो कॉलम, कहीं तीन कॉलम में उसकी वह तस्वीर छपी हुई थी जिसमें सर्वेश नारंग के हाथ उसकी गर्दन पर कसे हुए थे। तस्वीर के नीचे कहीं शीर्षक था, 'रुचि की रसोई का स्वाद बेस्वाद।' कहीं लिखा था, 'यह खुशियों की होम डिलिवरी नहीं है।' एक अखबार ने बड़ा-सा प्रश्नचिह्न लगा कर पूछा था, 'क्या यही प्रेम है?"[2] यह प्रसंग दर्शाता है कि मीडिया जिस प्रकार किसी की छवि बना सकता है, उसी प्रकार उसे धूमिल भी कर सकता है। यह मीडिया की उस मानसिकता को भी उजागर करता है जहाँ निजी जीवन भी व्यावसायिक लाभ का साधन बन जाता है।

स्त्री सफलता और बाजार

बाजारवादी संस्कृति ने स्त्री को नए अवसर दिए हैं, पर साथ ही उसे उपभोग की वस्तु बनने के खतरे से भी घेरा है। रुचि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और सफल है, फिर भी उसका निजी जीवन संघर्षों से मुक्त नहीं है। उसकी सफलता केवल प्रतिभा का परिणाम नहीं, बल्कि प्रस्तुति, आकर्षण और मीडिया की अपेक्षाओं से भी जुड़ी हुई है। रुचि का चरित्र इस द्वंद्व को स्पष्ट करता है कि प्रसिद्धि हमेशा स्वतंत्रता नहीं देती। बाजार स्त्री को मंच देता है, पर उसकी छवि पर नियंत्रण भी बनाए रखता है। 'म' चैनल से प्रतिस्पर्धा और टीआरपी बढ़ाने के लिए 'क' चैनल रुचि की प्रतिभा नहीं, बल्कि उसकी बाज़ारू छवि का मूल्यांकन करता है। बाज़ारवादी संस्कृति में स्त्री को एक ऐसे उत्पाद के रूप में देखा जाता है जिसकी उपयोगिता उसकी 'मार्केट वैल्यू' पर निर्भर करती है। इसी मानसिकता को उपन्यासकार निम्नलिखित प्रसंग के माध्यम से उद्घाटित करते हैं— "मालिकों की दलील थी कि रुचि शर्मा की छवि एक घरेलू मध्यवर्गीय गृहिणी की थी। उसके हाथों में गोश्त और मुर्ग की विधियाँ सजेंगी ही नहीं। एक मालिक ने कहा, 'ऐसा कर सकते हैं हम 'स्वाद' प्रोग्राम के दो हिस्से कर दें। सोमवार, मंगलवार वैसे भी हिन्दुस्तानी लोग मास-मच्छी खाते नहीं हैं। शुक्रवार को भी लोगों को परहेज़ रहता है। तीन दिन 'स्वाद' प्रोग्राम रुचि शर्मा करें, तीन दिन कोई और।"[3] रुचि को अपनी इच्छा के विरुद्ध समझौता करना पड़ता है। यह वाकया दर्शाता है कि बाजारवादी मीडिया लाभ के लिए स्त्री को एक उपभोग्य वस्तु की तरह इस्तेमाल करता है। मीडिया स्त्री को एक ब्रांड के रूप में प्रस्तुत करता है और उसकी भूमिका का निर्धारण दर्शकों की पसंद तथा टीआरपी के अनुसार करता है।

परिवार और संबंधों का संकट

उपन्यास में बाजारवादी जीवन-दृष्टि के कारण पारिवारिक संबंधों के विघटन को भी प्रमुखता से चित्रित किया गया है। रुचि और प्रभाकर का वैवाहिक जीवन इसका उदाहरण है। प्रभाकर पत्नी को समान अधिकार वाला साथी नहीं, बल्कि आज्ञाकारी और समर्पित स्त्री के रूप में देखना चाहता है।उपन्यासकार प्रभाकर के संबंध में लिखती है "रुचि के पति प्रभाकर शर्मा ने दूसरी शादी नहीं की। उसके लिए पहली शादी का भी सीमित महत्त्व था। उसके जीवन में शादी का मतलब शरीर था जो वह कहीं भी जाकर प्राप्त कर लेता।"[4] यह कथन बाज़ारवादी संस्कृति द्वारा मानवीय संबंधों के वस्तुकरण को रेखांकित करता है, जहाँ विवाह जैसी सामाजिक संस्था भी भावनात्मक मूल्यों से रिक्त होकर उपभोग की वस्तु में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार उपन्यास विवाह संस्था के मानवीय अवमूल्यन तथा बाज़ारवादी मानसिकता के प्रभाव को उजागर करता है।नारंग और

रुचि जब अपने संबंध की शुरुआत करते हैं, तब वे स्पष्ट कर देते हैं कि दोनों एक-दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। यहाँ पारंपरिक दांपत्य अपेक्षाओं के स्थान पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता को अधिक महत्व दिया जाता है। यह आधुनिक शहरी जीवन और बाज़ारवादी संस्कृति से निर्मित संबंधों का एक भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

प्रसिद्धि, पूँजी और अकेलापन

उपन्यास यह प्रश्न उठाता है कि क्या आर्थिक सफलता ही जीवन की पूर्णता है? रुचि के पास धन, सम्मान और लोकप्रियता है, लेकिन उसके भीतर गहरा अकेलापन और मानसिक पीड़ा विद्यमान है।गगन को लेकर हुए विवाद के बाद रुचि नारंग से अलग होकर अकेली रहने लगती है। इससे उसके जीवन में गहरा सन्नाटा छा जाता है।उसकी मनःस्थिति को लेखिका इन शब्दों में व्यक्त करती हैं–"प्रभाकर से अलगाव के समय उसके अन्दर आक्रोश की आग के साथ आत्मविश्वास का उत्ताप भी था। आर्थिक रूप से निराधार होते हुए भी उसे लगा था कि ज़ालिम इन्सान के साथ रहना एक जलालत है। आज उसके पास पर्याप्त धन-साधन थे लेकिन उसका मन डगमग नैया बना हुआ था। चार दिन के एकान्तवास के बाद उसे लग रहा था कि कोई कमी उसी में है जो रिश्तों में फाँक पैदा हो जाती है।''[5] यह प्रसंग इस बात का प्रमाण है कि प्रसिद्धि और धन मनुष्य को वास्तविक सुख नहीं दे सकते; सच्चा सुख पारिवारिक संबंधों और भावनात्मक अपनत्व से ही प्राप्त होता है।रुचि का आंतरिक विघटन यह प्रमाणित करता है कि बाह्य उपलब्धियाँ मनुष्य के भावनात्मक और मानसिक संतुलन की गारंटी नहीं बन सकतीं। जब जीवन से आत्मीय संबंध, विश्वास और अपनापन समाप्त हो जाते हैं, तब भौतिक समृद्धि भी गहरे अकेलेपन और अस्तित्वगत शून्यता में बदल जाती है।

युवा पीढ़ी और बाजार का संकट

गगन का चरित्र आधुनिक युवा पीढ़ी के सामाजिक और मानसिक संकट का प्रतिनिधित्व करता है। टूटते पारिवारिक संबंध, भावनात्मक उपेक्षा तथा उपभोक्तावादी जीवन-शैली उसे नशे की लत की ओर धकेल देती है। वह अपने पिता के साथ रहते हुए भी रुचि से पैसे लेकर नशा करता है और उसके साथ रहने के बाद भी उसकी यह आदत नहीं बदलती। दूसरी ओर, नारंग का बेटा अंश भी ड्रग्स की गिरफ्त में आ जाता है और अंततः ओवरडोज़ के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। ये दोनों प्रसंग स्पष्ट करते हैं कि बाज़ारवादी संस्कृति में नशीले पदार्थों का फैलता कारोबार और उपभोगवादी मानसिकता युवा पीढ़ी के जीवन को गहरे संकट में डाल रहे हैं। उपन्यासकार यह संकेत देते हैं कि जब परिवार, संवेदनाएँ और नैतिक मूल्य कमजोर पड़ जाते हैं, तब युवा आसानी से बाज़ार की विनाशकारी प्रवृत्तियों का शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार गगन और अंश के माध्यम से उपन्यास में बाज़ारवाद के युवा जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

धार्मिक संस्थानों का बाज़ारीकरण

बाज़ारवादी संस्कृति के प्रभाव में धार्मिक संस्थान भी आर्थिक लाभ, सत्ता और प्रभाव के केंद्र बनते जा रहे हैं। आस्था के नाम पर अनेक प्रकार के आर्थिक तथा नैतिक भ्रष्टाचार समाज के सामने गंभीर चुनौती के रूप में उपस्थित हैं। सपनों की होम डिलिवरी में उपन्यासकार इस यथार्थ को खोजी पत्रकारिता के माध्यम से उजागर करते हैं–"मन्दिर वह स्थान है जहाँ ज़्यादातर मूढ़ किस्म के भक्त हाथ जोड़ कर शीश नवा कर जाते हैं। वे घंटा बजाते और प्रसाद चढ़ाते हैं। असली खेल मन्दिर के पट बन्द होने के बाद शुरू होता है जब वहाँ के पंडे, पुजारी, मजबूर औरतों को कभी पाखंड से, कभी पराक्रम से अपनी हवस का शिकार बनाते हैं।''[6] धर्म आस्था और मानवीय मूल्यों से विमुख होकर सत्ता, धन और वासना की पूर्ति का साधन बन जाता है, तब उसकी पवित्रता और नैतिक गरिमा क्षीण होने लगती है। मंदिर जैसे पवित्र स्थल भी शोषण के केंद्र में परिवर्तित हो जाते हैं, जो धार्मिक संस्थानों के बाज़ारीकरण की भयावह परिणति को उजागर करता है।बाज़ारवादी व्यवस्था ने धर्म को भी उपभोग और लाभ अर्जित करने का माध्यम बना दिया है। सर्वेश नारंग का इस भ्रष्ट तंत्र का पर्दाफाश करने का

प्रयास धार्मिक संस्थानों के बाज़ारीकरण के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध का प्रतीक है। यह उपन्यास खोजी पत्रकारिता की सामाजिक जिम्मेदारी और लोकतांत्रिक भूमिका को भी रेखांकित करता है।

भूमि का बाज़ारीकरण और महानगरीय असमानता

बाज़ारवादी संस्कृति के प्रभाव में महानगरों की बदलती संरचना, भूमि के बढ़ते व्यावसायीकरण तथा आर्थिक असमानताओं से उत्पन्न सामाजिक अंतर्विरोधों को रेखांकित करते हुए उपन्यासकार मुंबई के वर्ली क्षेत्र का चित्रण करती है। वह दिखाता है कि जहाँ एक ओर पूँजी और वैभव से संपन्न बहुमंज़िला इमारतें खड़ी हैं, वहीं दूसरी ओर झुग्गी-बस्तियाँ, अवैध गतिविधियाँ और अभावग्रस्त जीवन भी उसी परिदृश्य का हिस्सा हैं। इस विरोधाभासी यथार्थ को चित्रित करते हुए उपन्यासकार लिखता है–"आज के वक्त में यहाँ भी भू-स्वामियों ने जगह निकाल कर बहुमंजिली इमारतें बना डाली हैं। इन इमारतों की शीशेदार खिड़कियों से जो बाहर का दृश्य दिखता है उसमें सुन्दर और असुन्दर की भेलपुरी मिलती है। समुद्र सामने है पर उसके किनारे अवैध शराब खींचने की भट्टियाँ हैं, तस्करों के मोटरबोट यहीं सामान उतारते हैं, वरसोवा के बाद सूखी मछलियों का सबसे बड़ा अड्डा भी यहीं है।''[7] बाज़ारवादी संस्कृति के प्रभाव में भूमि का बाज़ारीकरण और महानगरीय विकास सामाजिक विषमता को और अधिक गहरा कर देते हैं।वर्तमान विकास मॉडल सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की अपेक्षा पूँजी संचय, लाभ और बाज़ार के हितों को प्राथमिकता देता है। परिणामस्वरूप आर्थिक विषमता, वर्गीय विभाजन तथा सामाजिक बहिष्करण और अधिक गहरे होते जाते हैं। परिणामस्वरूप एक ही भू-भाग पर ऐश्वर्य और अभाव, वैभव और अपराध, विकास और विस्थापन समानांतर रूप से उपस्थित दिखाई देते हैं।

मीडिया संस्कृति और पहचान का संकट

रुचि के जीवन का ग्राफ लगातार ऊपर बढ़ता जा रहा था। उसे विभिन्न चैनलों से अच्छी आय होने लगी थी। साथ ही, वह पाक-कला से संबंधित कॉलम भी लिखने लगी थी। वह प्रभाकर के साथ बिताए पुराने जीवन को भुलाकर आगे बढ़ने का प्रयास कर रही थी। फिर भी उसके भीतर अस्तित्व का एक गहरा संकट बना हुआ था। आर्थिक सफलता और व्यावसायिक उपलब्धियों के बावजूद वह मानसिक शांति, आत्मीयता और जीवन के वास्तविक अर्थ की खोज में स्वयं को असहाय अनुभव करती थी।"रुचि खुद विस्मित थी। इन कार्यक्रमों में ऐसा क्या है कि इनकी टी.आर.पी ए-ग्रेड कार्यक्रमों से टक्कर लेती है। पैसा उस पर बरस रहा था, आयकर की राशि हर साल बढ़ रही थी लेकिन कभी-कभी रुचि अवसादग्रस्त हो जाती। उसे लगता उसका जीवन मशीनी बनता जा रहा है। उसके जीवन में बस पाकशास्त्र ही पाकशास्त्र रह गया है"[8] एकरस जीवन-शैली मनुष्य की पहचान और व्यक्तित्व को सीमित कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप वह संवेदनशील एवं सृजनशील व्यक्ति के बजाय एक यंत्रवत् जीवन जीने लगता है।पहचान के इस संकट का शिकार गगन भी है। जब वह अपनी माँ के पास आता है, तब वह उनकी प्रसिद्धि का उपयोग करके नौकरी प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि उसके पास कोई विशेष शैक्षणिक योग्यता या डिग्री नहीं होती। किंतु रुचि उसे अपनी पहचान के सहारे आगे बढ़ने के बजाय स्वयं की योग्यता और परिश्रम के आधार पर जीवन में आगे बढ़ने की सलाह देती है–"कोई किसी का पहचान-पत्र नहीं बन सकता गगन। अपनी पहचान खुद बनानी पड़ती है। अब वो दिन गए जब केवल शकल सूरत की बिना पर फिल्मों में, टी.वी. में काम मिला करता था। इन सब लाइनों में मेहनत करनी पड़ती है, इनके खास कोर्स हैं जो पढ़ने पड़ते हैं। पहले अपना ग्रेजुएशन पूरा करो।"[9] प्रसिद्धि व्यक्ति की सामाजिक पहचान तो बना सकती है, किंतु वह उसकी व्यक्तिगत योग्यता का विकल्प नहीं बन सकती। गगन जैसे लोग आज के बाज़ारवादी समाज की उसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ सफलता को परिश्रम, योग्यता और धैर्य से नहीं, बल्कि त्वरित उपलब्धि, प्रभाव और शॉर्टकट से जोड़कर देखा जाता है।बाज़ारवाद ने सफलता को भी एक बिकाऊ वस्तु में बदल दिया है, जहाँ योग्यता से अधिक पहुँच, सिफ़ारिश, पूँजी और प्रभाव कई बार निर्णायक भूमिका निभाने लगते हैं।

बाज़ारवाद के विरुद्ध मानवीय प्रतिरोध

ममता कालिया केवल बाज़ारवाद की आलोचना नहीं करतीं, बल्कि उसके विरुद्ध मानवीय मूल्यों की स्थापना भी करती हैं। रुचि, बीजी और सर्वेश जैसे पात्र प्रेम, सहयोग और संवेदना के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि बाजार मनुष्य की आत्मा पर पूर्ण अधिकार नहीं जमा सकता।सर्वेश द्वारा गगन की सहायता करना किसी लाभ या प्रसिद्धि के लिए नहीं, बल्कि मानवीय करुणा का परिणाम है। उसका कहना कि—"कहाँ जाओगी, उस मनहूस मकान में जहाँ परिवार का एक भी प्राणी नहीं रहता। यह तुम्हारा घर है, मैं तुम्हारा हूँ, बीजी और गगन भी तुम्हारे हैं। मुकेश का गाया एक गाना याद आ रहा है 'मेरा घर खुला है, खुला ही रहेगा तुम्हारे लिए।' हम सब साथ रहेंगे। ज़ूयादा नहीं, बस कभी-कभी लड़ेंगे।"[10] यह प्रसंग बाज़ारवादी संस्कृति के विरुद्ध परिवार, आत्मीयता और मानवीय संबंधों के प्रतिरोध का उदाहरण है।

निष्कर्ष

'सपनों की होम डिलिवरी' समकालीन बाजारवादी समाज की विडंबनाओं का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उपन्यास बाज़ारवादी व्यवस्था के सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रभावों का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बाज़ारवादी संस्कृति के वर्तमान दौर में सबसे बड़ा संकट स्वयं मनुष्य का है। बाज़ार ने उसके संबंधों, संवेदनाओं, नैतिकता और पहचान तक को उपभोग की वस्तु में रूपांतरित करने का प्रयास किया है। उपन्यास दिखाता है कि बाजार मनुष्य के सपनों, भावनाओं और पहचान को प्रभावित करता है, किंतु प्रेम, विश्वास और संवेदना जैसे मानवीय मूल्य आज भी उसके पूर्ण नियंत्रण से बाहर हैं। सर्वेश की मानवीयता इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि बाजार की चमक के बीच भी मानवीय संवेदनाएँ जीवित हैं। यह उपन्यास उपभोक्तावादी संस्कृति की आलोचना करते हुए मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का सशक्त संदेश देता है। अतः 'सपनों की होम डिलिवरी' केवल बाजारवादी संस्कृति की आलोचना करने वाला उपन्यास नहीं है, बल्कि मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और नैतिक प्रतिरोध की पुनर्स्थापना का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज भी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सपनों की होम डिलीवरी, ममता कालिया, पृ. 11
2. वही पृ. 87
3. वही पृ. 65
4. वही पृ. 23
5. वही पृ. 92
6. वही पृ. 56
7. वही पृ. 48
8. वही पृ. 18
9. वही पृ. 76
10. वही पृ. 96.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

'अकाल में सारस' का धृतिसंकुल अभिगम

प्रो. (डॉ.) अशोक बाचुळकर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
आजरा महाविद्यालय, आजरा।
ई मेल : avbachulkar1973@gmail.com
भ्रमणध्वनि : 9423391579

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के आरंभ से ही उसे सूचना की जरूरत रही है। सूचनाओं को एकत्रित कर उनके आधार पर निर्णय लेने एवं तरीके विकसित करने के प्रयास समय-समय पर होते रहे हैं। कहना गलत नहीं होगा कि कागज से लेकर विभिन्न भाषिक सॉफ्टवेयरों का आविष्कार सूचना की आवश्यकता का नतीजा है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया, वैसे-वैसे भाषा प्रौद्योगिकी के कारण चीजों तथा वस्तुओं का विकास होता गया। यह विकास निरंतर चलती रही प्रक्रिया का फल है। इसके लिए भाषा प्रौद्योगिकी को समझना आवश्यक है।

भाषा और प्रौद्योगिकी के बीच क्या संबंध है? इसे जानना कठिन नहीं है; किंतु इसे समझना उतना सरल भी नहीं है। इसे समझने की एकमात्र तकनीक यह है कि इसके कार्य का वर्णन। समयानुसार बढ़ती प्रौद्योगिकी भाषा को प्रभावित करती जा रही है। वह प्रभाव कभी स्पष्ट रूप में सामने आता है, तो कभी अस्पष्ट रूप में। वास्तविकता यह है कि प्रौद्योगिकी मनुष्य की पहुँच की संभावनाओं को बढाने का परम आवश्यक साधन बनती जा रही है, जो अनिवार्यतः भाषा से जुडी है। इस तरह प्राकृतिक भाषाएँ और प्रौद्योगिकियाँ, दोनों ही मनुष्य की गतिविधि के किसी भी क्षेत्र में सभी प्रकार की चीजें तथा वस्तुएँ सक्षम रूप में बनाने हेतु महत्त्वपूर्ण हैं। प्रौद्योगिकी और भाषा के बारे में हमारे विचारों के प्रतिरूपण के संदर्भ में सोच जारी रहती है, तो भाषा प्रौद्योगिकी अंतर्गत समय के साथ आ रहा बदलाव भाषिक चुनौतियों को भी सामने ला रहा है। इन्हीं चुनौतियों में से एक है - प्राकृतिक भाषा की आंतरिक परतें, जो क्लिष्ट एवं अत्यंत जटील हैं। प्राकृतिक भाषा संसाधन अर्थात् मानव भाषा संसाधन प्रक्रिया संगणक की सहायता से सुलभ बनी है; किंतु भाषिक आर्थी-विश्लेषण एवं व्याकरणिक स्तर की जाँच अत्यंत सरल होने के बावजूद, कभी-कभी क्लिष्ट बनती है। विद्वानों के अध्ययन का प्रतिफल यह है कि अनेक क्लिष्टताओं के होते हुए भी प्राकृतिक भाषा संसाधन करने में वे समर्थ बनते हैं। प्राकृतिक भाषा संसाधन के कारण ही विविध भाषिक परावस्तुएँ निर्माण होती हैं। प्राकृतिक भाषा संसाधन हेतु संगणक की आवश्यकता अनिवार्यतः होती है।

संगणक एक ऐसी इलेक्ट्रॉनिक मशीन है, जो निर्देशों के समूह को जिसे हम Data (धृति) कहते हैं, उसको नियंत्रित कर तथ्यों पर processing करके Iinformation Generate करता है। वस्तुतः संगणक ही वह युक्ति है, जिसमें Data को Accept करने और उस Data पर Required Processing करने के लिए किसी Program (प्राकलन) को Execute करने की क्षमता होती है। साथ ही संगणक में Data को Accept करने के लिए Input Devices होती हैं, जबकि

Processed Data अर्थात् Information को प्रस्तुत करने के लिए Output Devices होती हैं। अर्थात् संगणक एक ऐसी मशीन है, जहाँ किन्हीं एक या एक से अधिक समस्याओं को सुलझाने या किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई स्वतंत्र इकाइयाँ मिलकर काम करती हैं। इन्हीं Input और Output युक्तियों के कारण ही अभिकल्पित परियोजनाओं का वास्तविक प्रतिफल प्राप्त होता है। विद्वानों का कहना है कि, "The goal of natural language processing (NLP) is to create computer programs that can both understand any coherent human statement and also speak back to create easy, natural interaction with an Al." [1] (प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) का लक्ष्य ऐसे कंप्यूटर प्रोग्राम बनाना है, जो किसी भी सुसंगत मानवीय कथन को समझ सके और AI के साथ आसान, प्राकृतिक संपर्क बनाने के लिए वापस बोल सके।) कहना सही होगा कि प्राकृतिक भाषा संसाधन अर्थात् मानव भाषा संसाधन कृति की फलश्रुति ऐसे परावस्तु (Software) बनाने में है, जो मनुष्य के कथन को समझकर उस पर कार्य कर सके।

हम जानते हैं कि मानव भाषा यानी प्राकृतिक भाषा परिवर्तनशील है। प्राकृतिक भाषा पर अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चॉम्स्की ने कहा है, "स्पष्ट तथ्य है कि प्राकृतिक भाषा में बोलने की संख्या असंबद्ध है।"[2] कहना सही होगा कि प्राकृतिक भाषा परिवर्तनशील होने का कारण यह भी है कि उसके बोलनेवालों की संख्या का असंबद्ध होना। वह अनिवार्यतः परिवर्तनशील है। वस्तुतरू दुनियाभर की हर प्राकृतिक भाषा एक-दूसरे से भिन्न है। कारण अनेक हैं, जिनके कारण भाषाओं में परिवर्तन पाया जाता है। हर प्राकृतिक भाषा में परिवर्तन की सीमा को अनुशासित करने हेतु व्याकरण के नियम निर्धारित हैं। फलतः हर प्राकृतिक भाषा संप्रेषण हेतु अपने आप में परिपूर्ण होती है। इन्हीं प्राकृतिक भाषाओं के उचित संसाधन की फलश्रुति भाषिक परावस्तु अर्थात् लैंग्वेज सॉफ्टवेयर्स में हो रही है। मशीनी दुनिया में विभिन्न कार्यों एवं उत्पादों की निर्मिति हेतु इन्हीं सामान्य भाषाओं का मशीन द्वारा संसाधन करना अत्यावश्यक है। प्राकृतिक भाषा के बारे में प्रकाश नाडकणी लिखते हैं- "NLP began in the 1950 as the intersection of artificial intelligence and linguistics- NLP was originally distinct from text information retrieval (IR)- When employs highly scalable statistics&based techniques to index and search large volumes of text efficienty-"[3]

अर्थात् - प्र. भा. स. (प्राकृतिक भाषा संसाधन) 1950 के दशक में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और भाषाविज्ञान के प्रतिच्छेदन के रूप में शुरू हुआ। प्र. भा. स. मूल रूप से टेक्स्ट इन्फोर्मेशन रिट्रियल (आईआर) से अलग था, जो टेक्स्ट के बडे वॉल्यूम को प्रभावी ढंग से इंडेक्स और सर्च करने के लिए अत्यधिक स्केलेबल स्टैटिस्टिकस् आधारित तकनीकों को नियोजित करता है। बात सीधी सी है कि बगैर प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करणों के तकनीकी भाषिक परावस्तुओं का सृजन संभव नहीं। वैसे प्राकृतिक भाषा संसाधन का आधार 'धृतिसंकुल अभिगम' है, जिसे हम निम्न तालिका द्वारा समझ सकते हैं–

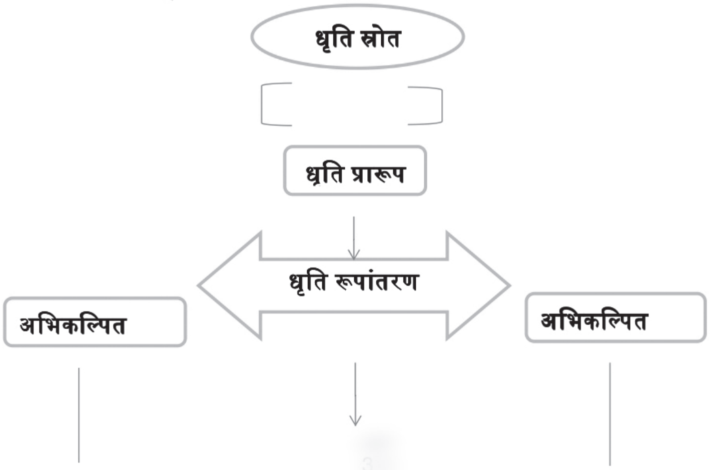

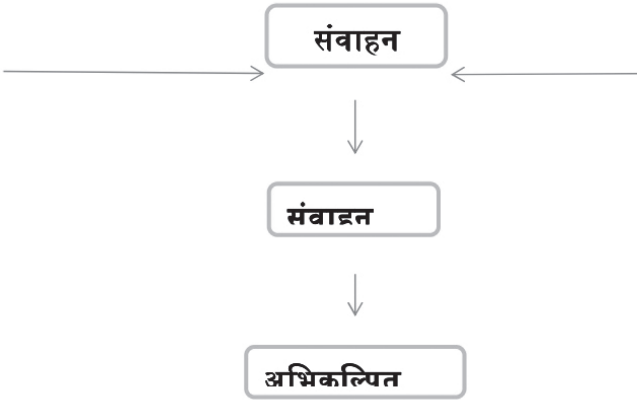

विभिन्न प्रकार के Data (धृति) का Collection (संकलन) करना और संचित डाटा को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत करके उसका Analyse (विश्लेषण) करना तथा उचित अभिकल्पित प्राकलन के लिए तैयार रखना धृतिसंकुल अभिगम कहा जाता है।

धृतिसंकुल अभिगम हेतु पूर्व अव्यवस्थित धृति को परिष्कृत करना पडता है। इसे ही Data की संज्ञा दी जाती है। प्रोग्रामिंग की सहायता से ही प्राकृतिक भाषा के स्वॉफ्टवेयर्स बनते हैं; किंतु स्वॉफ्टवेयर्स निर्माण प्रकिया की नींव है -Data. जिसके बारे में विज्ञानाचार्य कहते हैं, 'अव्यवस्थित गणकों को Data अथवा धृति कहा जाता है।' अव्यवस्थित धृति को सुव्यवस्थित करने की विधि को परिष्करण कहा जाता है। संस्कारित की गई धृति उपयोगी Dataइेंम कहलाता है। विद्वानों के मतानुसार "धृति परिष्करण में एक डेटा को अनेक प्रकार की उपयोगी सूचनाओं में परिवर्तित किया जा सकता है।"[4] वास्तव में Data का निर्माण विशिष्ट हेतु सामने रखकर किया जाता है, तभी वह Dataइेंम कहलाता है। यानी Dataइेंम बनाने का प्रथम चरण है - उद्देश्य निर्धारित होना। यहाँ हम उदाहरण के रूप में कवि केदारनाथ की प्रसिद्ध कविता 'अकाल में सारस' का पद्च्छेदन कर उसका एमएस एक्सेस अंतर्गत Dataइेंम की प्रक्रिया से परिचित होंगे। अतः 'अकाल में सारस' का धृतिसंकुल अभिगम बनाने से पूर्व उसका पद्च्छेदन करना अनिवार्य है। उदाहरण के तौर पर निर्धारित कविता की एक पंक्ति को लेते हैं, जैसे - 'किसी ने सोचा तक नहीं था'।[5]

काव्य पंक्ति	**किसी**	**ने**	**सोचा**	**तक**	**नहीं**	**था**
व्याकरणिक कोटि	**सर्व.**	**प्रत्य.**	**संज्ञा पु.**	**अव्य.**	**अव्य.**	**क्रि. अ.**
अर्थ	कोई का वह रूप जो उसे विभक्ति लगाने पर प्राप्त होता है।	भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ लगनेवाला एक कारक चिह्न।	सोचने की क्रिया या भाव।	एक विभक्ति, जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवधि सूचित करती है।	'नहीं'।	है शब्द का भूतकाल।

इस तरह कविता में आए पदों का पद्च्छेदन कर उनकी व्याकरणिक कोटि एवं काव्यार्थ प्राप्त किया जाएगा। प्राप्त धृति को एमएस एक्सेस द्वारा कविता में आए मूल शब्द और उनकी व्याकरणिक कोटि एवं अर्थ को दिया जाएगा। अन्य अर्थ के अंतर्गत निर्धारित शब्द के कविता में निहित अर्थ के अलावा अन्य अर्थों को दिया गया है। प्रस्तुत है, 'अकाल में सारस' का एमएस एक्सेस अंतर्गत धृतिसंकुल—

'अकाल में सारस' कविता की धृति

ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
1.	तीन	वि.	संज्ञा पुं.	जो दो और एक हो। जो गिनती में चार से एक कम हो।	दो और एक का जोड़। उक्त संख्या सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है। सरयूपारी ब्राह्मणों में तीन गोत्रों का एक वर्ग।
2.	दिन	संज्ञा पुं.	-	उतना समय जिसमें सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है।	सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय। सूर्य की किरणों के दिखाई पड़ने का सारा समय। विशेष-पृथ्वी अपने पक्ष पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है। इस परिक्रमा में इसका जो आधा भाग सूर्य की ओर रहने के कारण प्रकाशित रहता है, उसमें दिन रहता है, बाकी दूसरे भाग में रात रहती है।
3.	में	स्त्री	संज्ञा	के अंदर।	किनारा। तट। छोर। किनारा। कोर। तलहटी। घाट।
4.	आ		संज्ञा पुं. अव्य. उप.	आ हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'अ' का दीर्घ रूप है।	कपडे के एक छोर पर टँका हुआ चौडा ठप्पेदार पट्टा। ब्रह्मा। पितामह। एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईषत् और अतिक्रमण के अर्थों में होता है। यह प्राय: गत्यर्थक धातुओं के पहले लगता है और उनके अथों में कुछ थोड़ी सी विशेषता कर देता है; जैसे आपाता आघूर्णन, आरोहण, आकंपन, आघ्राण।
5.	वे	सर्व.	सर्व.	वह का बहुवचन या सम्मानवाचक रूप।	पत्नी द्वारा पति के लिए प्रयुक्त अन्य पुरुष का

'अकाल में सारस' कविता की धृति					
ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
					सर्वनाम।
6.	जब	क्रिवि.	क्रिवि.	जिस समय।	जिस वक्त।
7.	ने	प्रत्य.	-	सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता का चिह्न, जो उसके आगे लगाया जाता है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता की विभक्ति।	-
8.	सोचा	संज्ञा पुं.		सोचने की क्रिया या भाव।	शोक। दुःख। रंज। अफसोस। पछतावा। पश्चा- त्ताप।
9.	तक	अव्य.	संज्ञा स्त्री.	एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवधि सूचित करती है।	तराजू। तराजू का पल्ला।
10.	नहीं	पु अव्य.	-	'नहीं'।	-
11.	था	क्रि. अ.	-	है शब्द का भूतकाल।	एक शब्द जिससे भूतकाल में होना सूचित होता है।
12.	कि	अव्य.	क्रि. वि.	संयोजक शब्द-जो कहना, वर्णन करना, देखना, सुनना इ. क्रियाओं के बाद उनके विषय वर्णन के पहले आता है।	किस प्रकार? कैसे? तत्क्षण। तत्काल। तुरंत।
13.	ऐसे	क्रि. वि.		इस ढब से।	इस ढंग से। ऐसे छोड़े हुए साँड़ों से किसी प्रकार का

'अकाल में सारस' कविता की धृति					
ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
					काम नहीं लिया जाता।
14.	भी	अव्य.	संज्ञा स्त्री.	अवश्य। निश्चय करके। जरूर ।	भय। डर। खौफ। अधिक। ज्यादा। विशेष।
15.	सकते	अ. पू.	संज्ञा पुं. संज्ञा स्त्री.	करने की क्रिया का अपूर्ण रूप।	शक्ति। ताकत। विराम। यति। सामर्थ्य। एक प्रकार का मानसिक रोग जिसमें रोगी बेहोश हो जाता है। बेहोशी को बीमारी।
16.	हैं	क्रिअ.	संज्ञा पुं.	सत्तार्थक क्रिया 'होना' के वर्तमान रूप 'है' का बहुवचन।	सूती कपड़ा जो, चटकीले लाल रंग का होता है। गहरा लाल रंग। निकृष्टता सूचक एक प्रकार की गाली।
17.	सारस	संज्ञा पुं.	-	एक प्रकार का प्रसिद्ध सुंदर पक्षी जो एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और युरोप के उत्तरी भागों में पाया जाता है। इसकी लंबाई पूंछ के आखिरी सिरे तक 4 फीट होती है। पर भूरे होते हैं। सिर का उपरी भाग लाल और पैर काले होते हैं। यह एक स्थान पर नहीं रहता	पुष्कराह्न। लक्षमण। सरसीक। सरोद्भव। रसिक। कामी। हंस। गरुड़ का पुत्र। चंद्रमा। स्त्रियों का एक प्रकार का कटिभूषण।

'अकाल में सारस' कविता की धृति					
ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
				बराबर घूमा करता है। किसानों द्वारा नए बीज बोने पर यह पंछी वहाँ पहुँच जाता है और बीजों को चटकर जाता है। यह मेढ़क, घोंघा आदि भी खाता है। यह प्रायः घास फूस के ढेर में घोंसला बनाकर या खंडहरों में रहता है। यह अपने बच्चों का लालन पालन बड़े यत्न से करता है। कहीं-कहीं लोग इसे पालते हैं। बाग-बगीचों में छोड़ देने पर यह कीड़े-मकोड़ों को खाकर उनसे पेड़ पौधों की रक्षा करता है। कुछ लोग भ्रमवश हंस को ही सारस मानते हैं। वैद्यकशास्त्र में इसके मांस का गुण मधुर, अम्ल, कषाय तथा महाति-सार, पित्त, ग्रहणी	

‘अकाल में सारस’ कविता की धृति					
ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
				और अर्श रोग का नाशक बताया गया है।	
18.	एक	वि.	-	इकाइयों में सबसे छोटी और पहली संख्या। वह संख्या जिससे जाति या समूह में से किसी अकेली वस्तु या व्यक्ति का बोध हो।	-
19.	के	प्रत्य.	सर्व.	संबंधसूचक 'का' विभक्ति का बहुवचन रूप।	टुकड़ा। खंड।
20.	बाद	संज्ञा पुं.	-	नाना प्रकार के तर्क वितर्क द्वारा बात का विस्तार।	बहस। तर्क । खंड़न मंडन की बातचीत। विवाद। झगड़ा। हुज्जत। झक-झक। तूलकलामी
21.	वे	सर्व.	-	वह का बहुवचन या सम्मानवाचक रूप।	पत्नी द्वारा पति के लिए प्रयुक्त अन्य पुरुष का सर्वनाम।
22.	धीरे	क्रिवि.	-	आहिस्ते से।	मंद मंद। धीमी गति से। चुपके से। इस प्रकार जिसमें कोई सुन या देख न सके। इस प्रकार जिसमें किसी को आहट न मिले। आहिस्ते। मंद मंद गति से। क्रमशः। धीमे स्वर में।
23.	वे	सर्व.	-	वह का बहुवचन या संमानवाचक रूप।	पत्नी द्वारा पति के लिए प्रयुक्त अन्य पुरुष का

'अकाल में सारस' कविता की धृति					
ID	**मूल शब्द**	**व्याकरणिक कोटि - 1**	**व्याकरणिक कोटि - 2**	**अर्थ क्र. - 1**	**अन्य अर्थ**
					सर्वनाम।
24.	छा	संज्ञा स्त्री.	-	आच्छादन। छिपाना।	शावक। छौना। शिशु। पारा। चिह्न।
25.	आसमान	संज्ञा पुं.	-	आकाश। गगन।	-
26.	से	प्रत्य.	वि. संज्ञा	करण और अपादान कारक का चिह्न। तृतीया और पंचमी की विभक्ति।	समान। सदृश। सम। सेवा। खिदमत। चाकरी।
27.	भर	वि.	क्रि. वि.	कुल। पूरा। सब। तमाम।	भार से। बल से। द्वारा।
28.	गया	क्रिअ.		'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप।	नष्ट। निकृष्ट।
29.	सारा	संज्ञा स्त्री.		काली निसोथ। कृष्णात्रिवृत्त।	दूब। दूर्वा। शातला। थूहर। केला। कुश। कुशा।
30.	देर	संज्ञा स्त्री.	संज्ञा पुं.	अतिकाल। बिलंब। नियमित, उचित या आवश्यक से अधिक समय।	द्वार। दरवाजा। समय। वक्त।
31.	तक	अव्य.	संज्ञा स्त्री.	एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवधि सूचित करती है।	तराजू।तराजू का पल्ला। अति बल जल बरसत दोउ लोचन दिन अरु रइन रहत एकहि तक। तुलसी।
32.	की	प्रत्य.	संज्ञा स्त्री.	विभक्ति 'का' का स्त्री.।	वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो। कुंजी। चाबी। ताली।

'अकाल में सारस' कविता की धृति					
ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
33.	परिक्रमा	क्रि.	संज्ञा स्त्री.	चारों ओर घूमना। फेरी। चक्कर। प्रदक्षिणा।	करना।होना। किसी तीर्थ या मंदिर के चारों ओर घूमने के लिए बना हुआ मार्ग।
34.	और	अव्य.	वि.	एक संयोजक शब्द। दो शब्दों या वाक्यों को जोड़नेवाला शब्द।	दूसरा। अन्य। भिन्न।
35.	पर	-	वि. [सं.]	-	पंख। चारपाई। खाट। दूसरा। अन्य। अपने को छोड़ शेष। स्वातिरिक्त। गैर। परलोक। पराया। दूसरे का। जो अपना न हो।
36.	से	प्रत्य.	वि.	करण और अपादान कारक का चिह्न। तृतीया और पंचमी की विभक्ति।	समान। सदृश। सम।
37.	धान	संज्ञा पुं.	-	तृण जाति का एक पौधा जिसके बीज की गिनती अच्छे अन्नों में है।	-
38.	की	प्रत्य.	संज्ञा स्त्री.	विभक्ति 'का' का स्त्री.।	वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो।
39.	गंध	संज्ञा स्त्री.	-	सुगंध। बास। महक।	सुवास।
40.	अचानक	क्रिवि.	-	बिना पूर्वसूचना के।	एकबारगी। सहसा। अकस्मात्। दैवात्। हठात्। औचट में। अनाचित्ते में।

'अकाल में सारस' कविता की धृति					
ID	मूल शब्द	व्याकरणिक कोटि - 1	व्याकरणिक कोटि - 2	अर्थ क्र. - 1	अन्य अर्थ
41.	ने	प्रत्य.	-	सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता का चिह्न जो उसके आगे लगाया जाता है।	सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता की विभाक्ति।
42.	ज़रूर	क्रिवि.	संज्ञा पुं.	निःसंदेह।	निश्चय करके दवा की बुकनी, जो जख्म या आँख में छोड़ी जाए।
43.	वे	सर्व.	-	वह का बहुवचन या संमानवाचक रूप।	-
44.	तलाश	संज्ञा स्त्री.	-	खोज। ढूँढ़ढाँढ। अन्वेषण। अनुसंधान।	-
45.	सोचा	संज्ञा पुं.	-	सोचने की क्रिया या भाव।	-
46.	बीचोबीच	क्रिवि.	-	बिल्कुल बीच में।	ठीक मध्य में।
47.	दिया	क्रि. स.	संज्ञा पुं.	'देना' क्रिया का सामान्य भूतकाल का एकवचन रूप।	दीपक

निष्कर्ष

वर्तमान मन्युष्य को सूचना की आवश्यकता अनिवार्य है। सूचनाओं को प्राप्त करने के प्रयास का नतीजा हमें भाषा प्रौद्योगिकी तक ले आता है। बढती प्रौद्योगिकी से भाषा प्रभावित होती जा रही है। प्राकृतिक भाषा संसाधन परावस्तुओं के निर्माण की नींव है। प्राथमिक रूप में संकलित धृति पर प्रक्रिया के पश्चात् उसका वर्गीकरण एवं विश्लेषण आवश्यक होता है। किसी भी धृति का धृतिसंकुल अभिगम बनाने से पूर्व वह अव्यवस्थित होती है, जिसे परिष्कृत करना अनिवार्य होता है। साहित्यिक कृति अंतर्गत किसी कविता का पद्च्छेदन किया जाए, तो भाषा की आंतरिक जटिलता से होते हुए विविध व्याकरणिक कोटियाँ एवं अर्थ की समस्याओं को झेलकर धृति निर्माण की जाती है, जो एक क्लिष्ट प्रायोगिक कार्य है। किसी भी साहित्यिक कृति

के धृतिसंकुल अभिगम हेतु कुछ चरणों की गुजरना अनिवार्य होता है, जहाँ कारवाई योग्य आउटपुट (बहिर्पात) के उत्पादन हेतु कच्चे डेटा का इनपुट (अंतर्पात) आवश्यक होता है। प्रत्येक चरण का अपने विशिष्ट क्रम में आगे बढना आवश्यक है, जैसे - Collection, Preparation, Input, Processing, Output, Storage आदि।

'अकाल में सारस' कविता का भावार्थ ध्यान में लेते हुए उसका पद्च्छेदन किया गया है। कविता में अभिप्रेत अर्थ एवं उस शब्द के अन्य अर्थों को भी देखा गया है। व्याकरणिक कोटि के अंतर्गत विविध समस्याओं का सामना करना पडा, जैसे - संज्ञा का विशेषण रूप, क्रिया का सकर्मक एवं अकर्मक रूप आदि की जाँच करते हुए पद्च्छेदन विधि का प्रयोग और उसके पश्चात एमएसएक्सेस अंतर्गत का डेटा हिंदी भाषिक परावस्तुओं (सॉफ्टवेयर) को प्रायोगिक अनुसंधान की सहायता से बनाया गाया है।

इस तरह पद्च्छेदन द्वारा निर्मित 'अकाल में सारस' की धृति को सुसंबद्ध नियमों के आधार पर एमएस एक्सेस द्वारा संरचित करना 'धृतिसंकुल अभिगम' है। पद्च्छेदन प्रविधि द्वारा बनाया गया डेटा परंपरागत क्रमबद्ध फाइलों की अभिकल्पनाओं की विशिष्ट सूचनाओं, जैसे—लेखांकन या क्रय-विक्रय आदि उपयोगिता से परे जाकर निर्धारित कविता को सूक्ष्म एवं गहन रूप में समझने में मदद मिली। बावजूद इसके पाठक कवि की शैली से भी परिचित होते हैं। व्याकरणिक कोटि प्राप्त होने के कारण विशेषण पद पर विराजमान शब्दों की मूलावस्था, उत्तरावस्था और उत्तमावस्था से हम परिचित हुए। साथ ही वह प्र-विशेषण है या प्र-विशेषण का प्र प्र-विशेषण है, यह भी ज्ञात हुआ।

संदर्भ

1. https://summalinguae.com/data/collect-natrual-language-data-for-n/p
2. www.greelane.com
3. https://www.researchgate.net/publication/S1S76224 natural languge processing an introduction
4. धनजी प्रसाद, संगणकीय व्याकरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2019, पृ. 158
5. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 70

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकनात्मक अध्ययन

डॉ. विनोद पुंडीर
प्राचार्य एवं शोध-मार्गदर्शक
चौधरी देवी लाल कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
जगाधरी, यमुनानगर (हरियाणा)

लवनीन ग्रोवर
एम.एड. शोधार्थी
चौधरी देवी लाल कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
जगाधरी, यमुनानगर (हरियाणा)

संक्षेपिका

वर्तमान शोध-पत्र का उद्देश्य सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का शैक्षिक दृष्टि से मूल्यांकन करना है। इस अध्ययन में पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन भाषा एवं समझ, विषयवस्तु, प्रस्तुति, मूल्यपरकता एवं संस्कृति तथा शिक्षण उपयोगिता जैसे प्रमुख आयामों के आधार पर किया गया है। यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। अध्ययन हेतु सीबीएसई से संबद्ध विद्यालयों के संस्कृत विषय के कक्षा 12 के विद्यार्थियों का चयन किया गया। शोध उपकरण के रूप में शोधकर्ता द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत तथा माध्य के माध्यम से किया गया तथा आवश्यकतानुसार सारणियों एवं आलेखों का उपयोग किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक की भाषा सामान्यतः सरल एवं बोधगम्य है तथा इसकी विषयवस्तु पाठ्यक्रमानुकूल, ज्ञानवर्धक एवं विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप है। पाठ्यपुस्तक में भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं मानवीय आदर्शों का प्रभावी समावेश पाया गया। अध्ययन के आधार पर पाठ्यपुस्तक को और अधिक प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक शैक्षिक सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं।

प्रमुख शब्द : संस्कृत, पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन, सीबीएसई बोर्ड, कक्षा 12, शिक्षण अधिगम, भाषा एवं समझ, मूल्यपरक शिक्षा, संस्कृत शिक्षण।

भूमिका

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का आधार है। शिक्षक पाठ्यक्रम को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए पाठ्यपुस्तक का उपयोग करते हैं तथा विद्यार्थी ज्ञान अर्जित करने के लिए मुख्यतः उसी पर निर्भर रहते हैं। अतः किसी भी पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता शिक्षा की गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति, दर्शन, साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान की प्राचीनतम एवं समृद्ध भाषाओं में से एक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भी भारतीय भाषाओं एवं विशेष रूप से संस्कृत के संरक्षण एवं संवर्धन पर बल दिया है। इसलिए विद्यालय स्तर पर संस्कृत शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकों का होना आवश्यक है।

सीबीएसई बोर्ड देश के प्रमुख शिक्षा बोर्डों में से एक है। इसकी पाठ्यपुस्तकों का निर्माण राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा,

शिक्षण उद्देश्यों तथा विद्यार्थियों की आयु एवं मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर किया जाता है। कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के लिए केवल परीक्षा की दृष्टि से ही नहीं अपितु भाषा-कौशल, सांस्कृतिक चेतना, नैतिक मूल्यों एवं तार्किक चिंतन के विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि इस पाठ्यपुस्तक का विभिन्न शैक्षिक मानकों के आधार पर मूल्यांकन किया जाए। प्रस्तुत अध्ययन में सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर किया गया है। अध्ययन में भाषा एवं समझ, विषयवस्तु एवं सामग्री, प्रस्तुति एवं चित्रण, मूल्यपरकता एवं संस्कृति तथा शिक्षण उपयोगिता जैसे प्रमुख आयामों को आधार बनाया गया है। प्राप्त निष्कर्ष पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता का वस्तुनिष्ठ आकलन प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार यह अध्ययन न केवल संस्कृत पाठ्यपुस्तक की वर्तमान स्थिति को स्पष्ट करता है, बल्कि उसके भविष्य के सुधार एवं प्रभावी उपयोग के लिए भी महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत करता है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा

किसी भी शोध की सफलता उसके पूर्ववर्ती अध्ययनों के समुचित अध्ययन पर निर्भर करती है। संबंधित साहित्य की समीक्षा से शोधकर्ता को विषय की पृष्ठभूमि, अनुसंधान की दिशा तथा पूर्व में किए गए कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन, संस्कृत शिक्षण तथा विद्यालयी शिक्षा से संबंधित प्रमुख शोधों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

मिश्रा (2018) ने संस्कृत शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों की उपयोगिता का अध्ययन किया। निष्कर्षों से स्पष्ट हुआ कि प्रभावी पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों की भाषा दक्षता, व्याकरण ज्ञान तथा संस्कृत के प्रति रुचि विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अध्ययन में यह भी सुझाव दिया गया कि प्रत्येक पाठ के अंत में परियोजना कार्य एवं जीवनोपयोगी गतिविधियाँ सम्मिलित की जानी चाहिए।

सिंह (2019) ने वरिष्ठ माध्यमिक स्तर की संस्कृत पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन किया। अध्ययन में पाया गया कि पाठ्यपुस्तकों में भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय चेतना का समुचित समावेश है। तथापि कुछ अध्यायों की भाषा अपेक्षाकृत कठिन होने के कारण विद्यार्थियों को अतिरिक्त शिक्षक सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

कुमार (2020) ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत शिक्षा की प्रासंगिकता का अध्ययन किया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि संस्कृत शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए आधुनिक शिक्षण विधियों, डिजिटल संसाधनों तथा अद्यतन पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता है। शोधकर्ता ने सुझाव दिया कि पाठ्यपुस्तकों में गतिविधि-आधारित एवं कौशल-आधारित शिक्षण सामग्री का समावेश किया जाना चाहिए।

यादव (2021) ने पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन के विभिन्न मानदण्डों का विश्लेषण किया। अध्ययन में भाषा, विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण, चित्रण, अभ्यास प्रश्न तथा मूल्यपरक शिक्षा को पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन के प्रमुख आधार माना गया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन केवल विषय सामग्री तक सीमित न होकर उसकी शैक्षिक उपयोगिता के आधार पर भी किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा समय-समय पर प्रकाशित दिशा-निर्देशों में यह स्पष्ट किया गया है कि एक आदर्श पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों की आयु, मानसिक स्तर, भाषा दक्षता एवं अधिगम आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। साथ ही उसमें भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों, समावेशी शिक्षा तथा समकालीन जीवन से संबंधित विषयों का संतुलित समावेश होना चाहिए।

उपरोक्त अध्ययनों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शोधों में पाठ्यपुस्तकों की भाषा, विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण तथा शिक्षण उपयोगिता का अध्ययन किया गया है किन्तु सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर समग्र मूल्यांकन करने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध हैं। इसी शोध-अंतर को ध्यान

में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन पाठ्यपुस्तक के विभिन्न आयामों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा पाठ्यपुस्तक के सुधार एवं संस्कृत शिक्षण की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु उपयोगी सुझाव प्रदान करता है।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन ष्सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकनष विषय पर आधारित है। इस अध्ययन का उद्देश्य कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का विभिन्न शैक्षिक आयामों के आधार पर मूल्यांकन करना था। अध्ययन में विशेष रूप से भाषा एवं समझ, विषयवस्तु एवं सामग्री, प्रस्तुति एवं चित्रण, मूल्यपरकता एवं संस्कृति तथा शिक्षण उपयोगिता जैसे प्रमुख पक्षों का विश्लेषण किया गया।

घटक	विवरण
अनुसंधान विधि	विश्लेषणात्मक
जनसंख्या	सीबीएसई विद्यालय
निदर्शन	100 विद्यार्थी
उपकरण	स्वनिर्मित प्रश्नावली
सांख्यिकी	प्रतिशत एवं माध्य

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक की विशेषताओं एवं सीमाओं का विश्लेषण किया गया तथा परिणामों को अधिक स्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाने के लिए सारणियों, स्तंभ-चित्र तथा वृत्त-चित्र का उपयोग किया गया। इन सांख्यिकीय तकनीकों के माध्यम से विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया तथा प्रत्येक आयाम का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया। पाठ्यपुस्तक को अधिक प्रभावी, विद्यार्थी-केंद्रित एवं शिक्षणोपयोगी बनाने के लिए आवश्यक शैक्षिक सुझाव प्रस्तुत किए गए।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन विद्यार्थियों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर किया गया। अध्ययन में पाठ्यपुस्तक के पाँच प्रमुख आयामों- भाषा एवं समझ, विषयवस्तु एवं सामग्री, प्रस्तुति एवं चित्रण, मूल्यपरकता एवं संस्कृति तथा शिक्षण उपयोगिता का मूल्यांकन किया गया। इन सभी आयामों के प्रमुख निष्कर्षों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी - 1

सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का समग्र मूल्यांकन

क्रमांक	मूल्यांकन के आयाम	प्रमुख निष्कर्ष
1	भाषा एवं समझ	अधिकांश विद्यार्थियों ने पाठ्यपुस्तक की भाषा को सरल, स्पष्ट एवं बोधगम्य माना। कुछ विद्यार्थियों ने श्लोकों एवं गद्यांशों की व्याख्या को और अधिक सरल बनाने की आवश्यकता व्यक्त की।
2	विषयवस्तु एवं सामग्री	विषयवस्तु पाठ्यक्रमानुकूल, ज्ञानवर्धक एवं विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप पाई गई।
3	प्रस्तुति एवं चित्रण	पुस्तक की प्रस्तुति, मुद्रण, उदाहरण एवं अभ्यास प्रश्न उपयोगी पाए गए। कुछ विद्यार्थियों ने चित्रों एवं गतिविधियों की संख्या बढ़ाने का सुझाव दिया।

4	मूल्यपरकता एवं संस्कृति	पाठ्यपुस्तक में भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं मानवीय आदर्शों का प्रभावी समावेश पाया गया।
5	शिक्षण उपयोगिता	पाठ्यपुस्तक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सहायक, स्वाध्याय हेतु उपयोगी एवं परीक्षा की दृष्टि से लाभदायक पाई गई।

समग्र चर्चा

समग्र रूप से अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक अपने शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में पर्याप्त रूप से सफल है। आधुनिक शिक्षण प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इसमें गतिविधि-आधारित शिक्षण, डिजिटल संसाधनों, चित्रात्मक प्रस्तुति तथा विश्लेषणात्मक अभ्यास प्रश्नों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है। इससे पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के लिए और अधिक प्रभावी, रोचक एवं शिक्षणोपयोगी बन सकेगी।

सारणी - 2

मूल्यांकन के आयाम	भाषा एवं समझ	विषयवस्तु एवं सामग्री	प्रस्तुति एवं चित्रण	मूल्यपरकता एवं संस्कृति	शिक्षण उपयोगिता	कुल
औसत सहमति %	60	65	71	50	76	64
औसत असहमति %	40	35	29	50	24	36

चित्र-1 स्तंभ-आरेख

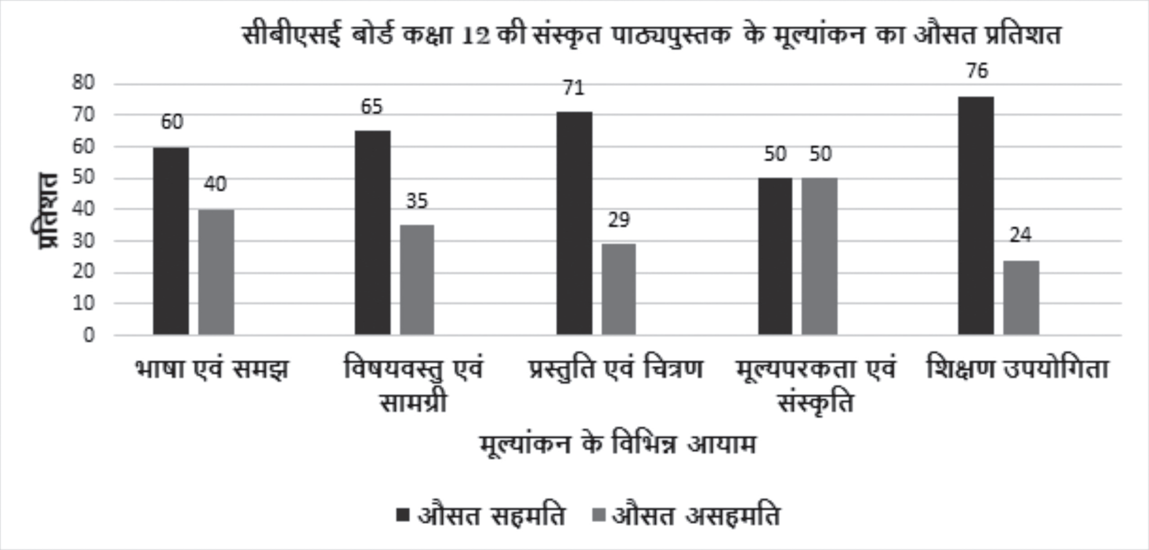

प्रस्तुत स्तंभ-चित्र से स्पष्ट होता है कि शिक्षण उपयोगिता तथा मूल्यपरकता एवं संस्कृति के आयामों को विद्यार्थियों ने सर्वाधिक सकारात्मक रूप से स्वीकार किया। प्रस्तुति एवं चित्रण तथा विषयवस्तु को भी संतोषजनक माना गया। भाषा एवं समझ के आयाम में अपेक्षाकृत कम औसत प्राप्त हुआ जिससे संकेत मिलता है कि कुछ श्लोकों एवं गद्यांशों की व्याख्या को और अधिक सरल बनाया जा सकता है।

चित्र-2 वृत्त-आरेख

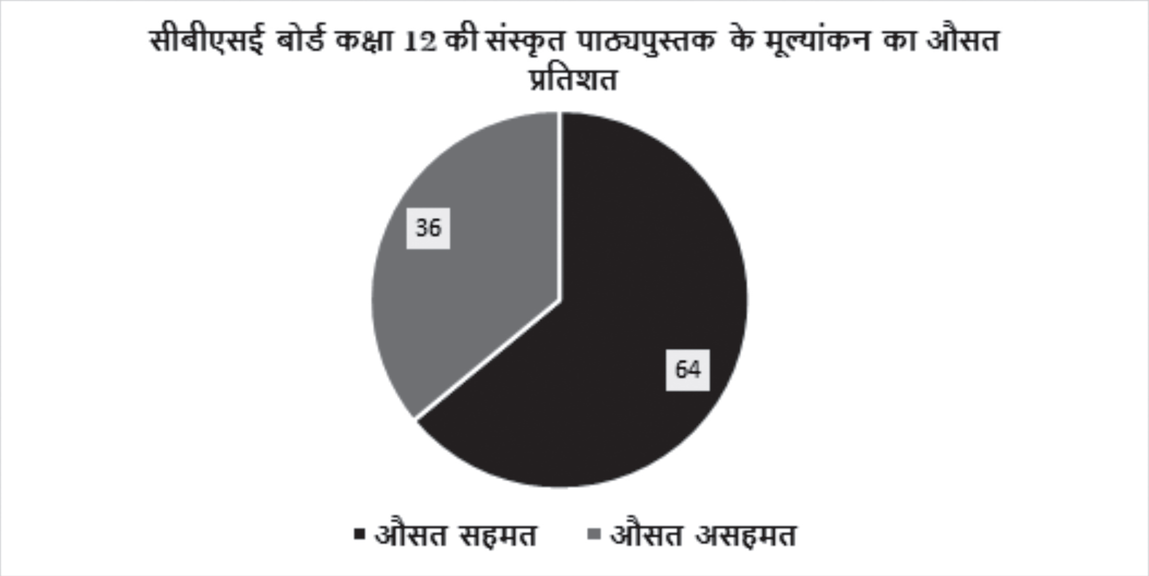

प्रस्तुत वृत्त-चित्र से स्पष्ट होता है कि अधिकांश विद्यार्थियों ने सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन सकारात्मक रूप से किया है। इससे स्पष्ट होता है कि पाठ्यपुस्तक भाषा की सरलता, विषयवस्तु की प्रासंगिकता, प्रस्तुति, मूल्यपरकता एवं शिक्षण उपयोगिता की दृष्टि से प्रभावी है। अतः समग्र रूप से यह पाठ्यपुस्तक शिक्षण-अधिगम की दृष्टि से संतोषजनक एवं उपयोगी सिद्ध होती है।

निष्कर्ष, शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव

प्रमुख निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक समग्र रूप से एक प्रभावी एवं उपयोगी पाठ्यपुस्तक है। इसकी भाषा सामान्यतः सरल एवं बोधगम्य है, यद्यपि कुछ स्थानों पर कठिन शब्दों एवं श्लोकों की सरल व्याख्या की आवश्यकता है। विषयवस्तु ज्ञानवर्धक, पाठ्यक्रमानुकूल तथा विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में सहायक है। प्रस्तुति सुव्यवस्थित है तथा अभ्यास प्रश्न अधिगम को सुदृढ़ बनाने में सहायक हैं। पाठ्यपुस्तक भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं मानवीय आदर्शों का प्रभावी संप्रेषण करती है तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उपयोगी सिद्ध होती है।

शैक्षिक निहितार्थ

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गुणवत्तापूर्ण पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के अधिगम को अधिक प्रभावी बनाती है। अध्ययन के निष्कर्ष पाठ्यपुस्तक निर्माताओं, शिक्षकों तथा शिक्षा-नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यदि पाठ्यपुस्तक में सरल भाषा, गतिविधि-आधारित शिक्षण, विश्लेषणात्मक प्रश्न, डिजिटल संसाधन तथा समकालीन उदाहरणों का समावेश किया जाए तो संस्कृत शिक्षण और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। यह अध्ययन भविष्य में पाठ्यपुस्तक संशोधन एवं निर्माण के लिए भी उपयोगी आधार प्रदान करता है।

सुझाव

1. कठिन शब्दों एवं श्लोकों के सरल अर्थ दिए जाएँ।
2. अधिक गतिविधि-आधारित एवं परियोजना-आधारित अभ्यास सम्मिलित किए जाएँ।
3. उच्च-स्तरीय चिंतन विकसित करने वाले प्रश्नों की संख्या बढ़ाई जाए।
4. आधुनिक जीवन से जुड़े उदाहरणों का समावेश किया जाए।
5. QR Code एवं डिजिटल शिक्षण सामग्री जोड़ी जाए।
6. चित्रों एवं दृश्य सामग्री को अधिक आकर्षक बनाया जाए।
7. स्वाध्याय एवं रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने वाली गतिविधियाँ शामिल की जाएँ।
8. पाठ्यपुस्तक का समय-समय पर विशेषज्ञों द्वारा पुनर्मूल्यांकन किया जाए।

उपसंहार

अध्ययन से स्पष्ट है कि सीबीएसई बोर्ड की कक्षा 12 की संस्कृत पाठ्यपुस्तक अपने शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम है। इसमें भाषा, विषयवस्तु, प्रस्तुति, मूल्यपरकता तथा शिक्षण उपयोगिता के प्रमुख आयाम संतोषजनक पाए गए। यद्यपि बदलती शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुरूप कुछ सुधार अपेक्षित हैं, फिर भी यह पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा के प्रति रुचि, सांस्कृतिक चेतना एवं नैतिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः आवश्यक संशोधनों के साथ यह पाठ्यपुस्तक भविष्य में और अधिक प्रभावी एवं विद्यार्थी-केंद्रित बन सकती है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, जे. सी. (2017). शैक्षिक अनुसंधान। नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।
2. बेस्ट, जे. डब्ल्यू., एवं काह्न, जे. वी. (2019). Research in Education (10th ed-)- Pearson Education-
3. भटनागर, आर. पी. (2018). शिक्षा में अनुसंधान पद्धति। मेरठ : आर. लाल बुक डिपो।
4. बुच, एम. बी. (1992). Fourth Survey of Research in Education- New Delhi: NCERT-
5. कोठारी, सी. आर. (2004). Research Methodology: Methods and Techniques (2nd ed-)- New Delhi: New Age International-
6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF 2005)। नई दिल्ली : NCERT.
7. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2023). भास्वती कक्षा 12 संस्कृत पाठ्यपुस्तक। नई दिल्ली : NCERT.
8. शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020। नई दिल्ली : भारत सरकार.
9. पाण्डेय, के. पी. (2016). शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन। आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
10. शर्मा, आर. ए. (2018). शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी। मेरठ : आर. लाल बुक डिपो।
11. सिंह, एल. सी. (2017). संस्कृत शिक्षण की विधियाँ। नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो।
12. वर्मा, एम. (2019). Educational Research- Jaipur: Book Enclave.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Relationship between Personality Dimensions and Competitive Performance among School Basketball Players of Bikaner Division

Neetu
Research Scholar: -

Dr. Surjeet Singh Kaswan
Research Supervisor: Professor, Faculty of Physical Education
Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

Abstract

Personality is widely recognized as an important psychological determinant of sports performance. Basketball is a dynamic team sport that requires emotional stability, confidence, leadership, social adaptability, and rapid decision-making under competitive situations. Although previous investigations have compared personality characteristics among athletes, limited evidence exists regarding the relationship between personality dimensions and competitive performance among school basketball players in Rajasthan. Therefore, the present investigation examined the association between personality dimensions and competitive performance among basketball players of Bikaner Division. The study adopted a descriptive correlational research design. A total of 200 school basketball players were selected through purposive random sampling. Personality was measured using a standardized personality inventory, while competitive performance was assessed using official competition records and coach ratings. Data were analyzed using descriptive statistics, Pearson Product-Moment Correlation, and multiple regression analysis. The findings indicated that emotional stability, self-confidence, leadership, and social adjustment were positively associated with competitive performance. Personality dimensions explained a substantial proportion of the variance in performance scores. The study concludes that psychological characteristics are significant predictors of success in school basketball and should be incorporated into athlete development programmes.

Keywords: Personality, Competitive Performance, Basketball, School Athletes, Correlation, Sports Psychology

1. Introduction

Modern basketball performance depends on physical fitness, technical ability, tactical intelligence, and psychological preparedness. Psychological characteristics influence concentration, emotional control, confidence, communication, resilience, and leadership, all of which contribute to successful performance during competition.

Among psychological variables, personality has received considerable attention because it explains

consistent behavioural patterns across different competitive situations. Athletes possessing positive personality traits demonstrate greater adaptability, emotional regulation, motivation, and interpersonal cooperation than athletes with less developed psychological characteristics.

Basketball is particularly dependent upon psychological efficiency because players continuously make rapid decisions while interacting with teammates under stressful situations. Consequently, personality dimensions become important determinants of competitive success.

Although many investigations have compared athletes according to educational institutions, comparatively fewer studies have examined how personality dimensions predict competitive performance among adolescent basketball players. The present study therefore investigates this relationship among school basketball players of Bikaner Division.

2. Review of Literature

(Focus only on personality–performance literature, not government vs private comparisons.)

Topics include:

- Personality theories in sport
- Personality and athletic achievement
- Leadership and performance
- Emotional stability and performance
- Confidence and decision-making
- Psychological predictors of basketball success
- Research gap

3. Research Gap

Most Indian investigations compare athletes according to gender, institution, or playing level. Very few studies have examined the predictive relationship between personality dimensions and competitive performance among adolescent basketball players in Rajasthan. This study addresses this gap.

4. Objectives

1. To assess personality dimensions among basketball players.
2. To assess competitive performance.
3. To determine the relationship between personality and competitive performance.
4. To identify personality dimensions predicting success.

5. Hypotheses

H_{01} : There is no significant relationship between personality dimensions and competitive performance.

H_{11} : There is a significant relationship between personality dimensions and competitive performance.

6. Methodology

Research Design

Descriptive Correlational Design

Population

School basketball players of Bikaner Division

Sample

200 players

Sampling

Purposive Random Sampling

Research Instrument

Standardized Personality Inventory

Competitive Performance

Official tournament performance records

7. Statistical Analysis

- Mean
- Standard Deviation
- Pearson Correlation
- Regression Analysis
- Level of Significance = 0.05

8. Sample Results

Variable	Mean	SD	r	p
Personality	35.82	5.94	0.61	<0.05
Performance	41.15	6.18		

9. Discussion

Discuss:

- Confidence improves decision-making.
- Emotional stability reduces competitive anxiety.
- Leadership enhances teamwork.
- Better personality contributes to consistent performance.
- Compare findings with recent international and Indian studies.

10. Practical Applications

- Talent identification.
- Psychological screening.
- Mental skills training.
- Athlete counselling.
- Coach education.
- Performance enhancement programmes.

11. Conclusion

Conclude that personality dimensions significantly contribute to competitive performance among school basketball players and recommend integrating psychological assessment into school sports programmes.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में भू-राजस्व प्रणालियां और कृषक समुदाय : संरचनात्मक परिवर्तन एवं शोषण के आयाम

डॉ. शिव कुमार सिंह
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, बी.एम.डी. कॉलेज दयालपुर, वैशाली
(बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर)।

सारांश

औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश शासन ने कृषि को अपने आर्थिक हितों की पूर्ति का प्रमुख साधन बनाया। स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी जैसी भू-राजस्व प्रणालियों का मुख्य उद्देश्य अधिकतम राजस्व संग्रह करना था। इन व्यवस्थाओं ने पारंपरिक कृषि संरचना को बदल दिया तथा किसानों के भूमि अधिकारों को कमजोर किया। जमींदारों, महाजनों और औपनिवेशिक अधिकारियों की मिली-जुली व्यवस्था ने किसानों के आर्थिक शोषण को संस्थागत रूप दिया। भू-राजस्व की ऊंची दरों, नकदी फसलों की अनिवार्यता, साहूकारी व्यवस्था और भूमि की नीलामी जैसी प्रक्रियाओं के कारण कृषक समुदाय ऋणग्रस्तता, भूमिहीनता और गरीबी का शिकार हुआ। कृषि का व्यवसायीकरण तो हुआ, लेकिन उसका लाभ किसानों को नहीं बल्कि औपनिवेशिक शासन, जमींदारों और व्यापारिक वर्ग को मिला। परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन प्रभावित हुआ, ग्रामीण असमानता बढ़ी तथा अकाल और आर्थिक संकट की स्थितियां उत्पन्न हुई। इन शोषणकारी नीतियों के विरुद्ध नील विद्रोह, संथाल विद्रोह, दक्कन किसान आंदोलन, चंपारण सत्याग्रह और बारडोली सत्याग्रह जैसे किसान आंदोलनों ने जन्म लिया। इन आंदोलनों ने भारतीय किसानों में राजनीतिक चेतना का विकास किया और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान किया। अतः स्पष्ट है कि औपनिवेशिक भू-राजस्व प्रणालियों केवल राजस्व संग्रह की व्यवस्था नहीं थी, बल्कि वे भारतीय कृषि और ग्रामीण समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पुनर्गठन का माध्यम थीं। भूधृति प्रणाली तो भूमि पर व्यक्ति अथवा समूहों के पारंपरिक अथवा कानूनी अधिकारों को और ग्रामीण समुदाय के सामाजिक संबंधों पर इसके परिणामों को नियंत्रित करती है। वर्तमान संदर्भ में, भूधृति उस तरीके को इंगित करती है जिसमें कोई व्यक्ति राज्य से भूमि ग्रहण करता है और इससे उनका आपसी संबंध प्रदर्शित होता है। भारत में एक औपनिवेशिक विरासत के रूप में चली आ रही भूधृति प्रणाली की जड़ें बहुसंख्य ग्रामीण समुदाय और भूमिहीनों के शोषण में थीं। इसके कारण, औपनिवेशिक कृषिगत ढांचे को कृषि विकास/ग्राम विकास और अंततः राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक समझा जाता था। स्वाधीनता के बाद यह आवश्यक समझा गया कि कृषि प्रधान ग्रामीण समाज के प्रत्येक तबके के विकास के लिए अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से भूधृति प्रणाली को बदलने हेतु कुछ उपाय शुरू किए जाएं। भूधृति प्रणालियों में बदलाव के इन उपायों के माध्यम से औपनिवेशिक राज में प्रचलित कृषिगत ढांचे में परिवर्तन के तत्वों की शुरुआत हुई है।

मुख्य शब्द : ब्रिटिश शासन, स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी, महालवाड़ी, चंपारण सत्याग्रह।

परिचर्चा

ब्रिटिश अर्थात् अंग्रेजों के यहां आने से पूर्व भारतीय ग्रामीण समाज की मूल विशेषता कृषि-आधारित, आत्मनिर्भर ग्राम-समुदाय था। कृषि और उससे जुड़े कार्यकलाप आदिम किस्म के औजारों और दस्तकारी से अंजाम दिए जाते थे। एक आत्मनिर्भर मूल आर्थिक इकाई के रूप में गांव का अस्तित्व भारत में शताब्दियों से बना हुआ था। भारत में अंग्रेजी राज के आगमन तक यह छोटे-मोटे संशोधनों के साथ बना रहा था। भारतीय ग्राम समुदायों ने अनेक राजसत्ताओं को उभरते और ढहते देखा, किंतु उन्होंने अपने आत्मनिर्भर चरित्र को नहीं छोड़ा। भारत में गांव "लघु गणराज्य" की तरह थे, और उनके पास लगभग हर वह वस्तु थी जिसकी उन्हें जरूरत थी, और वे किन्हीं भी "विदेशी" संबंधों से लगभग स्वतंत्र थे। भारत पर अंग्रेजों की जीत से पहले भूमि ग्राम समुदाय की होती थी और उसे राजा की संपत्ति कभी नहीं माना गया- चाहे राजा उदार हो या तानाशाह, अथवा हिंदू हो, मुसलमान या बौद्ध। और न ही उसे व्यक्तिगत कृषक की संपत्ति माना गया। संक्षेप में, अंग्रेजों के आने से पहले के भारत में भूमि के निजी स्वामित्व का अस्तित्व किसी भी रूप में नहीं था। भूमि ग्राम-समुदाय की होती थी। अंग्रेजों की जीत के साथ ही भूमि में निजी संपत्ति की अवधारणा का प्रचलन शुरू हुआ, और गांव की भूमि पर ग्राम समुदाय के पारंपरिक अधिकार का हनन हो गया। एक तरह से, अंग्रेजों की जीत से एक कृषि क्रांति आई। भूमि में निजी स्वामित्व शुरू होने से ग्राम समुदाय मुख्यतया किसानी स्वामित्व और बड़े पैमाने के जमींदारी स्वामित्व में बंट गया। इस भौतिक रूपांतरण के फलस्वरुप, भारत के कृषक समाज ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर गहरे बदलाव देखे।

नई भूमि व्यवस्था में, गांव अब कृषि का स्वामी अथवा पर्यवेक्षक नहीं रह गया। भूमि संबंधी विवादों से उनका लेना-देना नहीं रह गया, और वे अंग्रेजों द्वारा स्थापित अदालतों के दायरे में आ गए। इससे पंचायतों की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा और उनके अधिकार छिन गए। नई भू-राजस्व व्यवस्था ने व्यक्तिगत भूधारक खड़े कर दिए और व्यक्तिगत भूमि आकलन तथा राजस्व भुगतान की व्यवस्था लागू कर दी। भू-राजस्व और उसके भुगतान को तय करने की एक नई पद्धति शुरू की गई, और नई भूमि व्यवस्था और राजस्व व्यवस्था ने किसान और ग्राम समुदाय को पारंपरिक आपसी संबंधों को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके परिणामस्वरूप, ग्राम समुदाय की आत्मनिर्भर प्रकृति को गहरा झटका लगा। गांव की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का मूल स्तंभ रहे ग्रामीण कृषि और उद्योग का सह- अस्तित्व बाधित हो गया। केंद्रीकृत राज्य ने ग्राम समुदाय के कार्य अपने हाथों में ले लिए। गांव धीरे-धीरे किंतु नियमितता से स्व-शासी समुदाय से केंद्रीकृत राज्य की एक प्रशासनिक इकाई में रूपांतरित हो गया। इसका आर्थिक पक्ष अधिकांशतः राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा था। साझा आर्थिक हितों और उसके कारण बने सहकारी संबंधों पर आधारित सामूहिक ग्राम जीवन इस नई व्यवस्था में बना नहीं रह सका। अंततः उसकी जगह एक नए गांव ने ले ली जहां अस्तित्व स्वाधीन व्यक्तियों के बीच प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित था।

भूधृति प्रणालियां

भूधृति से अभिप्राय व्यक्ति द्वारा सरकार से भूमि ग्रहण करने के ढंग से, और भू-धारक तथा राज्य के आपसी संबंध से है। भूमि का पूर्ण स्वामित्व सरकार के पास होता है। सरकार ही व्यक्तियों अथवा समुदायों को स्वामित्व के अधिकार देती है। इस तरह, इस अर्थ में भूमि जिसके पास होती है वह भूमि का स्वामी होता है और उसके लिए उसे भू-राजस्व देना होता है। यह स्पष्ट है कि मुगलों ने प्राचीन राजस्व व्यवस्था में कोई बुनियादी बदलाव नहीं किया हालांकि उन्होंने हिंदू प्रशासन के पारंपरिक और अलिखित प्रयोगों के स्थान पर एक सुसंगत व्यवस्था कायम की। किंतु, मुगल साम्राज्य की अवनति के दौर में, राजस्व अधिकारियों पर नियंत्रण कमजोर हो गया और साम्राज्य में आने वाले धन का प्रवाह कम होने लगा। इसलिए फर्रुखसियर के शासनकाल (1713-19) में बंगाल में "राजस्व कृषि" व्यवस्था लागू की गई, जिसके तहत "राजस्व कृषक" हुकूमत को पूरी उगाही का 90 प्रतिशत देता था और शेष राशि उगाही शुल्क के तौर पर अपने पास रखता था। किंतु, बाद के दौर, में किसी परगने अथवा एक जिले के भू-राजस्व की उगाही का अधिकार नीलामी में सबसे ऊंची बोली लगाने वाले

को दिया जाने लगा। इस प्रथा से कृषकों के शोषण की शुरुआत हुई। “राजस्व कृषक” अधिक हावी हो गए। बंगाल में मुगलों के शासनकाल में शुरू होने वाली राजस्व कृषि व्यवस्था का विस्तार शीघ्र ही देश के अन्य हिस्सों में हो गया। इस युग में करों की समुचित उगाही को सुनिश्चित करने के लिए जमींदारी व्यवस्था शुरू की गई। जमींदारों को नियुक्ति मुगलों ने किसानों से कर वसूलने के लिए की थी।

जब मुगलों ने बंगाल को जीत लिया, तो “जमींदार” एक सामान्य उपाधि हो गई जिसके दायरे में विभिन्न किस्म की जोतों और अधिकारों वाले लोग आते थे। इनमें स्वायत्त अथवा अर्ध-स्वाधीन सरदारों से लेकर किसान-मालिक तक होते थे। मुगल काल में, सभी श्रेणियां के जमींदारों को कुछ अनुशासनिक, न्यायिक और नागरिक दायित्व निभाने होते थे। वास्तव में, इस काल में जमींदार राजस्व की उगाही करने वाले दलाल न होकर सरकारी कर्मचारी अधिक होते थे। हालांकि जमींदारी पुश्तैनी होती थी, फिर भी धारकों को उनकी रियासतों का मालिक नहीं माना जाता था। प्रादेशिक जमींदारों के पास न्यायिक शक्ति होती थी। राजकीय हुकूमत के घटक के रूप में न्यायाधीश-दंडाधिकारी का पद उन्हें ऊंचा दर्जा देता था, जिससे वे अपने इलाकों के आका बन जाते थे। वे नियमित अदालतें लगाते थे, जिन्हें जमींदारी अदालत कहा जाता था। अदालतों में उन्हें न केवल शक्ति और हैसियत, बल्कि जुर्माने, उपहार और भत्तों के रूप में उन्हें कुछ आमदनी भी होती थी। छोटे जमींदार दीवानी और फौजदारी न्याय देने में भी कुछ भागीदारी करते थे। चौधरी अधिकतर जमींदार होते थे, जिनके पास कर्ज, चोरी और छोटे-मोटे झगड़ों की शिकायतों को निपटाने और थोड़ा-बहुत जुर्माना लगाने का अधिकार होता था।

अंग्रेजी राज के दौरान तीन मुख्य प्रकार की भूधृति प्रणालियां थीं जो स्वाधीनता के बाद भी कई वर्षो तक बनी रहीं जमींदारी, महालवाड़ी और रैयतवाड़ी।

i) जमींदारी : यह व्यवस्था लॉर्ड कॉर्नवालिस ने 1793 में बंगाल में शुरू की थी, जिसे “बंगाल बंदोबस्त” अथवा “स्थायी बंदोबस्त” के नाम से जाना गया। स्थायी बंदोबस्त के परिणाम को जमींदारी व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। यह व्यवस्था पूर्वी भारत में व्यापक रूप से में लागू हुई। इस व्यवस्था में, एक गांव अथवा कुछ गांवों की भूमि एक व्यक्ति अथवा कुछ संयुक्त स्वामियों के अधिकार में होती थी जो सरकार को भू-राजस्व के भुगतान के लिए जिम्मेदार होते थे। आमतौर पर, जमींदारों और भूमि के वास्तविक जोतने वालों के बीच कई बिचौलिए होते थे। इस व्यवस्था को कई रूपों में अपनाया गया था, जैसे- जमींदारी, जागीरदारी, इनामदारी आदि। कई बार तो राजस्व संग्राहकों को दर्जा बढ़ाकर उन्हें भू-स्वामी बना दिया जाता था। यह व्यवस्था के अनुसार, भूधृति एक प्रकार का सामाजिक-आर्थिक अधिकार अथवा नियंत्रण होता था; यही नहीं, काश्तकार और उपकाश्तकार सभी को एक ही तरह के अधिकार और विशेषाधिकार मिले हुए थे, और यह सभी एक ही तरह के बंदोबस्त अथवा समझौते पर आधारित होते थे। इस व्यवस्था में, भूमि जोतने वालों का शोषण बहुत ऊंचे लगान लगाकर किया जाता था। कहते हैं कि जमींदार अंग्रेजों द्वारा जमींदारी व्यवस्था लागू करने के पीछे दो उद्देश्य थे। पहला, इससे कुछ ही व्यक्तियों, अर्थात् जमींदारों, से नियमित रूप में राजस्व उगाही में मदद मिलती थी। दूसरा, इससे लोगों का एक ऐसा वर्ग बन गया जो अंग्रेजों के प्रति वफादार बना रहा। जमींदारी व्यवस्था किसानों से कर वसूली का एक तरीका था। जमींदारों को आका (लॉर्ड) समझा जाता था, जो अपनी भूमि के सारे करों की वसूली कर उन्हें अंग्रेज अधिकारियों को सौंप देता था। इस व्यवस्था में जमींदार के लिए करों का एक हिस्सा स्वयं रख लेने का प्रावधान था।

ii) महालवाड़ी : इस बंदोबस्त में ग्राम-समुदाय और सरकारी अधिकारियों के बीच सीधा अनुबंध होता था। ग्राम समुदाय का मतलब आवश्यक रूप में पूरे गांव के लोग नहीं होता था। यह सयानों, ऊंची जातियों के प्रतिष्ठित लोगों का समूह होता था। वे संयुक्त रूप में गांव के मामलों को देखते थे और उच्च अधिकारियों द्वारा समर्थित श्रेष्ठजन की मांगों को पूरा करते थे। इस व्यवस्था में, गांव की भूमि पर ग्राम-समुदाय का अधिकार होता था और उसके सदस्य संयुक्त रूप में अथवा समूह में भू-राजस्व के भुगतान के लिए जिम्मेदार होते थे। भू-राजस्व पूरे गांव के लिए नियत किया जाता था और गांव का प्रधान (लंबरदार) उसकी उगाही करता था। इस प्रकार की व्यवस्था के लिए कई नाम प्रयोग में लाए जाते थे- संयुक्त लगान, संयुक्त पट्टा, भाईचारा पट्टी (महाल) जोत, और ग्रामवाड़ी आदि। इस व्यवस्था को श्रेष्ठतम रूप में ग्राम बंदोबस्त अथवा संयुक्त

ग्राम बंदोबस्त समझा जाता था। यह व्यवस्था उत्तरी और मध्य भारत में प्रचलित थी।

iii) रैयतवाड़ी : सबसे पहले सर थॉमस मुनरो ने इस व्यवस्था को मद्रास राज्य में लागू किया था। इसका अभिप्राय प्रत्येक "रैयत" अथवा कृषक को एक व्यक्ति समझना था। इस बंदोबस्त में प्रत्येक पंजीकृत धारक को उसका मालिक माना जाता था जो भूमि को बेच सकता अथवा हस्तांतरित कर सकता था। जब तक वह राजस्व का भुगतान करें, वह स्थाई भूधृति के बारे में आश्वस्त रह सकता था। भू-धारक को अपनी भूमि उप-पट्टे पर देने की छूट थी। मद्रास और बंबई महाप्रांत क्षेत्रों को आमतौर पर रैयतवाड़ी क्षेत्र की किस श्रेणी में रखा जाता है।

कृषक समाज पर भूधृति प्रणालियों के प्रभाव

अंग्रेजी राज में जो प्रमुख बदलाव किए गए, वे थे नई भू-राजस्व व्यवस्थाएं, राजस्व की ऊंची दरें, नई प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्था। इनसे न केवल गांवों के प्रबंधन को नुकसान हुआ, बल्कि भारत की सामाजिक-आर्थिक और विधिक व्यवस्थाओं में भी बड़े बदलाव हुए। भूमि प्रबंधन और न्यायिक क्षेत्र में ग्राम पंचायत की भूमिका समाप्त हो गई। इसके परिणामस्वरूप, भारत के गांवों में विद्यान पुरानी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएं नष्ट हो गई। लघु ग्राम उद्योगों और दस्तकारी के नष्ट हो जाने के कारण भूमि का अत्यधिक महत्व हो गया। भूमि का स्वामित्व और किसान दोनों ही गतिशील हो गए, जिससे गांवों में दूरवासी जमींदारों और महाजनों का जन्म हुआ। जमींदारी और रैयतवाड़ी, दोनों ही, व्यवस्थाओं में भू-राजस्व की दरें बहुत ऊंची थीं और जब जमींदार अथवा रैयतवाड़ी समय से राजस्व देने की स्थिति में नहीं होते थे, तो अंग्रेज उनकी जमीन छीन लेते थे और व्यापारियों को बेच देते थे। ये व्यापारी किसान नहीं होते थे और वे खेती के बारे में चिंतित न होकर उससे अधिक से अधिक राजस्व वसूलने के बारे में चिंतित रहते थे। महाजन और जमींदार ग्राम्य जीवन का अभिन्न अंग बन गए थे क्योंकि गांव वालों को अपने अस्तित्व के लिए हमेशा ही उनकी जरूरत होती थी। ऐसी स्थिति में अधिकांश किसानों ने खेती छोड़ दी और भूमि ऊसर/अनुत्पादक हो गई। अतः बंटाईदारों और भूमिहीन किसानों की संख्या बहुत बढ़ गई।

अंग्रेजों की जमींदारी, रैयतवाड़ी और महालवारी वाली भूधृति प्रणालियों ने भारतीय गांवों की आत्मनिर्भरता को नष्ट कर दिया और ग्रामीण सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला दिए जो अक्सर पुरानी प्रथाओं के लिए हानिकारक साबित हुए। स्थाई बंदोबस्त से अंग्रेजों को अंग्रेजी साम्राज्यवाद को अधिक सशक्त और परिपक्व बनाने में मदद मिली। इसके लिए उन्होंने अपने विरोधों को दबाने को माध्यम बनाया। इससे अंग्रेजी तंत्र को और भी स्थायित्व मिल गया, क्योंकि गरीब गांव वाले और भी गरीब बना दिए गए। इन नई व्यवस्थाओं ने युगों पुरानी भारतीय कृषि व्यवस्था को तोड़कर शोषण के रास्ते खोल दिए थे। भू-राजस्व की निर्भरता समता की पुरानी परंपरा प न होकर भूमि की भूशास्त्रीय स्थिति पर हो गई। भू-राजस्व किसानों की कुल भूमि पर तय न होकर भूमि के अंश पर तय किया जाता था। भू-राजस्व किसी विधिवत तरीके से तय न होकर मात्र अनुमान पर आधारित होता था। अमेरिकी गृह युद्ध के बाद भू-राजस्व 66 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया। किसानों को अदालत में गुहार का कोई अधिकार नहीं था।

इस व्यवस्था में भूमि की खरीद-फरोख्त के कारण महाजन बनिया वर्ग उभर आया। ये महाजन भूस्वामी थे और बिना किसी जबावदेही के भूमि पर इनका नियंत्रण था।

खेतिहर मजदूर

लोगों का एक वृहत्तर वर्ग था जो अंग्रेजों की आर्थिक नीति के चलते बना था। यह वर्ग गांव के सामाजिक-आर्थिक ढांचे की सबसे निचले पायदान पर स्थित था। पहले ये किसान हुआ करते थे, किंतु अंग्रेजों की कृषिक तथा आर्थिक नीतियों और भू-राजस्व व्यवस्था के कारण उनकी भूमि छिनती गई और वे खेतिहर मजदूरों की श्रेणी में आ गए। इन छोटे किसानों के पास उनकी भूमि का बहुत थोड़ा सा हिस्सा ही बचा। कृषि पर निर्भर जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा इन खेतिहर

मजदूरों का था। ये लोग कर्ज में डूबे थे और महाजनों के चंगुल में थे। यह स्थिति अक्सर "बंधुआ" मजदूरी की ओर ले जाती थी। उन्हें इस सहमति पर उधार अथवा कर्ज दिया जाता था कि जमींदार को जब भी जरूरत होगी वे उसकी जमीन पर आकर मजदूरी करेंगे। इस प्रथा के कारण वे अपनी मजदूरी का कोई मोल-भाव नहीं कर पाते थे। उन्हें जीवन भर बंधुआ मजदूर बनकर रहना होता था।

किसानों की गरीबी

कम उत्पादन का मुख्य कारण यह था कि किसानों के पास कृषि में निवेश के लिए आवश्यक धन नहीं होता था। अंग्रेजी राज के विस्तार और धन की अधिकाधिक आवश्यकता के फलस्वरुप भू-राजस्व में बढ़ोतरी हो गई। इससे कृषि उत्पादन महंगा हो गया और अंततः इसका परिणाम खेतिहर पिछड़ेपन के रूप में सामने आया। ऊंचे राजस्व, महंगे कृषि उत्पादन के कारण किसान भारी कर्ज में डूब गए। राजस्व की ऊंची दर और महाजनों के बेलगाम व्यवहार के कारण किसान धीरे-धीरे कर्ज के फंदे में फंस गए।

निष्कर्ष

अंग्रेजी राज के आगमन से पूर्व भारतीय गांव आत्मनिर्भर थे। और, आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे बाहरी दुनिया पर आश्रित नहीं थे। गांव की भूमि का मालिक ग्राम समुदाय होता था। निजी संपत्ति की अवधारणा ग्राम समुदाय में नहीं थी। सामाजिक और आर्थिक जीवन कमोबेश हिंदू कानूनों से नियंत्रित होता था। जहां तक मुसलमान शासको का प्रश्न है, तो वे गांव के सामाजिक-आर्थिक जीवन में अधिक हस्तक्षेप नहीं करते थे। भूमि में निजी संपत्ति की अवधारणा और कृषि के व्यवसायीकरण की शुरुआत अंग्रेजों ने की। औपनिवेशिक राज ने ही ग्राम समुदाय के पारंपरिक सामाजिक-आर्थिक ढांचे को तोड़ा और अपने फायदे के कानून लागू किए। जहां तक खेतिहर ढांचे और भूधृति प्रणाली का सवाल है, तो भारतीय समाज पर अंग्रेजी राज का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जो स्वाधीनता के बाद भी दिखाई दिया। स्वाधीनता के बाद, भारत सरकार औपनिवेशिक राज के दौरान लागू की गई भूधृति प्रणालियों से उपजी बुराइयों को समाप्त करने हेतु उपाय करने को प्रतिबद्ध थी।

संदर्भ ग्रंथ

1. देसाई, ए.आर. (1948), सोशल बैक ग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर पब्लिकेशन, बंबई।
2. फ्राइकनबर्ग, आर.ई., सं. (1977), लैंड टेन्यर एंड पीजेंट इन साउथ एशिया, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. फ्राइकनबर्ग, आर.ई., (1979), लैंड कंट्रोल एंड सोशल स्ट्रक्चर इन इंडियन हिस्ट्री, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. ग्रोवर, बी.एल., (1985), इंडियन हिस्ट्री, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. रोमेश, दत्त (1990), दि इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड 1 और खंड 2, लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली।
6. रॉय, सत्य (1990), भारत में उपनिवेशवाद, मनोहर पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
7. शर्मा, आर.एस. (1971), लैंड रिवेन्यू इन इंडिया : हिस्टोरिकल स्टडीज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
8. सिंह, आर.पी. (1987), सोशियोलॉजी ऑफ डेवलपमेंट इन इंडिया, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

साहित्यिक दृष्टि में इतिहास से परिचय

हर्ष वार्ष्णेय
शोधार्थी, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क सूत्र : 8285201182
ईमेल : harshvarshneydu@gmail.com

सारांश

इतिहास और साहित्य का संबंध अत्यंत प्राचीन, बहुआयामी तथा परस्पर पूरक रहा है। जहाँ इतिहास अतीत की घटनाओं का तथ्यपरक, साक्ष्य-आधारित और आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, वहीं साहित्य उन घटनाओं के मानवीय, सांस्कृतिक और भावनात्मक पक्षों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। भारतीय संदर्भ में यह संबंध विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि भारत की ऐतिहासिक परंपरा केवल अभिलेखों, शिलालेखों और राजकीय दस्तावेज़ों तक सीमित नहीं रही, बल्कि महाकाव्यों, पुराणों, लोककथाओं, संत साहित्य, यात्रावृत्तांतों तथा आधुनिक उपन्यासों और आत्मकथाओं के माध्यम से भी अतीत का संरक्षण और पुनर्निर्माण हुआ है। इस प्रकार साहित्य न केवल इतिहास का स्रोत बनता है, बल्कि ऐतिहासिक चेतना के निर्माण और सामाजिक स्मृति के संरक्षण का भी महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

यह अध्ययन भारतीय परिप्रेक्ष्य में इतिहास और साहित्य के अंतर्संबंध का विश्लेषण करता है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि साहित्य किस प्रकार ऐतिहासिक यथार्थ, सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक पहचान को अभिव्यक्त करता है। अध्ययन में प्राचीन भारतीय ग्रंथों से लेकर औपनिवेशिक काल तथा स्वतंत्रता आंदोलन के साहित्य और विभाजन (1947) से संबंधित रचनाओं तक का संदर्भ लेते हुए यह दिखाया गया है कि साहित्य इतिहास के औपचारिक आख्यानों के समानांतर उन अनुभवों को भी सामने लाता है जो प्रायः आधिकारिक इतिहास-लेखन में उपेक्षित रह जाते हैं। विशेष रूप से विभाजन साहित्य, दलित साहित्य, स्त्री लेखन तथा क्षेत्रीय साहित्य सामाजिक इतिहास के उन आयामों को उद्घाटित करते हैं जिन्हें केवल अभिलेखीय स्रोतों के आधार पर समझना संभव नहीं है।

यह शोध इतिहास और साहित्य के मध्य विद्यमान संवाद को इतिहासलेखन की आधुनिक प्रवृत्तियों—विशेषकर सामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास तथा मौखिक इतिहास के आलोक में समझने का प्रयास करता है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि इतिहास और साहित्य को परस्पर विरोधी विधाओं के रूप में नहीं, बल्कि अतीत की बहुआयामी समझ विकसित करने वाले पूरक ज्ञान-विधाओं के रूप में देखा जाना चाहिए। भारतीय संदर्भ में यह अंतःविषयक दृष्टिकोण न केवल ऐतिहासिक अनुसंधान को समृद्ध करता है, बल्कि समाज की सांस्कृतिक स्मृति, विविध अनुभवों और मानवीय संवेदनाओं को अधिक व्यापक एवं समावेशी रूप में समझने का अवसर भी प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : इतिहास, साहित्य, इतिहासलेखन, भारतीय इतिहास, सांस्कृतिक स्मृति, मौखिक इतिहास।

इतिहास एक ऐसा विषय है जिसका हमारे साहित्य के साथ गहरा और शायद गंभीर संबंध है। प्राचीन और मध्यकालीन

इतिहास के विषय में तो यह बात विशेष तौर पर लागू होती है। अतः इस लेख में हम इतिहास तथा साहित्य के संबंधों से संबंधित कुछ बुनियादी बातों पर गौर करेंगे।

आधुनिक इतिहासकारों चाहे वह मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी, साम्राज्यवादी, सबाल्टर्न आदि कोई भी हो, ने बड़े पैमाने पर इतिहासलेखन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री के रूप में साहित्यिक स्रोतो को अपनी मान्यता दी है। इतिहासकार लालबहादुर वर्मा के अनुसार "साहित्य का यदि सतर्कता और बुद्धिमत्तापूर्वक अध्ययन किया जाए तो ऐसे निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है जो अन्य स्रोतों की सहायता से संभव नहीं है।" हालाँकि साहित्यिक आधारों पर इतिहासलेखन, तात्कालिक समय में प्रचलित व्यवस्थों, मान्यताओं व परंपराओं आदि की ओर हमारा ध्यान तो आकर्षित करता है लेकिन एक इतिहासकार को साहित्यिक स्रोतों के उपयोग के प्रति कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिए। इतिहासकार का यह कर्तव्य है कि वह जब भी किसी साहित्यिक ग्रंथ का उपयोग इतिहासलेखन के लिए करे तो उसका रवैया आलोचनात्मक होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर हर समाज का शासक वर्ग वहाँ का इतिहास अपने हितों के अनुरूप लिखवाने का प्रयास करता है। यह इतिहास का सबसे हानिकारक दुरुपयोग है क्योंकि लोगों की अपनी पहचान, सोच उनकी निष्ठाओं पर काफी हद तक उनके इतिहास-बोध का असर पड़ता है। शासक वर्ग इसी इतिहास-बोध को अपने पूरे संसाधनों के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों से प्रभावित करके लोकचेतना को कुंठित करने की चेष्टा करता है। इसके अलावा हर समाज में कुछ किंवदंतियाँ और लोक-कथाओं के आधार पर लोगों का अपना एक स्वतंत्र इतिहास-बोध बनाने का प्रयास भी जारी रहता है। इन लोक-कथाओं में जनता की प्रत्यक्ष और परोक्ष धारणाएं, इच्छाएं आदि प्रतिबिंबित होती हैं। परंतु एक इतिहासकार होने के नाते, यहाँ हमें यह ध्यान रखना है कि इतिहास न केवल इनसे भिन्न है बल्कि इसका एक मुख्य उद्देश्य लोकमानस तक पहुँचकर उसे अधिक तथ्यात्मक बनाना तथा अतीतग्रस्त रहने के बाजय अधिक आलोचनात्मक एवं भविष्योन्मुख बनाना भी है। अगर इतिहास जनता के स्तर तक पहुँचकर ऐसा नहीं करेगा तो जैसा कि श्री लालबहादुर वर्मा ने अपने उद्धरणीय शब्दों में कहा है-"सदियों तक जैसे निर्लज्जतापूर्वक एकलव्य का अंगूठा माँगा गया और मुर्खतापूर्वक दिया गया, वैसे ही माँगा और दिया जाता रहेगा। इतिहास का अंततः सबसे बड़ा लाभ यही हो सकता है कि वह समाज के मूल अंतरविरोधों को उजागर कर संघर्ष की दिशा दिखाए। परंतु ऐसा तभी संभव होगा जब न केवल इतिहास जनता को केंद्र मानकर लिखा जाए बल्कि जनता के लिए भी लिखा जाए। वरना आज की ही तरह विद्वान इतिहासकारों की पुस्तकें पुस्तकालयों में धूल चाटती रहेंगी और आम-आदमी चटपटी पत्र-पत्रिकाओं से मिलने वाली सनसनीखेज महलों और राजाओं की कहानियों को इतिहास मानता रहेगा।"

सोलहवीं शताब्दी के इतिहासकार बाराक्लो ने इतिहास को परिभाषित करते हुए कहा था कि "इतिहास सीमित स्रोतों के आधार पर अतीत की महत्वपूर्ण घटनाओं को समझने के प्रयास का नाम है।" परंतु यह भी ध्यान रखने योग्य है कि जब कोई व्यक्ति अपने आसपास की चीजों को साहित्य में पिरोने का प्रयास करता है तो चाहे वह इतिहासकार हो या प्राथमिक दस्तावेज लिखने वाला, वह अनिवार्यतः अपनी समझ, उद्देश्यों और रुचियों के अनुसार ही अनगिनत अनुभवों में से कुछ को ही लिपिबद्ध कर पाता है। परिणामस्वरूप जो इतिहास हमारे सामने आता है वह अतीत का आंशिक ही नहीं अपितु पूर्वाग्राही चित्रण भी होता है। वास्तव में साहित्य कहाँ तक अतीत के तथ्यों को हूबहू पेश करता है या कर सकता है, इस प्रश्न को लेकर इतिहासकरों और चिंतकों के बीच काफी विवाद रहा है। जर्मनी के इतिहासकार लियोपोल्ड वॉर्न राँके ने उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहासलेखन को नया स्वरूप देते हुए कहा था कि इतिहासकारों से यह उपेक्षित है कि "जो (अतीत में) जैसा था उसे वैसा ही प्रदर्शित कर दें।" यह इतिहास का अत्यंत ही वास्तुनिष्ठ नजरिया था जिसने अपने समय में अत्याधिक उपदेशात्मक लेखन के विरुद्ध आवाज भी उठाई। परंतु समय के साथ-साथ जैसा की विश्वविद्यालयों की शोध परंपराओं में अक्सर हुआ है, राँके का यह नीतिवाक्य अपने आप में एक धर्म-परायण सूत्र बन गया है। इसके कारण दशकों तक यूरोप के ज्यादातर इतिहासकार न केवल प्रमाणिक और निर्विवाद तथ्यों की खोज में शुष्क और निरर्थक इतिहास लिखते रहे बल्कि अपने कार्य में सामान्यीकरण तथा आत्मनिष्ठता की अनिवार्य भूमिका को भी विस्मृत कर बैठे।

इसी प्रवृत्ति के विरोध में बीसवीं शताब्दी के शुरू में बने दित्तो क्रोचे जैसे इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने की कोशिश

की कि इतिहासकार का मुख्य कार्य अलग-अलग तथ्यों को इकट्ठा करना नहीं बल्कि उनकी व्याख्या करना, उनका मूल्यांकन करना भी है। इसलिए “सारा इतिहास समसामयिक लेखन ही है।” इससे उनका तात्पर्य यह था कि इतिहास हमेशा वर्तमान के नजरिए से समझा जा सकता है। इसी विचारधारा की प्रतिध्वनि आर.जी. कॉलिंगवुड के प्रसिद्ध संग्रह “दि आइडिया ऑफ हिस्ट्री” में भी देखी जा सकती है। उनके अनुसार हर युग को अपना इतिहास स्वयं ही लिखना होगा क्योंकि “सारा इतिहास वास्तव में विचारों का इतिहास है।” अर्थात् इन विचारों के माध्यम से ही हम अतीत की कल्पना कर सकते हैं। क्रोचे तथा कॉलिंगवुड के ये तर्क उन्नीसवीं शताब्दी के तथ्यपूजन एवं वास्तुनिष्ठता के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया के परिणाम के रूप में देखे जा सकते हैं। उनके इस नजरिए से चाहे सब सहमत न हों परंतु इत बात को नकारा नहीं जा सकता कि इतिहास के तथ्य कवि कोरे या स्वतंत्र नहीं होते। उन्हें साहित्य, पुरातत्व, प्रशासनिक दस्तावेजों आदि में खोजना पड़ता है। इसी सिद्धांत का बेहतर उदाहरण हमें ई.एच.कार की पुस्तक “व्हॉट इज हिस्ट्री” में मिलता है जिसमें उन्होंने कहा है कि इतिहास वास्तव में अतीत के तथ्यों और इतिहासकार की अपनी सोच के परस्पर संगम का परिणाम है-“आज और बीते हुए कल के बीच के निरंतर संवाद का नाम ही इतिहास है।” इतिहास की रचना में इतिहासकार निरंतर अपनी व्याख्या को तथ्यों के आधार पर बदलता है और तथ्य भी उसकी अपनी पहचान से बनते हैं।

इस प्रकार इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि साहित्यिक स्रोतों के माध्यम से हमें उस काल विशेष की जिस काल में वह साहित्य लिखा गया, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, धार्मिक, मानसिक आदि प्रवृत्तियों को जानने-समझने में मदद मिलती है। कुच ऐतिहासिक एवं साहित्यिक कृतियों के उदाहरहण इस प्रकार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, रामायण, महाभारत, मेघदूतम्, रघुवंशम्, कुमारपालचरित, हर्षचरित, तहकीकात-ए-हिन्द, रेहला, तारीख-ए-फिरोजशाही, बाबरनामा, हुमायूँनामा, आइन-ए-अकबरी, खजाइन-उल-फुतूह, किरान-उस-सादेन, अर्द्धकथानक आदि यह साहित्यरूपी इतिहास हमें केवल पांडुलिपियों या ग्रंथों के जरिए ही नहीं मिलता बल्कि तमाम अभिलेखों, स्तंभलेखों के माध्यम से भी हमें इसकी प्राप्ति होती है। जैसे- खारवेल का हाथीगुफा अभिलेख, हरिषेण द्वारा समुद्रगुप्त की प्रशंसा में लिखा गया प्रयाग स्तंभलेख आदि।

इसी के साथ बहुत-सा ऐसा साहित्य है जो कि ऐतिहासिक उद्धरणों को आधार बनाकर रचा गया है। यह ऐतिहासिक साहित्य अतीत की अंतहीन जानकारी के बेतरतीब बोझ से लोगों को बचाता है व साहित्यिक रूप में इतिहास को लोगों तक पहुँचाकर उसे रोचकता भी प्रदान करता है। ऐतिहासिक विषयों पर लिखे गए साहित्य, किताबों, फिल्मों और धारावाहिकों को ध्यान में रखा जाए तो शायद यह भी कहा जा सकता है कि इतिहास से अधिक लोकप्रिय विषय कोई है ही नहीं। इस प्रकार इतिहास कई मायनों में साहित्य जैसे विषयों का सर्वोत्तम सहभागी भी है और पूरक भी।

ग्रंथ सूची

- कॉलिंगवुड, आर. जी. 1946. द आइडिया ऑफ हिस्ट्री. ऑक्सफ़ोर्ड : ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- कार, ई. एच. (1964) 1983. व्हाट इज़ हिस्ट्री? लंदन : मैकमिलन।
- मजूमदार, आर. सी. 1967. हिस्टोरियोग्राफी इन मॉडर्न इंडिया. बम्बई : एशिया पब्लिशिंग हाउस।
- गूच, जी. पी. (1913) 1952. हिस्ट्री एंड हिस्टोरियन्स ऑफ द नाइन्टीन्थ सेंचुरी. लंदन : लॉन्गमैन्स ग्रीन।
- ब्लोख, मार्क. (1953) 1992. द हिस्टोरियन्स क्राफ्ट. मैनचेस्टर : मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस।
- ट्रेंट, डब्ल्यू. पी. 1906. द रिलेशन्स ऑफ हिस्ट्री एंड लिटरेचर. वर्जीनिया हिस्टॉरिकल सोसाइटी।
- वर्मा, लालबहादुर. 2015. इतिहासरू क्यों-क्या-कैसे. हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

हिंदी उपन्यासों में बदलता पारिवारिक मूल्य-महानगरों के संदर्भ में

आर.डी. निर्मला
शोधार्थी

डॉ. अनुराधा पाकलपाटि
शोध निर्देशिका, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस, टेक्नोलॉजी एण्ड एडवांस्ड स्टडीज़ (विस्टास), चेन्नई

सार

महानगरीय जीवन का चित्रण आधुनिक हिंदी उपन्यासों में आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों के परिवर्तन से होता है। महानगरों में आजकल सिर्फ विकास और आधुनिकता नहीं है। उसके अलावा परिवारों का टूटना जैसे पारंपरिक संयुक्त परिवार, एकल परिवार में बदल जाना, आर्थिक स्वतंत्रता के कारण रिश्तों में आत्मियता को कमजोर कर दिया गया। स्त्री-पुरुष संबंधों और वैवाहिक मूल्यों में बदलाव आया है। पति और पत्नी के संबंध में निकटता नहीं बल्कि व्यावहारिकता आ गई है। माता-पिता के साथ बच्चों का संवाद डिजिटल मीडिया के माध्यम से हो रहा है। वृद्धों का उपेक्षा की जाती है। उनको बोझ माना जाता है। जिससे वे अकेलापन का अनुभव करते हैं। महानगर के जीवन की तेज रफ्तार ने संवेदनाओं की जगह सुविधा ने ले लिया है। महानगरीय जीवन में रिश्ते हैं, पर आत्मीयता नहीं है। परिवार है, लेकिन अपनापन नहीं है। सिर्फ अकेलापन बाकी रह गया है।

बीज शब्द : आधुनिकता, परिवार, मूल्य, महानगर, बदलाव, समस्याएँ, जीवन, संघर्ष, महानगरिय, बच्चे, माता-पिता, पति-पत्नी, आदि।

प्रस्तावना

आधुनिकता और शहरीकरण के कारण महानगरों में पारिवारिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। महानगरों की तेज गति और संसाधनों से मानवीय मूल्य टूटते जा रहे हैं। शिक्षा और आर्थिक उपलब्धियों ने मनुष्य को स्वतंत्र और आत्मनिर्भर तो बना दिया पर पारिवारिक चुनाव को कमजोर कर दिया है। मनुष्य अपने अस्तित्व की पहचान को खोजने में अपनी पारिवारिक और सामाजिक संबंधों से दूर होता जा रहा है। महानगर के संदर्भ में पारिवारिक मूल्य घटता जा रहा है। वर्तमान में परिवार के लोग भावनात्मक नहीं होते अपितु वे स्वार्थी बन गए हैं। आधुनिकता और तकनीकी जीवन व्यवस्था के कारण परिवार में लोगों के बीच का संवाद कम नहीं, खत्म कर दिया है। परिवार में रहते हुए भी परिवार से अलग हो गए हैं। परिवार में पति और पत्नी के बीच के संबंध, बच्चों की परवरिश की समस्या, बुजुर्गजनों के अकेलापन की समस्या आदि है। परिवार के नकारात्मक स्थिति ने बच्चों पर ज्यादा असर डाला है, जिसके कारण बच्चे मानसिक और भावनात्मक रूप से बदल जाते हैं, जैसे कभी-कभी रास्ते से बटक भी जाते हैं। महानगर में खासकर कामकाजी महिलाएँ अपना काम और परिवार संबंधी जिम्मेदारियों दोनों को भी निभाती हैं।

पारिवारिक मूल्यों में बदलाव

महानगर के जीवन की भाग-दौड़ में समय का अभाव होता है। संयुक्त परिवार, सहयोग की भावना, बड़े-बुजुर्गों के प्रति आदर आदि में बदलाव आ गया है। दिव्य प्रकाश दुबे के उपन्यास 'मुसाफिर CAFE' पारंपरिक संयुक्त परिवारों को छोड़कर एकल परिवारों और रिश्तों का नया रूप देखा जा सकता है। प्रेम और रिश्ते में सिर्फ आपसी समझ को महत्व दिया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने आधुनिक महानगरीय जीवन में रिश्ते पारंपरिक पारिवार की अपेक्षाओं से हटकर आपसी समझ और स्वतंत्रता पर निर्भर है। इसमें परंपरागत विवाह का विरोध किया गया है। सुधा एक तलाक वकील होने के कारण शादीशुदा रिश्तों को टूटते हुए देखती है। इसलिए शादी नहीं करना चाहती थी। इसमें विवाह के प्रति आधुनिक सोच रखने वाले महिलाओं की आलोचना करते हुए लेखक सुधा पात्र के माध्यम से उल्लेखित किया है-

"इसीलिए, इसीलिए शादी नहीं करना चाहती मैं, अभी शादी हुई नहीं है तब घर से निकलने के लिए बोल रहे हो। शादी के बाद तो पता नहीं क्या करोगे।"[1]

इस उपन्यास की नायिका सुधा हर दिन शादियों को टूटते हुए देखती है। इसलिए वह शादी से डर जाती है। इस डर के कारण उपन्यास के नायक चंदर से शादी करने से मना करती है। सुधा पुरानी पारंपरिक धारणाओं से हटकर नगरीय जीवन के युवाओं के विचारों को दर्शाती है। क्योंकि महानगरीय युवा पीढ़ी ने रिश्तों में समझौता के बदले आपसी समझ को महत्व देकर पारंपरिक, पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर अपना जीवन स्वतंत्र जीना चाहते हैं।

सत्यव्यास के उपन्यास 'दिल्ली दरबार' में शहरों के पारंपरिक परिवारों से आए हुए युवाओं को अपने पारंपरिक मूल्यों के साथ महानगर के नई जीवन शैली और नए सामाजिक मूल्यों को अपनाते हुए दर्शाया गया है। महानगर का वातावरण हर एक मनुष्य के व्यक्तिगत मूल्य में बदलाव जरूर लाता है। इस उपन्यास के मुख्यपत्र राहुल मिश्रा एक लापरवाह युवा से एक जिम्मेदार व्यक्ति बनने तक का बदलाव देख सकते हैं। इस उपन्यास में दिखाए गए रिश्ते, प्रेम, महानगर के संदर्भ में पारंपरिक पारिवार और आधुनिक पारिवारिक मूल्यों के मिश्रण को राहुल और परिधि के द्वारा दर्शाया गया है। प्रेम एक अस्थायी समझौते के रूप में बदल गया है। क्योंकि महानगरीय जीवन में तेजी से स्थायी भावनाओं के लिए समय नहीं है। जब परिधि नहीं है तो उस समय महिका के साथ समय काटना फिर राहुल और परिधि के बच्चे गिराने के लिए अस्पताल ले जाना, यह सब महानगरीय जीवन की मूल्यहीन व्यवहार है। बाद में जीवन का महत्व, कर्तव्य, प्रेम को समझकर अपने आप को बदल लेता है। यह नए दौर का व्यवहार है। जब राहुल अपने दोस्त मोहित को परिधि और अपने होने वाले बच्चे को गिराने के बारे में बताता है, तब मोहित उसे डाँटता है। इस पर राहुल मोहित से कहता है–

"उसी की गलती है। उसने प्रीकॉशन ही ठीक से रहकर परिधि को धोखा देता है नहीं लिया।" राहुल ने भड़कते हुए कहा।

"फिर वही बात! भोंसडी के, वही क्यों ले प्रीकॉशन। तुम क्यों नहीं लोगे प्रीकॉशन?" मैंने गुस्से में बदजुबानी की।"[2]

विवेचित उपन्यास में राहुल परिधि की अनुपस्थिति में महिका के साथ रहकर परिधि को धोखा देता है। बाद में उपन्यास का नायक राहुल मिश्रा परिधि का प्यार समझकर अपने आप को बदलकर उसके लिए जीना चाहता है।

"राहुल अपनी आदतों से मजबूर था और महिका भी राहुल के साथ बस वक्त काट रही थी। कारण कई थे। राहुल और महिका की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में भी अंतर था। महिका राहुल की तरफ आकर्षित भी महज अकेलेपन की वजह से हुई थी क्योंकि उसने ललित से ब्रेकअप को बे-इज्जती की तरह लिया।"[3]

मधु कांकरिया के उपन्यास 'पत्ताखोर' उपन्यास के नायक आदित्य द्वारा बचपन में बच्चों के मन में माँ का प्यार पाने के लिए तड़पना और उनकी अकेलेपन में जीना, इस कारण से दुर्व्यवहार में अपना जीवन नष्ट करना, यह सब इस उपन्यास में उल्लेख किया गया है।

"उसकी वर्तमान आवश्यकता एक ऐसी माँ की है जिसके साथ वह अपना अकेलापन बाँट सके, अपनी जिन्दगी की

गुत्थियों को सुलझा सके, अपना अन्तर्मन खोल सके।"[4]

यहाँ आदित्य अपनी माँ के साथ समय बिताना चाहता है और अपने मन की बातें बताना चाहता है। लेकिन माँ कार्यालय के कामों में व्यस्त होने के कारण समय नहीं निकाल पाती है।

"वे कौन-सी भूलें थीं जिनके कारण वे पुत्र को एक ऊष्ण और आत्मीय घर नहीं दे सके घर-सा घर।"[5]

आदित्य के माता-पिता दोनों कार्यालय में काम करने के कारण अपने बेटे को समय नहीं दे पा रहे थे। आदित्य की माँ एक कामकाजी महिला की समस्याओं का सामना करती थी। इसलिए समय के अभाव होने के कारण वह आदित्य को समय नहीं दे पा रही थी। जब एक घर में तीन लोगों को आपस में बात करने के लिए समय नहीं मिलता है, तो वह घर घर जैसा नहीं लगता है। इसलिए आदित्य अकेलापन महसूस करता था। आदित्य की माँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र थीं। वह जो भी करती थीं, अपने बेटे के लिए ही करती थीं, लेकिन आदित्य को जो समय चाहिए था, वो नहीं दे पा रही थीं।

नगरीकरण और औद्योगिकीकरण ने जीवन में पारिवारिक संबंधों में अंतराल को जन्म दिया है। उपन्यास में एकल परिवार को दर्शाया गया है। जिसमें माता और पिता, पति और पत्नी और बच्चे सब अपने-अपने संसार में जी रहे हैं। पति और पत्नी के बीच संवाद नहीं होता है। आधुनिक महानगरों में रहने वाली महिलाओं की बदलती भूमिका को हम विवेचित उपन्यास में आदित्य की माँ वनश्री के पात्र द्वारा देखा जा सकता है।

"असुरक्षा की भावना बचपन से ही घर कर गई है इसमें...शायद इसी का नतीजा...। लगा, जैसे पुत्र को नशे की ओर धकेलने में कहीं न कहीं वनश्री और उनका भी हाथ है।"[6]

आदित्य अपने अकेलेपन और असुरक्षा की भावना के कारण बुरे व्यवहारों में अपने आप को डालकर सिगरेट पीना, नशाखोर हो जाना आदि इस उपन्यास में देख सकते हैं।

कृष्णा सोबती कृत उपन्यास 'समय सरगम' में वृद्धों के जीवन को चित्रित किया गया है। जिसमें बच्चे अपने ही माँ को तिरस्कृत करते हुए देख सकते हैं।

"मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में-मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ। और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। आरण्या, मैं बहुत दुःखी हूँ।"[7] दमयंती महानगरीय संयुक्त परिवार में रहने वाले वृद्धों के अकेलेपन और आत्म-सम्मान के क्षरण को प्रकट करता है। वह शारीरिक रूप से बच्चों के साथ, अपने ही घर में रहते हुए भी भावनात्मक रूप से अलग है। क्योंकि घर की व्यवस्था, रसोई और यहाँ तक की उसका निजी सामान भी उसकी सहमति या नियंत्रण से बाहर हो चुका है। यह विडंबना ही इस उपन्यास की मूल संवेदना है कि आर्थिक रूप से खर्च वहन करने के बावजूद वह अपने ही घर में अस्तित्वहीन-सी हो गई है। आधुनिक परिवार में स्थान और अधिकार अब उम्र, सेवा या रिश्ते की परंपरागत गरिमा से नहीं बल्कि युवा पीढ़ी के अनुसार होता है। आरण्या से यह बात कहना, जो स्वयं अकेली है। यह एक तुलनात्मक विडंबना रचता है। सच्चा अकेलापन अकेले रहने में नहीं बल्कि भीड़ में उपेक्षित होने में है। जो महानगरीय पारिवारिक विघटन की सबसे मार्मिक अभिव्यक्ति बन जाती है।

"मुझे इस कमरे से निकलने की इजाजत नहीं! मैं ड्राइंग रूम में अपने मेहमानों को नहीं बिठा सकती।

यह गलत है, चलिए वहीं चलकर बैठते हैं।

दमयंती के मुखड़े पर एक साथ उलझे भाव उतरे। उत्साह और झिझक। फुसफुसाकर कहा- मैं वहाँ नहीं बैठ सकती, मेरे मेहमान नहीं बैठ सकते जबकि वहाँ का सब फनीचर, साज-सामान मेरा अपना बनाया हुआ है। और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।"[8] यह वाक्य दमयंती की स्थिति को और अधिक तीव्रता से उद्घाटित करता है। वह अपने ही घर के ड्राइंग रूम में, जिसका हर फर्नीचर और साज-सामान उसी का सँवारा हुआ है, अतिथियों को बिठाने तक की स्वतंत्रता खो चुकी है। जो स्वामित्व और अधिकार के बीच की गहरी दरार को दर्शाता है। घर की भौतिक वस्तुएँ भले उसकी बनाई हों, पर उन पर अधिकार अब उसका नहीं रहा। वह अब परिवार में एक सक्रिय, निर्णय लेने वाली सदस्य नहीं बल्कि एक

निष्प्राण, उपेक्षित वस्तु की तरह देखी और व्यवहृत की जाती है। ठीक उसी फनीचर की तरह जिसे उसने स्वयं सजाया पर जिस पर उसका कोई हक़ नहीं बचा। उसका उत्साह उसके भीतर की उस टूटन को दिखाता है जहाँ वह अब भी सामाजिकता और आत्म-सम्मान की चाह रखती है। परंतु अनुभव ने उसे सिखा दिया है कि यह चाह जताना भी उसके लिए वर्जित है। यही महानगरीय संयुक्त परिवार में वृद्ध स्त्री की सांकेतिक उपस्थिति और वास्तविक अनुपस्थिति के बीच का त्रासद अंतर्विरोध है।

महानगरीय जीवन की चिंता एवं दबाव पति और पत्नी के बीच तनाव और संघर्ष पैदा करते हैं। जिनके कारण परिवारों में बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के बीच का संबंध नष्ट हो जाता है। स्वार्थ के कारण विश्वास टूट जाता है। परिवार अब वृद्धजनों के लिए सुरक्षा और सम्मान का स्वाभाविक आश्रय नहीं रहा है। आर्थिक उपयोगिता पर आधारित एक व्यवस्था बन गई है। अपने ही घर में योगदान देने के बावजूद वे निर्णय-प्रक्रिया से बाहर होकर एकाकीपन और अस्तित्वहीनता का बोध झेलते हैं। पीढ़ीगत स्वायत्तता और व्यक्तिवाद के बढ़ने से वृद्धावस्था के प्रति पारंपरिक श्रद्धा के क्षरण को प्रमाणित करता है।

निष्कर्ष

हिंदी उपन्यासों में पारिवारिक मूल्य महानगरों में टूटते जा रहे हैं। लेकिन खत्म नहीं हुए। संयुक्त परिवार से एकल परिवार, पारस्परिक संबंधों का कमजोर हो जाना, बुजुर्गों की अपेक्षा करना, दाम्पत्य जीवन में संघर्ष करना, नारी की बदलती भूमिका, बचपन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना, महानगरों की यांत्रिक जीवन में व्यक्ति अकेलापन में जीता है, स्वार्थ पर आधारित रिश्ते, बदलते आर्थिक और सामाजिक दबावों के कारण पति और पत्नी के बीच में झगड़े और आर्थिक स्वतंत्रता के कारण नारी की चेतना बढ़ जाती है। नारी परिवार में जिम्मेदार होकर अपना निर्णय खुद लेती है। माता-पिता के बीच के संघर्षों और झगड़ों के कारण बच्चों पर असर पडना और पारिवारिक अलगाव बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ना आदि हिंदी उपन्यास में महानगरीय जीवन में पारिवारिक मूल्यों को बदलते हुए रूप में दर्शाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दिव्यप्रकाश दुबे, मुसाफिर कफे, हिंदू युगम, 2016 (पृष्ठ संख्या 84)
2. सत्य अभ्यास, दिल्ली दरबार, हिंदी युगम, 2016 (पृष्ठ संख्या 122)
3. सत्य अभ्यास, दिल्ली दरबार, हिंदी युगम, 2016 (पृष्ठ संख्या 166)
4. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, राजकमल प्रकाशन, 2005 (पृष्ठ संख्या 18)
5. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, राजकमल प्रकाशन, 2005 (पृष्ठ संख्या 21)
6. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, राजकमल प्रकाशन, 2005 (पृष्ठ संख्या 73)
7. कृष्ण सोबती, समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, 2008 (पृष्ठ संख्या 91)
8. कृष्ण सोबती, समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, 2008 (पृष्ठ संख्या 92)।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

मेघदूतस्य यक्षिण्याः प्रोषितभर्तृकानायिकारूपेण समीक्षा

डॉ. डायालालः मालदेभाई मोकरिया
सहाचार्यः, अनुस्नातकभवनम्,
श्रीसोमनाथसंस्कृतयुनिवर्सिटी, वेरावल

सारांशः

संस्कृतसाहित्यशास्त्रे काव्यस्य सूक्ष्मतया समीक्षणं दृश्यते। विविधैः आचार्यैः काव्यस्य स्वरूपं, प्रकारः, रसः, नायकः, नायिका इत्यदीनां कृते विवेचनं कृतम् अस्ति। तस्मिन् नायिकानिरूपणम् अपि विस्तृतम् एवं वैज्ञानिकम् अस्ति। महाकविकालिदाससदृशानां कवीनां काव्यानां तत्र सङ्केतः दृश्यते। अस्मिन् शोधपत्रे अपि कविकालिदासस्य मेघदूतस्य नायिकायाः यक्षिण्याः प्रोषितभर्तृकानायिकारुपेण समीक्षणम् अस्ति। कालिदासस्य नायिकाविचारस्य वैशिष्ट्यम् अत्र प्रतिपादितम् अस्ति। प्रोषितभर्तृकानायिकायाः विशेषतारू दर्शयित्वा यक्षिण्याः अत्र वैशिष्ट्यं निरुपितम् अस्ति।

बीजशब्दाः साहित्यशास्त्रे नायिकाविचारः, प्रोषितभर्तृकानायिका, मेघदूतस्य यक्षिणी, मनोवैज्ञानिकः प्रभावः, यक्षिण्याः वैशिष्ट्यम्।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धारू कविश्वराः
नास्ति येषां यशरूकाये जरामरणजं भयम्।१

इत्युक्त्वा भर्तृहरिः रससिद्धकवीनां गौरवं प्रकटति। महाकविः कालिदासः, भासः, भारविः, माघः इत्यादयः कवयः स्वकाव्यैः इदानीम् अपि साहित्यजगत् प्रकाशितं कुर्वन्ति। तेषु अपि महाकविः कालिदासः तु अनन्यः अस्ति। तस्य काव्यस्य विशेषतासु नायिकानिरूपणम् अपि विशिष्टम् अस्ति। संस्कृतसाहित्यशास्त्रे काव्यस्य विविधानां तात्त्वानां विषये विस्तरेण वर्णनं प्राप्यते। आचार्यः भरतरू, भामहः, रुद्रटः, धनञ्जयरू इत्यादयः आचार्याः काव्यस्य सन्दर्भे महतीं मीमासां कुर्वन्ति। ते नायकरू, नायिका, प्रतिनायिकरू इत्यादीनां कृते महत्त्वपूर्णं विवेचनं कुर्वन्ति। नायकेन सह नायिकायाः अपि विशेषं स्थानं भवति। नायिकायाः विविधाः प्रकारः सन्ति। अस्मिन् शोधपत्रे मेघदूतस्य नायिकायाः यक्षिण्याः प्रोषितभर्तृकानायिकारूपेण समीक्षणं कृतम् अस्ति।

नायिकायाः नायकेन सह सम्बन्धं स्वीकृत्य तस्याः प्रमुखाः अष्टप्रकाराः सन्ति। आचार्यभारतः नाट्यशास्त्रे नायिकायाः अष्ट प्रकारान् वर्णयति। यथा -

तत्र वासकसज्जा च विरहोत्कण्ठितापि वा।
स्वाधीनभर्तृका चापि कलहान्तरितापि वा।
खण्डिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका।
तथाभिसारिका चौव ज्ञेयास्त्वष्टौ तु नायिकाः॥२

आचार्यः विश्वनाथः साहित्यदर्पणे लिखति यत् -

स्वाधीनभर्तृका तद्वत्खण्डिताथाभिसारिका।
कलहान्तरिता विप्रलब्धा प्रोषितभर्तृका।
अन्या वासकसज्जा स्याद्विरहोत्कण्ठिता तथा॥३

आचार्याः वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहान्तरिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, अभिसारिका च इति अष्टप्रकारान् निरुपयन्ति। महाकविः कालिदासः प्रसङ्गानुसारं विविधानां नायिकानां निरुपणं करोति। तस्य प्रसिद्धखण्डकाव्यस्य मेघदूतस्य नायिका प्रोषितभर्तृका अस्ति।

संस्कृतसाहित्ये प्रोषितभर्तृकानायिकायाः कृते प्रोषितप्रिया शब्दः अपि प्रसिद्धः अस्ति। आचार्यरू भरतः प्रोषितभर्तृकां नायिकां वर्णयन् लिखति यत्

गुरुकार्यान्तरवशाद् यस्या वै प्रोषितः प्रियः।
प्ररूढालककेशान्तारू भवेत्प्रोषितभर्तृका ॥ ४

नायिकासु प्रोषितभर्तृका नायिका भर्तुः दीर्घयात्रायाः कारणात् विरहम् अनुभवति तस्याः पतिः कार्यवसात्, शापवशात्, अर्थोपार्जनाय, राजकार्याय वा अन्यत्र गच्छति। अतः इयं प्रियस्य विरहेण स्वस्य शरीरं न अलङ्करोति। सा केशान् अपि न बध्नाति। सा विरहदूःखेन संतापम् अनुभवति। आचार्यः भरतः अग्रेऽपि कथयति यत् -

तथा प्रोषितकान्तासु व्यसनाभिहतासु च।
वेषो वै मलिनः कार्य एकवेणीधरं शिरः॥५

इयं नायिका मलिनं वस्त्रं धरति। एकवेणी धारिणी भवति। सा नायिका शारीरिकं सुशोभनं भौतिकं च सुखं परित्यक्त्वा जीवनं जीवति अर्थात् सा स्वस्य सर्वान् उपभोगान् त्यक्त्वा केवलं प्रियस्य एव कामनां करोति।

आचार्यः धनञ्जयरू अपि लिखति यत् -
दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया। ६

प्रियरू कार्यवशात् दूरं गतवान् भवति अतः इयं नायिका प्रियस्य विरहम् अनुभवति।

रामचन्द्रगुणचन्द्रौ नाट्यदर्पणे लिखतः यत् -
कार्यतः प्रोषिते पत्यावभूषा प्रोषितप्रिया। ७

नट्यदर्पणे अपि तथैव उक्तमस्ति यत् प्रियः कार्यशात् दूरस्थः भवति अतः सा भूषणम् अपि न धरति।

साहित्यदर्पणकारः लिखति यत् -
नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ॥८

प्रोषितभर्तृकानायिकायाः पतिः कार्यवशात् दूरं देशान्तरं गतवान् भवति अतः सा कामसन्तप्ता भवति। साहित्यदर्पणस्य लक्ष्मीटीकायाम् उक्तम् अस्ति यत् पतिः विविधकार्यार्थम्, अध्ययनार्थमपि शापवशात् वा गच्छति तदा नायिका पत्युः सान्निध्यं न लभते, अतः सा दुःखम् अनुभवति।९

महाकविः कालिदासः स्वकाव्येषु नायिकानां वैविविध्यपूर्णं वर्णनं कृतवान् अस्ति। एतासु नायिकासु प्रोषितभर्तृका नायिका अपि वर्णिता अस्ति। वर्षाकाले प्रियविरहरू कठिनरू भवति। कविः कालिदासः मेघदूते यक्षिण्याः इमं कठिनं विरहं मनोवैज्ञानिकरीत्या वर्णयति। उपर्युक्तानि प्रोषितभर्तृकानायिकायाः लक्षणनानि मेघदूतस्य यक्षिण्यां सन्ति।

प्रियतमस्य विरहः भवति अतः प्रोषितभर्तृकानायिका स्वसुखं त्यक्त्वा तपस्विनी इव जीवनं यापयति। मेघदूते अपि प्रियतमस्य यक्षस्य विरहः अस्ति अतः यक्षिणी मानसिकपीडाम् अनुभवति। सा पतिं विना सुखं समृद्धिं च नेच्छति। कविः कालिदासः वर्णयति -

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेद्विप्रयोगः,
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्सन्देशः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे,
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः॥१०

यक्षिण्याः अलकानगर्यां या स्थितिरू भवितुं शक्नोति तस्यारू वर्णनं यक्षः मेघसमक्षं करोति। सरू मेघं कथयति यत् यक्षिणी अलकानगर्याः भोगान् भोङ्क्तुं न शक्नुयात। तस्याः दिवसः तु चित्रकलादिभिः मनोविनोदैरू यथातथा गन्तुं शक्नुयात, किन्तु तस्याः रात्रिः विनोदक्रिया रहिता भवितुं शक्नोति अतः सा दीर्घा भविष्यति। यक्षिणी पत्युः विरहात् अत्यन्तं शोकाकुला भवितुं शक्नोति। यक्षः कल्पानां करोति यत् सा अर्धरात्रौ सा जागृता भविष्यति, तस्याः शयनं अपि भूमौ भविष्यति। रात्रौ अपि सा निद्रां कर्तुं असमर्था स्यात, अतः यक्षः मेघं स्वस्य भार्यां सुखी कर्तुं स्वस्य सन्देशं कथयति। अस्मिन् वर्णने यक्षिणी प्रोषितभर्तृकानायिकारुपेण दृश्यमाना भवति।

कविः कालिदासः नायिकायाः याक्षिण्याः मानसिकवेदनां शारीरिकदशां च वर्णयति यत्-

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्॥ ११

प्रोषितभर्तृकानायिका भर्तुः विरहात् मानसिकपीडाम् अनुभवति, तया तस्याः शरीरं क्षीणं भवति। याक्षिणी अपि पतिं विना दुःखी भवति। पत्युः सान्निध्यम् आसीत् तदा याः रात्रयः अल्पाः इव भासन्ते स्म, ताः इदानीं सः दूरः अस्ति अतः दीर्घाः इव दृश्यन्ते। सा भर्तुः सहवासम् इच्छति, किन्तु पतिः अत्र नास्ति अतः सा विरहस्य अश्रुपातं करोति। सा भर्तृवियोगे कामपीडाम् अनुभवति।

प्रोषितभर्तृकानायिका भर्तृवियोगेन केशसज्जताम् अपि न करोति। यदा तस्याः प्रियः यात्रां गच्छति तदा सः एव भार्यायाः केशसज्जतां कृत्वा, वेणीबन्धनं कृत्वा गच्छति तदनन्तरं भार्या तथैव बद्धकेशा एव भवति। पतिः प्रत्यागत्य तस्याः केशान् बध्नाति। यक्षिण्याः सन्दर्भे अपि कविना तथैव उक्तम् अस्ति यत्

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनियाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥१२

अत्र यक्षिण्याः स्थितिं कल्पयन् यक्षः कथयति यत् विरहस्य प्रथमे दिने मया यक्षिण्याः केशाः बद्धाः आसन। मया वेणीबन्धनं कृतम् आसीत। मम शापस्य समाप्तिः भविष्यति तदा एतस्याः वेणीबन्धनं पुनः करिष्यामि। सा बृहद्नखहस्तैः गण्डयोः केशान् बहुवारं अपसारय विरहस्य पीडायाः अनुभवं कुर्वन्ती भविष्यति। अत्र कविना यक्षिण्याः मनोवेदना अपि चित्रिता अस्ति। प्रियस्याभावे किमपि कर्तुं न रोचते, अतः एषा यक्षिणी स्वस्याः शरीरस्य आवश्यकतानाम् अपि पूर्तिं न करोति एवं पीडाम् अनुभवति।

प्रोषितप्रिया नायिका अलङ्कारं धारणं न करोति। यक्षणीं वर्णयन् कविः तदपि लिखति यत्

सा सन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं,
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥१३

अत्रापि यक्षिण्यारू अवस्थां निरूप्य तया अलङ्काराः न धारिताः इति कथितम् अस्ति। सा विरहदुःखे अश्रुणि सारयन्ती भविष्यति। प्रोषितभर्तृकानायिका भर्तुः पुरतः स्वस्य सौन्दर्यस्य प्रदर्शनं कृत्वा आनन्दं लभते। भर्तुः अनुपस्थितौ सौन्दर्यस्य प्रदर्शनं कस्य समक्षं कुर्यात? अतः अत्र सा आभूषणानि धारणं न करोति। प्रियविरहेन सा दुर्बला भवति, अतः तस्याः तदर्थं

समर्थता अपि न भवति। अत्र द्रष्टुं शक्यते यत् प्रोषितभर्तृकानायिका प्रियस्य वियोगेन शारीरिकीम् एवं मानसिकीं दुर्बलतां प्राप्नोति अतः अत्रापि तस्याः कृते कविना अबला-शब्दस्य प्रयोगः कृतः तत् सार्थकः अस्ति।

भर्तुः विरहम् अनुभवन्त्याः नायिकायाः कृते मनोरञ्जनस्य आवश्यकता भवति। तेन तस्याः जीवने किमपि सुखम् आगच्छेत्। तेन सा भर्तुः वियोगं न्यूनीकर्तुं शक्नुयात् एवं सा स्वस्य मानसिकपीडाम् अपि न्यूनीकर्तुं शक्नुयात्। मेघदूते अपि कविः एतस्य उल्लेखं करोति।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति॥१४

कान्तस्य वियोगे कान्ता मानसिकीं शान्तिं प्राप्तुं विविधान् उपायान् करोति। यक्षिणी अपि पतिवियोगः सह्यः भवेत् तदर्थं विविधानि कार्याणि करोति। सा देवान् पूजयति तेन तस्याः पतिः शीघ्रम् आगच्छेत्। यक्षिणी केवलं प्रियस्य चित्रम् एव न आलेखयति, अपितु सारिकया सह सम्भाषणमपि करोति। नायिकानां कार्याणामपि अत्र वर्णनम् अस्ति। एतत् कविः अग्रे अपि कथयति -

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥१५

भर्तुः वियोगे यक्षिणी वस्त्रधारणेऽपि उनुत्साही अस्ति। सा मलिनवस्त्रं धारणं करोति। वीणां वादयित्वा विरहदुःखं विस्मरतुम् इच्छति। प्रियं स्मृत्वा अश्रुणि पातयति। केवलं तथैव नास्ति, सा गायने अपि त्रुटिं करोति। एतत् सर्वं यक्षः कल्पयति, तत्र प्रोषितभर्तृकानायिकायाः लक्षणानि दृश्यन्ते।

अभिज्ञानशाकुन्तले दुष्यन्तरू शकुन्तलां शापवशात् अवगन्तुं न शक्नोति एवं तां त्यजति। तस्मिन् समये शकुन्तला मारीचऋषेः आश्रमे प्रोषितभर्तृकानायिकायाः धर्मम् पालयति।

वसने परिधूसरे वसना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥१६

अभिज्ञानशाकुन्तले विरहिणी शकुन्तला अपि मलिनं वस्त्रं धारयति। सा दूर्बला जाता। एकां वेणीं धरति। उत्तररामचरिते सीता अपि पत्युः विरहम् अनुभवति।

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथैव वनमेति जानकी॥१७

अत्रापि प्रियतमस्य विरहेण सीता दूर्बला भवति। विरहस्य सन्तापम् अनुभवति। इत्थं विरहं अनुभवन्तीनां प्रोषितभर्तृकानायिकानां स्थितिः कवयः वर्णयन्ति।

मेघदूते कविः कालिदासः नायिकानां वर्णनं करोति, तस्मिन् यक्षिणी विरहिणी नायिका वर्णिता अस्ति। अरण्ये निवसन्तीनां तपः कुर्वन्तीनां नायिकानां तुलनायां संसारे निवसन्ती प्रोषितभर्तृकानायिका विशेषरूपेण मानसिकपीडाम् अनुभवति। यक्षिणी अलकानगर्यां निवसति। इयं नगरी भोगविलासैरू परिपूर्णा अस्ति। अतः एव अत्र प्रियस्य विरहः ताम् अधिकं दुःखं ददाति। अत्र सा प्रोषितभतृकानायिकारूपेण दृश्यते। आश्रमवासीनां कृते एतादृशं जीवनं किञ्चित् सुकरं भवति, परन्तु अलकानगरीसदृश्याः भोगनगरनिवासिन्याः यक्षिणीयाः कृते एतादृशं जीवनं कठिनं भवति। अतः सा भर्तृवियोगे अधिकं दुःखम् अनुभवन्ती दृश्यते। शकुन्तलासीतयोः अपेक्षया अपि यक्षिण्याः निरुपणं विशिष्टम् अस्ति। कविना तस्याः नायिकारुपेण चित्रणं विशेषं वास्तविकम् एवं मनोवैज्ञानिकं कृतम् अस्ति।

संदर्भः

१. नीतिशतकम्,२१
२. नाट्यशास्त्रम्,२४/२१०,२११
३. साहित्यदर्पणम्, ३/७२, ७३
४. नाट्यशास्त्रम्,२४/२१८
५. नाट्यशास्त्रम्, २३/७१
६. दशरूपकम्, २/२७
७. नाट्यदर्पणम्,४/२३
८. साहित्यदर्पणम्, ३/८४
९. यस्याः पतिः नानाकार्यवशात् शिक्षार्थाजननियोगादिवशा, इदं शापसंभ्रमयोरप्युपलक्षणम्। साहित्यदर्पणम्,३/८४ लक्ष्मीटीका, पृ. १३०
१०. मेघदूतम्, उत्तरमेघः,२८
११. मेघदूतम्, उत्तरमेघः,२९
१२. मेघदूतम्, उत्तरमेघः,३२
१३. मेघदूतम्, उत्तरमेघः,३३
१४. मेघदूतम्, उत्तरमेघः,२५
१५ मेघदूतम्, उत्तरमेघः,२६
१६ अभिज्ञानशाकुन्तम्, ७/२१
१७ उत्तररामचरितम्,३/४

संदर्भग्रंथः

१. मेघदूतम्, सम्पादकः- डॉ. अर्कनाथः चौधरी, जगदीश संस्कृत पुस्तकालयः जयपुरम्, २०१२
२. मेघदूतम्, सम्पादकः- डॉ. शान्तिकुमीर पण्ड्या, पार्श्व पब्लिकेशन, अहमेदाबाद,१९९६
३. अभिज्ञानशाकुन्तम्, सम्पादकः-डॉ.सी.एल.शास्त्री, सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमेदाबाद,१९९०
४. उत्तररामचरितम्, सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमेदाबाद,१९९०
५. नाट्यशास्त्रम्, सम्पादकः-बाबूलालः शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवनम्, वाराणसी
६. नाट्यदर्पणम्, सम्पादकः डॉ . नगेंद्रः, हिंदी विभागः, दिल्ली विश्वविद्यालयः, दिल्ली, १९९१
७. साहित्यदर्पणः, सम्पादकः-आचार्यः कृष्ण मोहन शास्त्री, चौखम्भा पब्लिकेशन्स,२०११
८. दशरूपकम्, सम्पादकः-डॉ केशवरावः मुसलगांवकर, चौखम्भा पब्लिकेशन्स,२००४
९. नीतिशतकम्, सम्पादकः- डॉ.गौतम पटेल, सी. जमनादास कंपनी, अहमेदाबाद,१९९६

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Book review: Saurav Kumar Rai, Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, c. 1890–1950

Ankur Majumdar
Research Scholar
Department of East Asian Studies, University of Delhi

Abstract

This book explores how the Ayurvedic revival movement intertwined with Indian nationalism, upper-caste interests, and commercial print culture in early 20th-century colonial India. Saurav Kumar Rai's Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, c. 1890–1950 offers a significant contribution to the social history of medicine in colonial India by examining the intersection of Ayurveda, nationalism, and society in the United Provinces between the late nineteenth century and the early post-independence period. Drawing upon archival records, vernacular Ayurvedic journals, pamphlets, and oral testimonies, Rai demonstrates how the Ayurvedic revivalist movement evolved beyond a medical campaign into a socio-political project closely associated with anti-colonial nationalism and the construction of a modern Indian identity. The book critically analyses the roles of caste, class, gender, religion, and commerce in shaping Ayurvedic discourse, while exploring the institutionalisation and commercialisation of indigenous medicine. It argues that the revival of Ayurveda was neither a simple restoration of an ancient tradition nor merely a reaction to Western medicine, but a dynamic process of negotiating modernity, scientific legitimacy, and national identity. This review evaluates the book's historiographical contributions, methodological strengths, and engagement with debates on medical nationalism, while also considering its limitations. Overall, the work is an important resource for scholars of modern South Asian history, medical humanities, and the politics of indigenous knowledge, providing fresh insights into the complex relationship between medicine, society, and nation-building in colonial and early postcolonial India.

Introduction:- This book is all about Here's a scholarly introduction suitable for a book review of Saurav Kumar Rai, Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, c. 1890–1950.

The history of medicine in colonial India has increasingly emerged as an important field of historical inquiry, revealing the complex interactions between indigenous knowledge systems, colonial governance, and nationalist politics. Within this growing scholarship, Ayurveda has received renewed attention not merely as a traditional medical practice but as a dynamic institution that evolved in response to the social, political, and intellectual transformations of the late nineteenth and early twentieth centuries. Rather than remaining a static repository of ancient knowledge, Ayurveda became deeply intertwined with debates on modernity, scientific legitimacy, cultural identity, and nation-

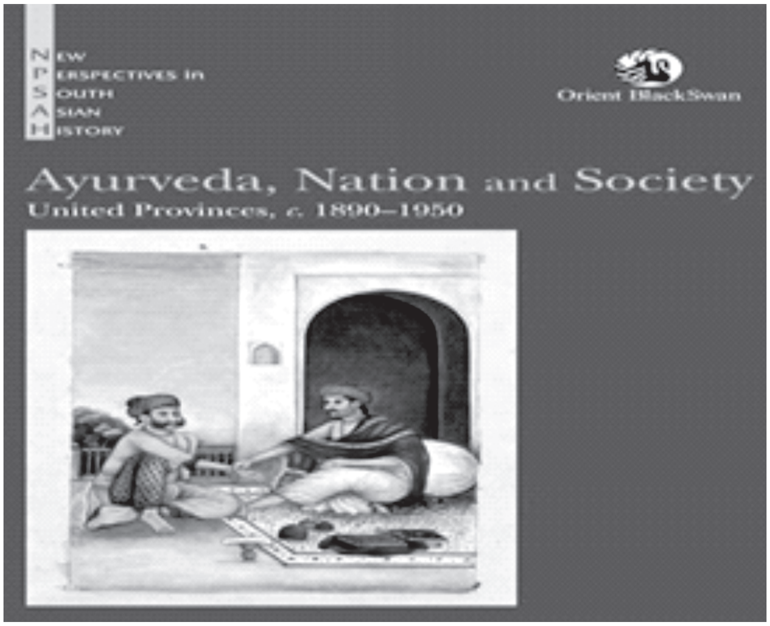

building.Saurav Kumar Rai's Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, c. 1890–1950 makes a significant contribution to this historiography by examining the evolution of Ayurveda in the United Provinces during a period marked by colonial rule, the rise of Indian nationalism, and the transition to independence. The book argues that the revival and institutionalisation of Ayurveda cannot be understood solely as a medical movement; instead, it was a broader socio-political project shaped by practitioners, reformers, educational institutions, commercial enterprises, and nationalist organisations. Through extensive use of archival documents, vernacular journals, newspapers, government records, and contemporary publications, Rai reconstructs the multiple forces that transformed Ayurveda into an important component of India's intellectual and political landscape.A central strength of the book lies in its interdisciplinary approach, combining insights from the history of medicine, social history, political history, and cultural studies. Rai explores how questions of caste, class, gender, religion, education, and the expanding print culture influenced the development of Ayurvedic knowledge and practice. He also demonstrates that the relationship between Ayurveda and Western biomedicine was characterised not only by conflict but also by adaptation, negotiation, and selective appropriation, challenging simplistic narratives of opposition between indigenous and colonial medical systems.This review critically examines Rai's central arguments, sources, methodology, and historiographical interventions. It assesses the book's contribution to the understanding of medical pluralism, indigenous knowledge, and nationalist discourse while considering its analytical strengths and possible limitations. By situating Ayurveda within broader processes of social change and political mobilisation, the book provides valuable insights into the relationship between medicine, society, and the making of modern India. As such, it is an important work for historians of colonial South Asia, scholars of medical humanities, and researchers interested in the intersections of science, culture, and nationalism.If you are preparing this for an academic journal, this introduction can be followed by sections on Summary of the Book, Critical Analysis, Strengths and Limitations, and Conclusion.

Chapter wise summary:- This book has total six chapters explores the rise of medical nationalism,

the commercialization of indigenous healing, and the social hierarchies embedded within the Ayurvedic revivalist movement in late colonial and early post-colonial North India. This book basically explores those idea of Medical Nationalism and how did it played an important role . Print media and culture played an important role in this book.

Chapter 1:- Ayurveda as 'Indigenous' Medicine: Historical Backdrop and Complexities:- This chapter traces the historical evolution of Ayurveda from ancient traditions to the colonial period. It explains how British medical policies privileged Western medicine while portraying indigenous systems as unscientific. In response, Ayurvedic practitioners reconstructed Ayurveda as India's authentic and scientific medical tradition. The chapter also shows that the idea of "indigenous medicine" was contested and shaped by political and cultural debates rather than being a fixed category.

Key arguments:-

- Colonial medicine marginalized Ayurveda.
- Ayurvedic revivalists defended Ayurveda as India's national medical heritage.
- The concept of indigenous medicine evolved through colonial encounters.

Chapter 2 :- Indian National Congress and the Late Colonial Ayurvedic Movement:- In this chapter,Rai examines the relationship between the Ayurvedic revival movement and the Indian National Congress. Nationalist leaders viewed Ayurveda as a symbol of cultural self-reliance and resistance to colonial domination. Leaders such as Gandhi, Hakim Ajmal Khan, and Govind Ballabh Pant supported indigenous medicine, although they differed regarding reform and scientific modernization. The chapter also discusses legislative measures such as the United Provinces Indian Medicine Act and their effects on practitioners.

Key arguments:-

- Ayurveda became associated with the nationalist movement.
- Congress leaders promoted indigenous medicine with differing perspectives.
- State regulation reshaped Ayurvedic education and professional identity.

Chapter 3:- Creating an Ayurvedic Discourse: Print, Organisation and Mobilisation:- This chapter explores how print culture and voluntary organisations popularised Ayurveda. Journals, magazines, pamphlets, conferences, and associations created networks that spread Ayurvedic ideas to a wider public. Print media enabled practitioners to debate medical knowledge, criticize colonial health policies, and promote Ayurveda as both scientific and national.

Key Arguments:-

- Print culture was essential to the revival of Ayurveda.
- Organisations unified practitioners and expanded public awareness.
- Public debates strengthened Ayurveda's intellectual legitimacy.

Chapter 4:- Healing the Society: Social Culture of the Late Colonial Ayurvedic Discourse:- This chapter analyses the social dimensions of Ayurvedic revivalism. Rai argues that Ayurvedic literature often reflected concerns about caste, gender, religion, morality, hygiene, and national regeneration. While advocating social reform, many revivalists also reinforced conservative social hierarchies and communal identities.

Key Arguments:-

- Health was linked to moral and national improvement.
- Ayurvedic discourse addressed family life, women's health, and public morality.
- Revivalist writings sometimes reproduced caste and communal prejudices.

Chapter,5:- Ayurveda in the Market: Economic Underpinnings of the Late Colonial Ayurvedic Movement:- This chapter examines the commercialization of Ayurveda. The expansion of pharmacies, pharmaceutical companies, advertisements, and branded medicines transformed Ayurveda into an organised industry. Commercial success increased the visibility of Ayurveda but also introduced competition and changing business practices.

Key Arguments:-

- Ayurveda became closely connected with the market economy.
- Commercial enterprises expanded the production and sale of medicines.
- Marketing and advertising shaped public perceptions of Ayurvedic healthcare.

Chapter 6:- Ayurveda at the Crossroads of Independence (c. 1946–50):- The final chapter studies the transition from colonial to independent India. After independence, Ayurveda received greater state recognition, yet practitioners faced new challenges involving regulation, education, research, and integration with modern healthcare. The author argues that many debates from the colonial era continued into independent India.

Key Arguments:-

- Independence created opportunities for institutional recognition.
- Ayurveda became part of national health policy.
- Questions of scientific validation and professional identity remained unresolved.

For a journal-quality book review of Saurav Kumar Rai, Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, c. 1890–1950 (New Perspectives in South Asian History, Orient BlackSwan, 2024), the following analytical points are the most relevant. These move beyond summary and engage critically with the book's contribution to historiography.

1. Central Argument :- In this book,Rai argues that Ayurveda was not simply a traditional medical system but was actively reconstructed as a nationalist, social, and political project during the late colonial period.The Ayurvedic revival was closely linked to debates on nationalism, colonialism, identity, and modernity rather than being only a medical movement.

2. Historiographical Contribution :-Challenges earlier histories that viewed Ayurveda mainly through the lens of colonial suppression or scientific progress.Places Ayurveda within the broader social history of medicine, nationalism, and state formation.Contributes to scholarship on colonial knowledge systems and indigenous medicine.

3. Original Sources :- One of the book's greatest strengths is its extensive use of:Vernacular Hindi Ayurvedic journals,Pamphlets,Newspapers,Government records,Official reports,Interviews with Ayurvedic practitionersThese sources enable the author to reconstruct everyday debates surrounding

Ayurveda.

4. Medical Nationalism :- It Demonstrates how Ayurveda became a symbol of Indian nationalism.Shows how revivalists linked indigenous medicine with anti-colonial resistance and national identity.Explains the interaction between Ayurvedic organizations and nationalist politics.

5. Print Culture :-The book highlights:Ayurvedic journals as platforms for intellectual debate.Print capitalism in spreading medical knowledge.Formation of professional Ayurvedic networks.This is a significant contribution to the history of print culture.

6. Society, Caste and Gender:- One of Rai's most important interventions is his analysis of:Caste hierarchy,Gender relations,Religious identity,Class politics.He argues that revivalist discourse often reflected upper-caste Hindu social ideals while marginalizing other healing traditions and communities.

7. Commercialisation of Ayurveda :-Explains how pharmacies, medicine manufacturers, advertisements, and branded products transformed Ayurveda into a commercial enterpriseConnects medicine with economic history and consumer culture.

8. Colonial Public Health :- This Book examines British public health policies.It Shows unequal access to Western medical institutions.It Explains how colonial discrimination encouraged the revival of indigenous medicine.

9. Methodology:-The study combines:Social history,Intellectual history,Cultural history,Political history,History of medicine.Its interdisciplinary approach broadens the scope of South Asian medical history.

10. Contribution to South Asian History:-The book enriches research on:Colonial India,History of medicine,Nationalism,Indigenous knowledge systems,Uttar Pradesh history,Modern South Asia.

Critical Evaluation :- It highlights about its Strengths and Weakness.

- **Strengths :-**Original archival research.
- Rich vernacular sources.
- Strong historiographical intervention.
- Interdisciplinary methodology.
- Connects medicine with nationalism, society, and economy.
- Offers a nuanced understanding of Ayurvedic revivalism.
- **Limitations :-**The regional focus on the United Provinces limits broader comparisons with regions such as Bengal, Bombay, Madras, or Punjab.
- Greater comparison with Unani medicine, folk medicine, and other indigenous systems could have strengthened the analysis.
- The emphasis on caste, communalism, and gender has generated scholarly debate, with some reviewers considering the interpretation persuasive while others view it as overly critical or ideologically framed.

Overall Assessment:-The book is a significant contribution to the social history of medicine in colonial India. It demonstrates that Ayurveda evolved through interactions among colonial rule, nationalist politics, print culture, commerce, caste, and state formation rather than as an unchanged

ancient tradition. Because of its extensive archival research and interdisciplinary analysis, it is particularly valuable for scholars of South Asian history, medical history, nationalism, and colonial studies. These points are well suited for developing a 2,500–3,000-word journal book review for journals such as Social History of Medicine, Indian Economic and Social History Review, South Asia Research, or Studies in History.

Role of Political Cartoons in this Book:-In Figure 1.3Pg no 45 It depicts about Ayurvedic Flag and anthem.This image depicts a page from the publication Sudhanidhi, featuring a flag and anthem for Ayurveda, with text written in Hindi.The flag displays an image of a traditional pot, likely symbolizing a kalash or vessel for sacred water or medicine.The title of the page is "Jay Jay Ayurveda Patake" and the anthem is titled "Jhanda. Figure no 4.1,page number 108,The image shows a historical Hindi cartoon titled "- भोजन का प्रभाव" (Effect of Food) from a book discussing Ayurveda, nation, and society.This cartoon serves as a satirical commentary on purity, caste, and food hygiene practices within colonial or early post-colonial Indian households. "Maharaj" is a traditional term used for Brahmin cooks hired specifically to maintain ritual purity in food preparation. The satire highlights the irony where a cook hired for ritual cleanliness violates basic physical cleanliness.Figure no 4.3 ,Page no 128,The illustration serves as a social commentary from the early-to-mid 20th century regarding the changing nature of education and cultural values:The Gurukul Student (Left): Depicted wearing traditional Indian attire (dhoti and kurta) with a simple walking stick, representing humility, discipline, and traditional values.The Modern University Student (Right): Caricatured wearing westernized spectacles, modern clothing styles, holding a fashionable cane, and smoking a cigarette, symbolizing the perceived moral decline, pretension, or superficiality associated with Western-style higher education at the time.In Figure 5.9, This is a historical advertisement for Ayurvedic injections produced by the G.A. Mishra Ayurvedic Pharmacy in Jhansi, U.P.The text at the top, "नकली माल से सावधान" (Beware of fake goods), warns customers to avoid counterfeit products.The pharmacy claims to be the first in the world to create Ayurvedic injections.

Conclusion

In this book ,Rai concludes that Ayurveda was not simply a medical tradition but a significant social and political movement. Between 1890 and 1950, it became deeply connected with nationalism, identity, commerce, and social reform. The book demonstrates that the revival of Ayurveda was shaped by interactions among colonial rule, nationalist politics, print culture, market forces, and public debates, leaving a lasting influence on post-independence India's healthcare landscape. Rai concludes that Ayurveda was not simply a medical tradition but a significant social and political movement. Between 1890 and 1950, it became deeply connected with nationalism, identity, commerce, and social reform. The book demonstrates that the revival of Ayurveda was shaped by interactions among colonial rule, nationalist politics, print culture, market forces, and public debates, leaving a lasting influence on post-independence India's healthcare landscape. It places Ayurveda within the broader history of nationalism and colonialism.It highlights the importance of vernacular print culture in medical revival.It connects medicine with caste, gender, religion, and economic history.It explains how the commercialization of Ayurveda shaped its modern development.It offers a valuable contribution to the social history of medicine in colonial India.

References

- "Ayurveda, Nation and Society: United Provinces, c 1890–1950" by Saurav Kumar Rai
- https://www.researchgate.net/publication/376520782_ Ayurveda_Nation_ and_Society_ United_ Provinces_c_1890-1950?utm_source=chatgpt.com
- https://academic.oup.com/shm/advance-article-abstract/doi/10.1093/shm/hkae047/ 7713000?utm_source=chatgpt.com

Image credit:-

- Only Figure :- Orient Black swan publication

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

देह का नक्सलवाद और प्रेम विवाह : स्त्री प्रतिरोध और सामाजिक संस्थाओं का विश्लेषण

एन. के. शिष्णा प्रकाशन
शोधार्थी
श्री संकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल
Email id: shishnaprakash59@gmail.com
Mob no- 9447952594

"स्त्री की गुलामी देह से ही शुरू हुई थी और देह मुक्ति से ही वह आज़ाद होगी।"[1] यह पंक्ति इस लेख के भाव को सीधे और सठीक रूप से व्याख्यित करती है। प्रस्तुत शोधपत्र में लेखक अभय कुमार दुबे द्वारा लिखी गयी प्रसिद्ध पुस्तक 'फुटपाथ पर कामसूत्र' में "देह का नक्सलवाद और प्रेम विवाह" के अत्यंत वैचारिक और गंभीर अंश का विश्लेषण किया गया है। यह लेख स्त्री की देह, सामाजिक-राजनीतिक विरोध, प्रेम-विवाह की संस्थागत सीमाओं और भारतीय क़ानून व्यवस्था के आपसी संबंधों का गहन अध्ययन करता है।

लेखक हिंदी साहित्य में 'देह-विमर्श' पर की जानेवाली संकुचित मानसिकता पर आलोचना करते है क्योंकि इसे केवल 'मैथुन' और 'चरम सुख' के धरातल तक ही सीमित कर दिया गया है। इसका मुख्य कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आगमन से होता है। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना ने ऐतिहासिक रूप से स्त्री की अस्मिता का निर्माण उसकी बौद्धिक-वैचारिक और आत्मनिर्णयकारी क्षमता के स्थान पर उसकी देह के आधार पर किया है। इस प्रक्रिया में स्त्री की पहचान को उसकी शारीरिक उपस्थिति तक सीमित करते हुए उसे स्वामित्व, नियंत्रण और उपभोग की वस्तु के रूप में परिभाषित किया गया। शुद्धता की अवधारणा भी स्त्री के देह से की जाने लगी। उनके वस्त्र धारण में कैसा पहनावा हो और कितनी मात्र में देह ढकना उचित हो यह भी पितृसत्ता के नियंत्रण में रही है। स्त्री के देह पर हर प्रकार के नियम लागू कर दी जाती है। इसके फल स्वरूप पितृसत्तात्मक व्यवस्था का संचालन स्त्री की शारीरिक स्वायत्तता, प्रजनन क्षमता और यौनिकता पर नियंत्रण के माध्यम से होता रहा है। स्त्री की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन उसके व्यक्तित्व, ज्ञान और क्षमता से अधिक उसके देह के आधार पर होने लगा। इस सामाजिक संरचना में जो भी संस्थाए बनी है जैसे विवाह, परिवार, धर्म, नैतिकता, क़ानून आदि सभी स्त्री की देह पर नियंत्रण स्थापित करके पितृसत्तामक व्यवस्था को गति प्रधान करता है। इस नियंत्रण के कारण जहाँ उनकी पहचान देह के आधार पर हुई वहाँ उनका सम्मान, शील और चरित्र भी देह से जोड़ी जाने लगी। अर्थात स्त्रियों के देह पर जो सामाजिक मूल्य गढ़ी गयी है उसके विरुद्ध हिंसा करना सामाजिक रूप से उसे परास्त करने का प्रभावी माध्यम बन जाती है। यौन हिंसा, सार्वजानिक अपमान, चरित्र-हनन, अश्लील टिप्पणियाँ, निजी चित्रों का दुरूपयोग अथवा उसके वस्त्रों और आचरण पर प्रश्न उठाना उसके व्यक्तिगत हिंसा के रूप नहीं है, बल्कि वे सामाजिक व्यवस्था का लाभ उठाते है जिसमे स्त्री का सम्मान उसकी देह से जुड़ा हुआ माना जाता है। घरेलू हिंसा, दहेज-उत्पीडन आदि हिंसात्मक प्रक्रियाएँ भी इसी नियंत्रणकारी संरचना की अभिव्यक्तियाँ हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से स्त्री की देह को लक्ष्य बनाती हैं।

वही देह जिसे पितृसत्ता नियंत्रण और दमन का माध्यम बनाती है, स्त्री के प्रतिरोध का भी सबसे प्रभावशाली माध्यम बन सकती है। जब स्त्री अपनी देह पर आत्मनिर्णय का अधिकार स्थापित करती है, यौनिकता के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेती है, हिंसा के विरुद्ध सार्वजानिक रूप से आवाज़ उठाती है, तब वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती है। इसी कारण स्त्रीवादी विमर्श में देह को उत्पीड़न और प्रतिरोध—दोनों का केंद्रीय स्थल माना गया है। इस प्रकार स्त्री की देह केवल जैविक सत्ता नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अर्थों से निर्मित एक ऐसा विमर्श-क्षेत्र है, जहाँ सत्ता, नियंत्रण, प्रतिरोध और मुक्ति की प्रक्रियाएँ निरंतर क्रियाशील रहती हैं। "देह के जरिये प्रतिरोध की शुरुआत विश्व स्तर पर नारीवादी आन्दोलन की देन है।"[2]

स्त्री का देह जहाँ एक उपभोग की वस्तु की तरह देखा गया है वही देह को स्त्री कैसे प्रतिरोध की शक्ति बनाती है उसे इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। स्त्री की इसी सामाजिक और राजनीतिक प्रतिरोध को लेखक ने यहाँ 'देह का नक्सलवाद' बताया है।

लेखक ने कुछ वास्तविक घटनाओ और साहित्यिक संदर्भो का समन्वय कर इस अवधारणा को बेहतर ढंग से पुष्ट किया है—

मणिपुर की माताओं का प्रदर्शन (2004) : असम में थंगजाम मनोरमा के साथ हुए बलात्कार और हत्या के खिलाफ वृद्ध महिलाओं ने नग्न होकर प्रदर्शन किया। लेखक का मानना है कि इस विरोध ने पूरे देश को झकझोर दिया और देश के कठोर कानून पर पुनर्विचार की मांग को जन्म दिया।

राजकोट की पूजा चौहान का विद्रोह (2007) : प्रेम विवाह के बावजूद भी दहेज़ के कारण प्रताड़ित पूजा चौहान केवल अन्तः वस्त्र में, एक हाथ में बेसबॉल का डंडा और दूसरे में चूडिया लेकर सड़क पर आई। इस साधारण विरोध के कारण पुलिस और समाज को उसके ससुराल वालो के खिलाफ कार्रवाई करनी पड़ी।

महाश्वेता देवी की कहानी 'द्रौपदी' : कहानी की संथाल आदिवासी पात्र 'द्रौपदी' सामूहिक बलात्कार के बाद भी अपने झखमों और निर्वस्त्र शरीर को ही उत्पीड़क अधिकारी के सामने प्रतिरोध का सबसे बड़ा अस्त्र बनती है।

गीत चतुर्वेदी की कविता 'मदर इंडिया' : लेखक इस कविता को प्रतिरोध की अभिव्यक्ति मानते है। यह कविता स्त्रियों के भीतर के आघात और समाज में व्याप्त लज्जा को उजागर करती है।

इन सभी संदर्भो में स्त्री का नग्न देह न तो कामुक प्रदर्शन है और न असहाय की अभिव्यक्ति बल्कि देह को सीधे औजार की तरह इस्तेमाल किया गया है। स्त्री की देह पर जो शर्म और हया की पारंपरिक सांस्कृतिक नियम गढ़ी गयी है उस पर चुनौती देते हुए यह प्रतिशोध पितृसत्तात्मक सामाजिक और राजनीतिक धरातल पर क्रान्ति करती है। इस प्रकार, स्त्री देह एक दुर्बलता नहीं बल्कि क्रांति का एक उत्तम शस्त्र दिखाई देता है।

स्त्रियों के अधिकार के लिए कई आवाज़े उठाई गयी है। यह आवाज़े उनके हक़ के समर्थन में रहने की बहुत कोशिश की है। उनके शब्द तर्क-वितर्क से गुज़रकर कई रूढ़िवादी बाधाओं को पार करती आती है। अभिव्यक्ति की यह संघर्ष इसलिए अधिक है क्योंकि क़ानून और राजनीति की दुनिया में शब्दों और आवाजों को तोड़-मरोड़कर लोगों को गुमराह किया जा सकता है। सच को झूठ में बदला जा सकता है, शब्दों को दबाई जा सकती है। लोगो को पारदशी रूप में सच्चाई को देखने के लिए ही यहाँ स्त्रियों ने अपनी देह को शस्त्र बनाया। यह महाश्वेता देवी की कहानी के मुख्य स्त्री पात्र 'द्रौपदी' के प्रतिरोध द्वारा देखा जा सकता है। द्रौपदी अपने साथ बलात्कार होने का प्रतिरोध अपने घावों को कानून के सामने निर्वस्त्र होकर दिखाती है जो किसी भी झूठ को पीछा छोड़ सकती है।

इस लेख में लेखक ने प्रेम विवाह के संस्थागत सीमाओं पर भी प्रहार किया है— "...अपनी शुरुआत में यह प्रेम स्त्री और पुरुष को बराबरी के स्तर पर ला देता है।...पर, इसके तिरोहित होने की शुरुआत उसी क्षण हो जाती है जैसे ही यह यौनिक प्रेम विवाह के रूप में संस्थागत स्थिति ग्रहण करता है।"[3] प्रेम मानवीय संबंधों को जोड़ता है। उसका आधार किसी प्रकार के जाति, धर्म या वर्ग के भेदभाव पर नहीं बनता। भेदभाव ही मनुष्य को उंच-नीच का दर्जा देता है। प्रेम इन सामाजिक-

सांस्कृतिक मानदंड से परे है। इसलिए ही जब दो लोगों में प्रेम होता है तो वह प्रेम दोनों के स्तर को बराबरी में रखकर परस्पर सम्मान और आदर का भाव रखता है जैसा की होना चाहिए। लेकिन मनुष्य जब प्रेम को एक सांस्कृतिक ढांचे में ढाल देता है तो वह विवाह जैसी संस्था में परिणत हो जाती है। यह विवाह संस्था एक सामाजिक संरचना के तहत बनती है। इस संरचना में मनुष्यों में विविधता है, तौर-तरीके है, जिसमे प्रवेश करते ही प्रेम का स्वरुप उसके अनुरूप बदल जाता है। यह बदलाव इसलिए है क्योंकि समाज में जो स्त्री और पुरुष जेंडर है वह विवाह के बाद उनकी अलग-अलग भूमिकाये निभाने की मांग करती है। यह मांग स्त्री और पुरुष दोनों के स्तर को उंच- नीच बनाती है– "विवाह होते ही प्रेम की लोकतांत्रिकता हर तरह की श्रेणीबद्धता में फंसीं नज़र आने लगती है।"[4] पितृसत्तात्मक व्यवस्था के इस सामाजिक परंपरा में पुरुषों को 'पति-परमेश्वर' की भूमिका और उससे जुडी सत्ता प्राप्त होती है, जबकि स्त्रियों को पत्नी, बहू और गृहिणी जैसी भूमिका का पालन करने की अपेक्षा है। पुरुषों की भूमिका में जहाँ केवल एक जिम्मेदारी है वहां स्त्रियों की भूमिका में कई जिम्मेदारियाँ होने के बावजूद पति पर निर्भर होने की स्थिति में रहती है। जो सामाजिक नियम स्त्री-पुरुष के लिए असमान और अन्यायपूर्ण भूमिकाये तय करते है, वे नारीवादी विधिक सिद्धांत (Feminist Legal Theory) की मूल अवधारणा को रेखांकित करते है– "नारीवादी विधिक सिद्धांत, जिसे नारीवादी न्यायशास्त्र भी कहा जाता है, विधिक विद्वता और सक्रियता का एक क्षेत्र है जो यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार कानून स्त्रियों की अधीनता और पितृसत्तात्मक शक्ति संरचनाओ में योगदान देता है।"[5] इन सभी के फल स्वरुप ही जब प्रेम विवाह में तब्दील हो जाता है वहाँ द्वंद्व पैदा करता है। इससे कह सकते है कि प्रेम विवाह दो व्यक्तियों के सम्बन्ध के प्रश्न नहीं है बल्कि उस सामाजिक संरचना और उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था की है जिसमें समानता, सम्मानता का आभाव रहता है।

लेखक पूजा चौहान के सन्दर्भ में यही बात प्रस्तुत करते है। उसके जीवन में घरेलु हिंसा और मानसिक उत्पीडन का अनुभव यह दर्शाता है कि भारतीय समाज में विवाह संस्था पितृसत्तात्मक मूल्यों और लैंगिक असमानता से युक्त है। प्रेम-विवाह की विफलता केवल दो व्यक्तियों के बीच संबंधों के टूटने का परिणाम नहीं है, बल्कि उस सामाजिक संरचना का परिणाम है। इसी सामाजिक संरचना में इन संबंधों के टूटने की भी व्यवस्था यह संस्था द्वारा की गयी है। इस सन्दर्भ में लेखक तलाक सम्बन्धी व्यवस्था पर बात करते है और उनके सीमाओं की ओर ध्यान आकर्षित करते है। उनका कहना है कि भारतीय कानून प्रणाली विवाह को सामाजिक स्थायित्व के रूप में संरक्षित करने पर अधिक बल देती है, जिसके कारण तलाक की प्रक्रिया कई बार जटिल और कष्टकारी बनाती है। इसका तर्क यह दिया जाता है कि–"तलाक अगर आसान कर दिया गया तो विवाह संस्था पर बुरा असर पड़ेगा।"[6] भारत में विवाह को समाज की मूल संस्था मानते हुए उसकी निरंतरता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए यहाँ पर तलाक विवाह की स्थिरता, परिवार की सुरक्षा और सामाजिक व्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की बात प्रतीत होती है। लेकिन इसके पीछे की राजनीति को समझना अनिवार्य है। राजनीति इसलिए भी कह सकते है क्योंकि "राजनीति से अर्थ है ताकत और सत्ता संरचना जो रिश्तों में भी काम करती है, जो समाज में एक वर्ग को दूसरे पर प्रश्रय देती है। एक को श्रेष्ठ और एक को हीन बनाती है।"[7] यह केट मिलेट के 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' के आधार पर समझा जा सकता है। मिलेट का मूल तर्क है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्ध निजी नहीं, बल्कि राजनीतिक सम्बन्ध है। मिलेट के अनुसार "पुरुष द्वारा दूसरे सेक्स को कमतर आंकना राजनीति है। सत्ता केवल पुरुष के हाथ में हो और स्त्री उसके बनाए रास्ते पर चले यह राजनीति है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर अधिकार राजनीति है। सेक्सुअल राजनीति का केंद्रीय विचारे ऐसे संबंध स्थापित करने का है जहां सब बराबर हो।"[8] इस सन्दर्भ में तलाक को समझा जाए तो यह केवल विवाह के विघटन का भय नहीं बल्कि उस संस्थागत व्यवस्था में परिवर्तन का भय भी है, जो लम्बे समय से पितृसत्ता के सत्ता- संबंधों को गति प्रदान कर रही है। जब स्त्री के पास असमान, हिंसात्मक या अपमानजनक विवाह से बहार निकलने का सुलभ विकल्प होता है, तब विवाह स्वैच्छिक साझेदारी का सम्बन्ध बनने की दिशा में अग्रसर होता है। यह पितृसत्ता के विघटन का कारण तब बन सकती है।

इन सभी साजिश के लिए तलाक की लम्बी प्रक्रिया में जब यह तनावपूर्ण सम्बन्ध विवशतापूर्वक बनाये रखना पड़ता

है तब ऐसी स्थिति में उत्पीडन और गहरे असंतोष से बहार निकलना कठिन हो जाता है। तलाक को सरल बनाने की माँग का उद्देश्य विवाह संस्था को समाप्त करना नहीं है, बल्कि उसे अधिक लोकतांत्रिक, समानतामूलक और अधिकार-आधारित बनाना है।

विवाह और तलाक के इस जटिल संरचना से बचने के लिए आधुनिक पीढ़ी इसका वैकल्पिक व्यवस्था अपनाते है जैसे- 'लिव इन रिलेशनशिप, प्रेम करते हुए अकेले रहना का आग्रह, पारिवारिक कम्यून बनाकर रहने के प्रयोग' आदि। इन सभी का सार यही है कि आधुनिक मनुष्य ऐसे संबंधों की आकांशा करता है जिसमे निकटता और स्वतंत्रता दोनों में संतुलन स्थापित कर सके। इनकी तलाश में उनके संबंधों के स्वरुप बदलते रहेंगे।

आधार ग्रन्थ

दुबे, अभय कुमार, फुटपाथ पर कामसूत्र : नारीवाद और सेक्सुअलिटी : कुछ भारतीय निर्मितियाँ, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2020.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जायसवाल, रंजना, देह-विमर्श। प्रतिलिपि (Pratilipi)।
   उपलब्ध : https://hindi-pratilipi.com/read/देह-विमर्श-देह-विमर्श-मूलत7nrszcua&6k398o9j05y21f8
2. दुबे, अभय कुमार, फुटपाथ पर कामसूत्र : नारीवाद और सेक्सुअलिटी : कुछ भारतीय निर्मितियाँ, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2020, पृ. सं. 298.
3. "वही", पृ. सं. 290.
4. "वही", पृ. सं. 290.
5. Fineman, Martha Albertson (2005). "Feminist Legal Theory". Journal of Gender, Social Policy & the Law. 13 (1). SSRN 2132233
6. "वही", पृ. सं. 290.
7. सुजाता, 'केट मिलेट की 'सेक्शुअल पॉलिटिक्स'।' फेमिनिज़म इन इंडिया (हिंदी), 12 अगस्त 2019
   https://hindi.feminisminindia.com/2019/08/12/sexual-politics-kate-millett-hindi/
8. शर्मा, भावना, 'केट मिलेटः जिनके लेखन ने नारीवाद की दूसरी लहर को सशक्त किया।' फेमिनिज्म इन इंडिया (हिंदी), 18 जुलाई 2022।
   https://hindi.feminisminindia.com/2022/07/18/kate-millet-feminist-profile-in-hindi/

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

श्रीधर पाठक : हिंदी स्वच्छंदतावाद के प्रवर्तक

दीक्षा राय
(शोधार्थी), हिन्दी भवन, भाषा भवन
विश्व - भारती विश्वविद्यालय
शांतिनिकेतन, पश्चिम - बंगाल

शोध सार

हिंदी साहित्य के आधुनिक विकासक्रम में कुछ ऐसे रचनाकार हुए हैं जिन्होंने केवल उत्कृष्ट साहित्य-सृजन ही नहीं किया, बल्कि साहित्य की दिशा बदलने का कार्य भी किया। श्रीधर पाठक ऐसे ही युग-प्रवर्तक कवि हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका नाम विशेषतः स्वच्छंदतावाद के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित है। उन्होंने उस समय हिंदी कविता को नई दिशा प्रदान की जब साहित्य एक ओर रीतिकालीन रूढ़ियों के अवशेषों से प्रभावित था और दूसरी ओर द्विवेदी युग की नैतिकता तथा उपयोगितावाद की ओर अग्रसर हो रहा था। श्रीधर पाठक ने इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच एक ऐसे नवीन काव्य-बोध का सूत्रपात किया जिसमें प्रकृति, भावुकता, वैयक्तिक अनुभूति और स्वतंत्र कल्पना का समन्वय था।इन्ही काव्य प्रवृतियों कि कारण आचार्य शुक्ल श्रीधर पाठक को सच्चे स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं।

स्वच्छंदतावाद हिंदी साहित्य की वह धारा है जिसमें कवि अपने हृदय की स्वाभाविक अनुभूतियों को बिना किसी कृत्रिम बंधन के व्यक्त करता है। इस धारा में मनुष्य, प्रकृति और भाव-जगत के बीच आत्मीय संबंध स्थापित होता है। इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल लिखते हैं—"जब पंडितों की भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुयी लोक सभा से दूर होपड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्यपरम्परा में नया जीवन डालता है।"[1] श्रीधर पाठक की कविता में यह चेतना स्पष्ट रूप से विद्यमान है। इसी कारण हिंदी आलोचना ने उन्हें स्वच्छंदतावाद का प्रथम प्रतिनिधि माना।

बीज शब्द : स्वछंद, स्वच्छंदतावाद, श्रीधर पाठक, स्वच्छंदतावादी काव्य।

स्वच्छंदतावाद : अर्थ, स्वरूप और पृष्ठभूमि

स्वच्छंदतावाद शब्द दो भागों से मिलकर बना है—'स्व' और 'च्छंद'। अर्थात् अपने स्वभाव या अपनी इच्छा के अनुसार चलने की प्रवृत्ति। साहित्य में इसका अर्थ है—पूर्व निर्धारित नियमों, रूढ़ियों और परंपरागत बंधनों से मुक्त होकर रचना करना। यूरोपीय साहित्य में यह धारा फ़्रांस की क्रांति से प्रभावित होकर रोमांटिक मूवमेण्ट के रूप में विकसित हुई। वहाँ इस आंदोलन ने तर्कवाद और शास्त्रीय अनुशासन के विरुद्ध भाव, कल्पना और प्रकृति को महत्व दिया। विलियम वड्र्सवर्थ, सैमुअल टेलर कालरिज तथा पर्सी बिस्से शैली जैसे कवियों ने रोमानी चेतना को स्वर दिया। जिसमे विलियम वड्र्सवर्थ को स्वच्छंदता वाद का प्रवर्तक माना गया और इनकी काव्यकृति लिरिकल बैलेड को स्वच्छंदतावाद का घोषणा पत्र स्वीकार किया गया है।

हिंदी साहित्य में भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से स्वच्छंदतावाद के दर्शन काव्य में होने लगता है। भारतेंदु युग में

इसका सूत्रपात होता है और इस युग के अन्य कवियों में भी स्वच्छंद प्रवृति का दर्शन होता है किंतु वो अभी भी रीतिकालीन श्रृंगारिकता, वही पुराने घिसे पीते छन्द, विषय वस्तु में नवीनता नहीं तथा ब्रज भाषा से भी उनका काव्य पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया था। इस युग में श्रीधर पाठक ही ऐसे कवि हुए जिनके काव्य में ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग, महलों और श्रृंगार की चकाचौंध से बाहर आकर ग्रामीण तथा धरातल की बातों को विषय वस्तु बनाकर प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। इसी संदर्भ में रामचंद्र मिश्र अपनी पुस्तक में लिखते हैं–"पंडित श्रीधर पाठक स्वच्छंदतावादी क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ अग्रदूत थें। उनके द्वारा कितनी ही स्वच्छंदतावादी रचनाएं प्रस्तुत की गयी। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी उनके मार्ग का अनुसरण कर स्वच्छंदतावादी साहित्य का निर्माण किया।"[2] इस आधार पर हम कह सकते हैं कि स्वच्छंदतावाद का सच्चा रूप श्रीधर पाठक के काव्य में देखने को मिलता है।

स्वच्छंदतावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

- प्रकृति के प्रति गहरा प्रेम
- व्यक्तिवाद
- भावप्रधानता
- कल्पना की स्वतंत्र उड़ान
- सौंदर्य चेतना
- रूढ़ियों का विरोध
- संवेदनशीलता और करुणा

इन सभी विशेषताओं का प्रारंभिक और प्रभावशाली रूप श्रीधर पाठक के काव्य में मिलता है।

श्रीधर पाठक का सामान्य परिचय

श्रीधर पाठक का जन्म 1858 ईस्वी में हुआ। यह काल भारत के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का समय था। अंग्रेज़ी शासन के कारण भारतीय समाज नई चेतना से परिचित हो रहा था। शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भी नए विचार प्रवेश कर रहे थे। पाठक जी ने संस्कृत, हिंदी तथा अंग्रेज़ी साहित्य का गहन अध्ययन किया। संस्कृत काव्य की सौंदर्यपरक परंपरा और अंग्रेज़ी रोमानी कविता–दोनों का प्रभाव उनके साहित्यिक संस्कार में उपस्थित था। इस द्वंद्व और समन्वय ने उनके भीतर नई काव्य-दृष्टि को जन्म दिया।

उनकी साहित्यिक साधना का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि उन्होंने ऐसे समय में नई राह बनाई जब हिंदी कविता अभी आधुनिक संवेदना के पूर्ण विकास तक नहीं पहुँची थी।

साहित्यिक पृष्ठभूमि और युगीन परिस्थिति

किसी भी वाद या युग की समझ बनने के लिए ये आवश्यक हो जाता है की तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थी? अतः स्वच्छंदतावाद को समझने कि लिए उसकी पहले साहित्यिक सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति एवं परिस्थिति को जानना आवश्यक हो जाता है।

जिस काल में स्वच्छंदतावाद का उदय हुआ था तत्कालीन समय उन्नीसवीं century शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा भारतेंदु युग चल रहा था। जिसमें भारतेंदु युग में भारतेंदु समेत ऐसे कवि थे जो काव्य रचना तो कर रहे थे लेकिन उसकी काव्य में किसी भी प्रकार से नवीनता का दर्शन नहीं हो रहा था। उनके काव्य का अधिकांश भाग में रीतिकालीन श्रृंगारिक शब्दों की सजावट तथा पुरानी ब्रज भाषा को लेकर ही अधिकांश काव्य की सर्जना की जा रही थी जिस कारण उनका काव्य तो पुरानी साहित्यिक रूढ़ियो और परंपराओं को लेकड़ा आगे बढ़ रहा था। उनका काव्य रीतिकाल से से ज़्यादा प्रभावित था।

ये तो रही साहित्यिक पृष्ठभूमि जबकि राजनैतिक पृष्ठभूमि अत्यधिक महत्वपूर्ण थी क्योंकि हमारा देश तो विदेशी शासन

के चंगुल में था और सामान्य जनता उनकी कठोर शासन और कूटनीति से कराह करा रहीं थी। तब यह अति आवश्यक हो जाता है कि हमारे युगदृष्टा कवि अपने समाज की स्थिति को भाँपते हुए अपने साहित्यिक दायित्व का निर्वाह करते हुए समाज में व्याप्त बुराइयों कुरीतियों एवं शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाये और जनमान्य का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्हें जागरूक करें।इस क्रम में भारतेंदु युगीन साहित्यकारों में प्रयास तो किया किंतु इस विषय को वो अपना मुख्य विषय नहीं बना पाए। जिसमे भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य को राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना और आधुनिकता से जोड़ा। फिर भी कविता में भावात्मक स्वतंत्रता सीमित थी।

लगभग यही स्थिति द्विवेदी युग में भी रही जब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को अनुशासन, भाषा-शुद्धि और उपयोगिता से जोड़ा। इससे हिंदी गद्य और कविता का विकास हुआ, परंतु कविता में भावुकता पर नियंत्रण भी बढ़ा। ऐसे समय में श्रीधर पाठक ने कविता को फिर से हृदय की ओर मोड़ा और इन्ही के काव्य में स्वछन्दत प्रवृति के दर्शन भरपूर मात्रा में मिलता है।

श्रीधर पाठक की काव्य-दृष्टि

श्रीधर पाठक की काव्य-दृष्टि का केंद्र मानवीय संवेदना है। वे कविता को केवल शिक्षा या उपदेश का माध्यम नहीं मानते, बल्कि अनुभूति का कलात्मक रूप समझते हैं।उनके लिए कविता का उद्देश्य है— हृदय की संवेदना जगाना, सौंदर्य का अनुभव कराना, प्रकृति से आत्मीय संबंध स्थापित करनाऔर जीवन को अधिक मानवीय बनाना।उनकी कविता में यही दृष्टि लगातार दिखाई देती है। इसी संदर्भ में 'रघुवंश' जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं की-"श्रीधर पाठक एक प्रकार से सर्वप्रथम हिंदी काव्य में भावाभिव्यक्ति अपने प्रगीति काव्य में कीहै।निश्चय ही उन्होंने अग्रेजी रोमांटिक काव्य का अध्ययन किया है पर युग परिवेश ने भी उनकी इस सोच का निर्माण किया है।"[3] यही से उनके काव्य में सामाजिकता का प्रवेश होता है।

प्रकृति-प्रेम : स्वच्छंदतावाद का केंद्रीय तत्व

श्रीधर पाठक का प्रकृति-चित्रण हिंदी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनसे पहले प्रकृति अधिकतर शृंगार की पृष्ठभूमि या धार्मिक प्रतीक के रूप में आती थी। पाठक ने प्रकृति को स्वतंत्र अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया।उनकी दृष्टि में प्रकृति जीवित है—वह बोलती है, मुस्कराती है, दुखी होती है, आनंद देती है। इसी संदर्भ में प्रकृति की तुलना स्वर्ग से करते हुए वे कश्मीर सुषमा नामक काव्य सग्रह में लिखते हैं—

"यहीं स्वर्ग सुरलोक यहीं सुरकनन सुंदर,
यहीं अमरन को ओक यहीं कहूँ बसत पुरंदर।"[4]

अपनी धरती को स्वर्ग से भी सुंदर चित्रित करते हुए वे, पर्वतों की विशालता, वनों की नीरवता, झरनों की संगीतात्मकता और फूलों की कोमलता को अत्यंत आत्मीयता से चित्रित अपने काव्य में करते है।

वैयक्तिकता और आत्माभिव्यक्ति

स्वच्छंदतावाद का एक प्रमुख आधार है—व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता। श्रीधर पाठक ने इस तत्व को हिंदी कविता में प्रतिष्ठित किया। उनकी कविता सामूहिक रूढ़ अभिव्यक्ति से हटकर निजी अनुभव की अभिव्यक्ति बनती है। वे अपने अनुभव, सुख-दुख, संवेदनाओं और मनःस्थितियों को काव्य में स्थान देते हैं। पाठक जी एडविन और एंजेलिना के प्रेम का चित्रण द्वारा अपने व्यक्तिगत अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। पाठक जी को कल्पना वाला प्रेम स्वीकार्य नहीं है उन्हें तो सहज साधारण प्रेम स्वीकार है जो मानवीय व्यवहारों से परिपूरित हो। इसी संदर्भ में अंजलेना द्वारा पाठक जी कहलवाते हैं—

"जाकर वहाँ जगत को मैं भी उसी भाति बिसराऊँगी,
देह गेय को देय तिलांजलि प्रिय से प्रीति निभाऊँगी।"[5]

रीतिकाल में कवि स्वयं प्रायः अनुपस्थित रहता था; पाठक के यहाँ कवि उपस्थित है—अनुभव करता हुआ, महसूस करता हुआ, प्रतिक्रिया देता हुआ। यही स्वच्छंदतावादी कविता का प्रारंभिक संकेत है।श्रीधर पाठक की कल्पना शक्ति अत्यंत समृद्ध है। वे साधारण दृश्य को भी काव्यात्मक बना देते हैं। उनके यहाँ कल्पना का प्रयोग यथार्थ से पलायन नहीं बल्कि यथार्थ का सौंदर्य-विस्तार है। वे प्रकृति के सूक्ष्म दृश्यों में भी सौंदर्य खोज लेते हैं। यह काव्य-कल्पना पाठक को दृश्य के भीतर ले जाती है।

भावुकता और करुणा

श्रीधर पाठक के काव्य में भावुकता का विशिष्ट स्थान है। यह भावुकता दुर्बलता नहीं बल्कि संवेदनशीलता का परिचायक है।उनकी कविता में—करुणा, प्रेम, सहानुभूति, सौंदर्य बोध तथा मानवीय आत्मीयता, प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं।

वे मनुष्य के दुःख को महसूस करते हैं। प्रकृति के प्रति भी उनका संबंध संवेदनात्मक है।

भाषा की स्वच्छता और काव्यात्मकता

श्रीधर पाठक की भाषा अत्यंत परिष्कृत है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को काव्योपयोगी सिद्ध करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। उनकी भाषा की विशेषताएँ हैं— लयात्मकता, चित्रात्मकता, मधुरता, भावानुकूलता तथा स्वाभाविक प्रवाह, वे संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करते हैं, किंतु भाषा बोझिल नहीं होती। इसी संदर्भ में उनकी कुछ पंक्तिय दृष्टव्य हो जाती हैं—

"निज भाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग,
करहु सकल विषयान विषै निज भाषा उपजोग।"[6]

रूढ़ियों के विरुद्ध नवीन चेतना

श्रीधर पाठक का सबसे बड़ा योगदान साहित्यिक रूढ़ियों को चुनौती देना है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि कविता केवल अलंकार प्रदर्शन नहीं है। उन्होंने काव्य को जीवन से जोड़ा। उनकी नवीनता निम्न रूपों में प्रकट होती है—पारंपरिक विषयों से अलग चयन, प्रकृति-केंद्रित दृष्टि, व्यक्ति-केंद्रित अनुभव, भावप्रधान शैली तथा सौंदर्यपरक चेतना।

श्रीधर पाठक के काव्य में विषय वस्तु के संदर्भ में नवीनता का दर्शन तब देखते हैं जब इनका काव्यमें प्रकृति वर्णन और सौंदर्य सत्ता से दूर हटकर तत्कालीन सामाजिक स्थिति को देखते हुए अपनी संस्कृति और सभ्यता का गौरव गान करते जनआंदोलित काव्य लिखना प्रारंभ करते हैं। अपने देश के नौजवानों को प्रेरित और उत्साहित करने के लिए प्रेरणा दायक गीतों का सृजन करने से पीछे नहीं हटते है।इसी संदर्भ में इनके भारतोत्थान नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखित है—

"भारत चेतहु नींद निवारों,
बीती निशा उदित भए डिनमनी,
कब को भयो। सकारौ
X- X- X- X- X-
गहरी नींद परे मत सोवहु बात हमारी मनाहु।"[7]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आ० रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या- ४१०।
2. रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छंदतावादी काव्य, रणजीत प्रिंटर एंड पब्लिशर्ष, भूमिका।

3. रघुवंश, श्रीधर पाठक, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण-1985, भूमिका।
4. रामचंद्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छंदतावादी काव्य, रणजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिसर्स, पृष्ठ- २८५।
5. रघुवंश, श्रीधर पाठक, साहित्य अकादमी, पृष्ठ- ३६।
6. रामचंद्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छंदतावादी काव्य, रणजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, पृष्ठ- २६६।
7. रघुवंश, श्रीधर पाठक, साहित्य अकादमी, पृष्ठ- ३७।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

विकसित भारत की परिकल्पना में उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहरों का योगदान

डॉ. जया नैथानी
शोध निर्देशिका असिस्टेंट प्रोफेसर
(राजनीति शास्त्र विभाग)
राजकीय मोती राम बाबू राम स्नातकोत्तर
महाविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

गीता रावत
शोधार्थिनी
स्वर्गीय श्री जयदत्त वैला स्वतंत्रता संग्राम सेनानी,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रानीखेत अल्मोड़ा

सारांश- उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर विकसित भारत बनाने की परिकल्पना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह धरोहरें न केवल राज्य की अद्वितीय पहचान को बनाए रखती हैं, बल्कि राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक विविधता, और सतत विकास को भी बढ़ावा देती हैं।

उत्तराखंड की लोक संस्कृति राज्य की सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक एकता और पारंपरिक ज्ञान का आधार है। यह स्थानीय रीति -रिवाजों, लोक कला, संगीत नृत्य और हस्तशिल्प के माध्यम से संरक्षित है। लोक संस्कृति सामुदायिक भावना को प्रोत्साहित करती है, पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में मदद करती है और युवाओं को अपनी जड़ों से जोड़ती है। इसके संरक्षण से न केवल संस्कृति धरोहरों की सुरक्षा होती है, बल्कि आर्थिक विकास और आजीविका के साधन भी उत्पन्न होते हैं, राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्तराखंड की सांस्कृतिक विविधता भारत की समृद्धि को दर्शाती है। यह धरोहर न केवल राज्य की पहचान है, बल्कि भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को भी वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत करती है।

धार्मिक पर्यटन से अर्थव्यवस्था मजबूत होती है, जबकि लोक कला और शिल्प रोजगार के अवसर बढ़ाते हैं। इसके अलावा पारंपरिक ज्ञान सतत विकास और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सहायक है। जिससे समग्र रूप से एक सशक्त और समृद्ध भारत का निर्माण होता है।

इन धरोहरों के संरक्षण और संवर्धन से भारत की सांस्कृतिक-विविधता और समृद्धि को बनाए रखते हुए एक विकसित राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर विकसित भारत की परिकल्पना में महत्वपूर्ण है, लेकिन इन धरोहरों के संरक्षण में कई समस्याएं है। पर्यावरणीय क्षरण, संस्कृति का व्यवसायीकरण और पारंपरिक ज्ञान का ह्रास जैसी चुनौतियों का समाधान किए बिना इन धरोहरों का सही संरक्षण और उपयोग करना मुश्किल हो सकता है। सरकार को सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण के लिए ठोस नीतियां बनानी चाहिए।इसके लिए स्थानीय समुदाय सरकार और संगठनों के बीच सहयोग और समर्पण की आवश्यकता है, ताकि एक विकसित और सशक्त भारत की दिशा में आगे बढ़ सकें।

इस शोध पत्र के आधार पर उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहरों को संजोए हुए और विकसित भारत की परिकल्पना की समृद्धि और संरक्षण के पहलुओं पर गहराई से विचार किया जाएगा।

प्रस्तावना -उत्तराखंड जिसे श्देवभूमिश के नाम से भी जाना जाता है, भारत के उत्तर में स्थित एक अद्भुत राज्य है,

जिसकी सांस्कृतिक धरोहर अत्यंत समृद्ध और विविधता पूर्ण है। यहां की धार्मिक स्थल, पर्वतीय जीवन शैली, लोक कला, संगीत नृत्य, और पारंपरिक शिल्प कला इस राज्य की सांस्कृतिक धरोहर न केवल स्थानीय लोगों के जीवन का हिस्सा है, बल्कि यह पूरे भारत की सांस्कृतिक विविधता में एक महत्वपूर्ण योगदान देती है। भारत के विकास की परिकल्पना में सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और प्रचार प्रसार अत्यंत आवश्यक है। सांस्कृतिक धरोहर समाज को एकजुट करने संस्कृति विविधता को समझने और राष्ट्रीय पहचान को सशक्त करने में मदद करती है। उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर इसके धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों, परंपराओं और पर्वों के माध्यम से परिकल्पना का महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकती है।

इस शोध पत्रिका का उद्देश्य उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर के महत्व को समझना और यह देखना है कि यह कैसे विकसित भारत बनाने की दिशा में योगदान कर सकती है। इस प्रक्रिया में राज्य की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार के माध्यम से न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को लाभ पहुंचाया जा सकता है, बल्कि संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक विरासत को भी किया जा सकता है।

कीवर्ड - उत्तराखंड, सांस्कृतिक धरोहर ,देवभूमि सांस्कृतिक विविधता, सांस्कृतिक पहचान, पर्वतीय जीवन शैली, सांस्कृतिक जागरूकता।

शोध के उद्देश्य- इस शोध के उद्देश्य निम्न है।

1. उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर जिसमें धार्मिक स्थल, लोक कला, संगीत नृत्य, और पारंपरिक शिल्प शामिल है, का विशेष अध्ययन करना।

2. राज्य की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के लिए वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।

3. उत्तराखंड के सांस्कृतिक धरोहर को भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था के विकास को कैसे योगदान दे सकती है यह समझना।

4. सांस्कृतिक धरोहर के माध्यम से पर्यटन को बढ़ावा देने और स्थानीय रोजगार सृजन के अवसर की पहचान करना।

5. उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करने और उसे बढ़ावा देने की उपायों की पहचान करना।

6. सांस्कृतिक धरोहर के अंतर्गत सामाजिक एकता राष्ट्रीय पहचान और सांस्कृतिक विविधता का अध्ययन करना।

इन उद्देश्यों के माध्यम से यहां शोध उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर को समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक कदमों को उजागर करेगा और यह दिखाएगा कि कैसे यह भारत के विकास के उद्देश्य को साकार करने में सहायक हो सकती हैं।

अध्ययन की आवश्यकता - भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने की परिकल्पना में सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और संवर्धन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उत्तराखंड की संस्कृति धरोहर को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने की आवश्यकता है।इस अध्ययन के माध्यम से उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर के महत्व को समझना और उसके संरक्षण के लिए आवश्यक कदमों की पहचान करना न केवल राज्य, बल्कि पूरे देश के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

साहित्य पुनरावलोकन-'विकसित भारत की परिकल्पना में उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहरों का योगदान' पर साहित्य पुनरावलोकन करते समय हम विभिन्न शोध, लेख, किताबें, और रिपोर्ट्स का अध्ययन करते हैं, जिनमें उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर उसके संरक्षण और भारतीय विकास में भी उसकी भूमिका पर चर्चा की गई है। इस संदर्भ में कुछ प्रमुख बिंदुओं पर ध्यान दिया जा सकता है।

'उत्तराखंड की लोक संस्कृति और परंपराएं' (रावत, 2018) के अनुसार उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर न केवल स्थानीय समुदाय के लिए, बल्कि पूरे भारत के लिए अद्भुत धरोहर है।

'भारत में सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण : समस्याएं और समाधान' (शर्मा, 2019) के अनुसार सांस्कृतिक धरोहरों के नुकसान और उनके संरक्षण के लिए विभिन्न प्रयासों पर चर्चा की गई है।

'सांस्कृतिक पर्यटन और ग्रामीण विकास' (जैन, 2016) के अनुसार सांस्कृतिक धरोहर और पर्यटन के बीच एक गहरा

संबंध है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दे सकता है।

'भारत में सांस्कृतिक धरोहर और राष्ट्रीय पहचान' (गुप्ता,2019) में यह कहा गया की सांस्कृतिक धरोहर न केवल समाज की पहचान बनाती है, बल्कि राष्ट्र की एकता और विविधता को भी प्रदर्शित करती है। उत्तराखंड की संस्कृति धरोहरों का संरक्षण भारतीय संस्कृति की समृद्धि में योगदान है।

'सांस्कृतिक धरोहर और समाज पर उसका प्रभाव' (शर्मा,2020) के अनुसार संस्कृति धरोहर समाज को जोड़ने, सामाजिक एकता को बढ़ावा देने और विकास के मार्ग को प्रोत्साहित करने का काम करती है।

शोध परिकल्पना - शोध कार्य को सफलतापूर्वक संपादित करने के लिए परिकल्पनाओं का निर्माण करना कि आवश्यक है।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं निम्न है।

1. उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण के समग्र विकास को प्रस्तुत करना।
2. उत्तराखंड के सांस्कृतिक और प्राकृतिक स्थलों पर सतत पर्यटन नीति को बढ़ावा देना।
3. सांस्कृतिक शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम के अध्ययन को बढ़ावा देना।
4. उत्तराखंड की पारंपरिक हस्तशिल्प,लोक कला और शिल्प को बढ़ावा देना।
5. सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के लिए सरकारी और निजी संगठनों के बीच साझेदारी को बढ़ावा देना।
6. उत्तराखंड के सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के अंतर्गत समस्याओं और चुनौतियों का अध्ययन करना।

परिसीमन- इस शोध में वर्तमान संदर्भ उत्तराखंड के संस्कृति धरोहर के संरक्षण के अंतर्गत है। उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और विकास में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसमें तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर अध्ययन नहीं हुआ है, इसलिए इस विषय को चुना गया है इस शोध पत्र के आधार पर उत्तराखंड की संस्कृति धरोहर के विषय का अध्ययन किया जाएगा।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक और वर्णनात्मक शोध प्रविधि पर आधारित होगी। इसमें प्राथमिक तत्वों के आधार पर सूचनाओं को संकलन कर प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर उत्तराखंड के सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के विषय में अध्ययन किया जाएगा।

समस्याएं -उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण विकास की समस्या को सामना कर रहा है। निम्न में इन समस्याओं का विवरण दिया गया है।

1-आधुनिकरण और शहरीकरण- आधुनिक जीवन शैली और शहरीकरण के कारण पारंपरिक सांस्कृतिक प्रथाएं और मान्यताएं धीरे-धीरे लुप्त हो रही है, जिससे सांस्कृतिक धरोहर के प्रति अनभिज्ञता बढ़ रही है।

2-सांस्कृतिक पहचान में विविधता- उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर में गढ़वाल और कुमाऊं क्षेत्र की अलग-अलग पहचान और परंपरा शामिल है, इन दोनों क्षेत्रों की संस्कृति धरोहरों के बीच सामंजस्य स्थापित करना चुनौती पूर्ण हो सकता है।

3- पर्यावरण संकट -उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर अक्सर पर्यावरणीय संकटों के साथ जुड़ी होती है, जैसे जलवायु परिवर्तन, बाढ़, भूस्खलन आदि।इन प्राकृतिक आपदाओं से सांस्कृतिक स्थलों और उनकी धरोहरों को नुकसान पहुंच सकता है।

4-सरकारी नीतियों में असंगति- सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के लिए बनाए गए सरकारी नित्य कभी-कभी कमजोरी प्रभावहीन होती है। इनमें कई संस्थाएं काम करती है, लेकिन उनमें आपसी समन्वय की कमी होती है।

5- समाज में बदलाव -पारंपरिक जीवन शैली और सांस्कृतिक धरोहरों को बढ़ावा देने की कोशिशें के बावजूद, आधुनिकता के प्रभाव में कई स्थानीय लोग अपने परंपराओं को छोड़ने की ओर बढ़ रहे हैं।

6 -धरोहर का संरक्षण और संवर्धन में कठिनाइयां- सांस्कृतिक धरोहर की पहचान और उसके संरक्षण के लिए

पर्याप्त समय नहीं मिल पाता, विभिन्न तत्वों का अध्ययन करना और उन्हें सहेजने के लिए लंबी अवधि की आवश्यकता होती है।

7-स्थानीय समुदाय की भागीदारी की कमी - सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण में स्थानीय समुदाय की भागीदारी सीमित हो सकती है, उन्हें इस प्रक्रिया में शामिल नहीं किया जाता है, जिससे सांस्कृतिक धरोहर के प्रति उनका लगाव कम हो जाता है।

8-पर्यटन के नकारात्मक प्रभाव -पर्यटन के कारण प्राकृतिक और सांस्कृतिक धरोहर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अव्यवस्थित और अनियंत्रित पर्यटन से पारिस्थितिकी तंत्र, वन्य जीवों और सांस्कृतिक धरोहरों को नुकसान नुकसान हो सकता है।

9- युवाओं में जागरूकता की कमी- युवा पीढ़ी में अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूकता की कमी है। पारंपरिक कला, संस्कृति और धरोहर के प्रति उनका मोह घट रहा है, जो भविष्य में धरोहर को खतरे में डाल रहा है।

10 -संस्थाओं की कमी- सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने और संवर्धन करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों की कमी हो सकती है, सरकारी और निजी संस्थाओं की ओर से पर्याप्त फंडिंग ना मिल पाना एक बड़ी समस्या हो सकती है।

सुझाव- इस शोध के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए जा सकते है, जो सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और इसके भारत के विकास में योगदान को बढ़ावा देने के लिए सहायक है।

1- संस्कृति धरोहर के संरक्षण में स्थानीय समुदाय की भागीदारी बढ़ानी चाहिए, उन्हें सांस्कृतिक परंपराओं के महत्व के बारे में जागरूक किया जाए, ताकि वे स्वयं को अपनी धरोहर को सहेजने भेजने में सक्रिय भूमिका निभा सकें।

2- उत्तराखंड के सांस्कृतिक और प्राकृतिक स्थलों पर पर्यटन के दबाव को नियंत्रित करने के लिए सतत पर्यटन की नीति अपनानी चाहिए। इससे पर्यावरण और सांस्कृतिक धरोहर दोनों की रक्षा की जा सकेगी।

3- स्कूल और कॉलेजों में सांस्कृतिक धरोहर, परंपराओं और लोक कला पर आधारित शिक्षा को अनिवार्य करना चाहिए। इससे नई पीढ़ी में अपनी सांस्कृतिक पहचान और धरोहर के प्रति सम्मान बढ़ेगा।

4- सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और संवर्धन के लिए स्पष्ट प्रभावी नीतियां बनानी चाहिए ।इन नीतियों की कार्यान्वयन में समन्वय की कमी को दूर किया जाना चाहिए ताकि इन योजनाओं का सही तरीके से पालन हो सके।

5- उत्तराखंड की पारंपरिक हस्तशिल्प, लोक कला और शिल्प को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रदर्शनियों और मेले आयोजित किए जाए। स्थानीय कलाकारों और कारीगरों के काम को दुनिया भर में पहचान दिलाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

6- सांस्कृतिक धरोहर की डिजिटल रूप में रिकॉर्डिंग और ऑनलाइन संग्रहण से इसे भविष्य के लिए सुरक्षित किया जा सकता है, और इसके अलावा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का निर्माण किया जाए, जहां लोग विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।

7- उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर पर निरंतर शोध की आवश्यकता है, ताकि समय के साथ-साथ इसके बदलाव और समस्याओं को समझा जा सके।

8- सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के लिए सरकारी और निजी संगठनों की भी साझेदारी स्थापित की जानी चाहिए जैसे दोनों पक्ष मिलकर इस कार्य में योगदान दे सके।

9- राज्य सरकार को सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और संवर्धन के लिए विशेष योजना बनानी चाहिए ।इन योजनाओं में सांस्कृतिक स्थलों की मरम्मत, संरक्षण और प्रचार के वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

10-राज्य स्तर पर सांस्कृतिक धरोहर के महत्व को लेकर जागरूक अभियान चलाए जाने चाहिए ताकि लोग इसके संरक्षण के महत्व को समझ सके और उसमें सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

निष्कर्ष - उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहरों का महत्व न केवल राज्य के ऐतिहासिक और संस्कृति पहचान को प्रस्तुत करता है, बल्कि यह भारत के समग्र विकास में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर में उसके पारंपरिक कला, लोक संगीत,धार्मिक स्थल, और सांस्कृतिक परंपरा शामिल है जो उसकी सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती हैं।

हालांकि इस धरोहर को आधुनिकता, शहरीकरण, और पर्यटन के बढ़ते दबाव के कारण संकट का सामना करना पड़ रहा है। संरक्षण और संवर्धन की योजनाओं में वित्तीय, प्रशासनिक, और सामाजिक चुनौतियों के सामने आती है। युवा पीढ़ी में जागरूकता की कमी, सरकार की नीतियों में असंगति, और स्थानीय समुदाय की सक्रिय भागीदारी का अभाव भी इस प्रक्रिया को प्रभावित कर रहा है।

फिर भी धरोहर के संरक्षण संरक्षण और संवर्धन के लिए ठोस कदम उठाए जा सकते हैं। यदि स्थानीय समुदाय, सरकार, और सांस्कृतिक संस्थाओं के बीच समन्वय और साझेदारी स्थापित की जाए तो इस धरोहर को सुरक्षित रखा जा सकता है। सांस्कृतिक शिक्षा, जागरूकता अभियान, सतत पर्यटन, और प्रौद्योगिकी का प्रयोग इस प्रक्रिया को सदृढ़ करने में सहायक हो सकता है, इसके साथ ही सांस्कृतिक धरोहर के समग्र विकास में निवेश और वित्तीय सहायता भी आवश्यक है।

अंततः उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर को को संरक्षित करके उसे एक प्राचीन धरोहर से विकसित भारत की पहचान परिवर्तित किया जा सकता है। यह न केवल राज्य की पहचान को मजबूत करेगा, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विविधता और धरोहर की वैश्विक पहचान में भी योगदान देगा।

संदर्भ में ग्रंथ सूची

नंदन, नंद सुशील उत्तराखंड की संस्कृति : एक अध्ययन, देहरादून, काशी प्रेस 2019

सिंगल, राजेश संस्कृति धरोहर का संरक्षण' भारत में चुनौतियां और अवसरष्नई दिल्ली मणिपाल पब्लिशिंग, 2020

चंद्र, हरि सिंह 'उत्तराखंड की लोक कला संस्कृति', देहरादून पेंग्विन इंडिया 2021

पंत, किरण 'उत्तराखंड की संस्कृति दरबार और उसका संरक्षण' सांस्कृतिक अध्ययन 2020

रावत, संजय 'पर्यटन का प्रभाव उत्तराखंड की संस्कृति धरोहर पर' 2021

उत्तराखंड राज्य पर्यटन विभाग, 'उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर एक संक्षिप्त विवरण' देहरादून उत्तराखंड सरकार 2022

तिवारी, प्रीति 'उत्तराखंड के धार्मिक धरोहर दिल्ली' शैक्षिक प्रकाशन, 2022

मेहता, आराधना 'सांस्कृतिक धरोहर का आर्थिक विकास में योगदान' विकास अध्ययन पत्रिका 2022

जोशी, विमल 'उत्तराखंड की पारंपरिक कला और उसका संरक्षण' भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन 2023

शर्मा, रवि 'उत्तराखंड की संस्कृति धरोहर का वैश्विक संदर्भ' में 2023

Beyond Monetary Stability: Role of Reserve Bank of India in the Post-Pandemic Era

Dr. Satyawan Jatain
Associate Professor
GPGCW Rohtak, Haryana

Abstract

The role of central banks has undergone a profound transformation during the past two decades, particularly following the Global Financial Crisis of 2008, the COVID-19 pandemic, and the subsequent inflationary episode experienced across advanced and emerging economies. Traditionally entrusted with maintaining price stability and preserving the value of national currencies, central banks have increasingly assumed broader responsibilities encompassing financial stability, macroprudential regulation, digital payment systems, financial inclusion, climate-related financial risks, cybersecurity, and technological innovation.

This article critically examines the changing role of central banks in modern economies, with particular emphasis on India's experience during the period 2020–2026. Particular attention is devoted to the RBI's response to the COVID-19 pandemic, implementation of accommodative monetary measures, liquidity management strategies, adoption of the Central Bank Digital Currency (Digital Rupee), promotion of Unified Payments Interface (UPI), macroprudential oversight, and emerging approaches toward artificial intelligence and climate-related financial supervision.

The study argues that the modern central bank has evolved beyond the traditional objective of monetary stabilization and now functions as a strategic institution responsible for sustaining economic resilience amid increasingly complex global uncertainties.

Keywords: Central banking, Reserve Bank of India, Monetary policy, Inflation targeting, Financial stability, Digital Rupee, UPI, Financial inclusion, Central Bank Digital Currency, Emerging economies

Introduction

Central banking has experienced one of the most remarkable institutional transformations in modern economic history. Once regarded primarily as institutions responsible for issuing currency and maintaining monetary stability, central banks have progressively evolved into comprehensive guardians of macroeconomic resilience, financial stability, technological innovation, and systemic risk management. The post-pandemic period introduced a new set of policy complexities. Supply chain disruptions, geopolitical conflicts, unprecedented fiscal expansions, commodity price volatility, and

tightening global financial conditions collectively produced inflationary pressures unseen in several decades.

Among emerging market economies, India's experience presents a particularly compelling case study. The Reserve Bank of India (RBI), established in 1935, has historically played a pivotal role in maintaining monetary stability while supporting India's developmental aspirations. The COVID-19 pandemic further accelerated this transformation. During the crisis, the RBI implemented a comprehensive package of monetary and liquidity measures designed to stabilize financial markets, support commercial banks, preserve credit flows, and protect economic activity.

Simultaneously, India emerged as a global leader in digital financial innovation. The rapid expansion of the Unified Payments Interface (UPI), integration of Aadhaar-based identification systems, proliferation of fintech platforms, and pilot implementation of the Central Bank Digital Currency (CBDC) have fundamentally altered the country's financial ecosystem. Artificial intelligence, machine learning, and advanced data analytics have further transformed the operational capabilities of central banks. Supervisory technologies (SupTech), regulatory technologies (RegTech), fraud detection algorithms, real-time payment monitoring systems, and predictive macroeconomic modelling increasingly complement conventional policy instruments.

The global monetary landscape has also become increasingly fragmented. Geopolitical tensions, discussions surrounding de-dollarization, increasing use of economic sanctions, evolving cross-border payment systems, and the emergence of multiple CBDC initiatives have collectively altered the international monetary environment.

Literature Review

The expanding role of central banks has generated one of the most dynamic bodies of economic literature during the past decade. While earlier scholarship largely concentrated on inflation control, monetary aggregates, and central bank independence, contemporary research increasingly examines broader institutional responsibilities encompassing financial stability, macroprudential regulation, digital financial infrastructure, climate-related financial risks, technological innovation, and crisis management.

Recent discussions surrounding the statutory review of India's inflation-targeting framework have further enriched academic debate. Although some scholars advocate placing greater emphasis on core inflation to reduce the influence of temporary food-price fluctuations, the prevailing policy consensus continues to support targeting headline consumer price inflation because it more accurately reflects household welfare and inflation expectations. A second major body of literature concerns the expanding role of central banks in safeguarding financial stability. The Global Financial Crisis fundamentally altered academic understanding of monetary policy by demonstrating that stable inflation does not necessarily imply financial stability.

Within the Indian context, this literature highlights the strengthening of banking sector resilience during the post-pandemic period. Improvements in capital adequacy ratios, declining non-performing assets, enhanced supervisory practices, and comprehensive stress-testing frameworks have collectively contributed to a more resilient financial system capable of absorbing adverse macroeconomic shocks. The emergence of Central Bank Digital Currencies (CBDCs) has generated another rapidly expanding area of research. The literature increasingly recognizes CBDCs as one of the most significant innovations in the evolution of central banking since the introduction of fiat

currency.

The International Monetary Fund reports that an overwhelming majority of central banks are actively exploring retail CBDCs, reflecting growing recognition that sovereign digital money may strengthen payment systems while preserving monetary sovereignty in increasingly digital economies. Nevertheless, the design of CBDCs remains highly context-specific, with significant differences regarding architecture, access models, privacy protections, and operational frameworks. India's Digital Rupee has attracted growing scholarly attention because of its integration within the country's broader digital public infrastructure. Unlike many CBDC initiatives designed primarily to replace declining cash usage, India's approach seeks to complement an already sophisticated digital payment ecosystem anchored by the Unified Payments Interface.

Another significant stream of literature examines financial technology (FinTech), artificial intelligence, and digital innovation. Researchers increasingly argue that technological transformation has altered the operational environment of central banks more rapidly than any previous institutional change.

The Expanding Role of Central Banks in Modern Economies: Case of RBI

The contemporary central bank bears responsibilities that extend far beyond the traditional objective of maintaining monetary stability. While the classical functions of issuing currency, regulating the money supply, and acting as the government's banker remain fundamental, the twenty-first century has witnessed a significant expansion in institutional mandates.

Price Stability as the Primary Mandate

Despite the widening scope of central banking, price stability continues to constitute its principal objective. Stable inflation preserves purchasing power, reduces uncertainty, encourages investment, and supports sustainable economic growth. The inflationary episode experienced after the COVID-19 pandemic significantly reinforced the importance of credible monetary policy. Rising commodity prices, supply-chain disruptions, labour shortages, and geopolitical conflicts generated inflation rates unseen in many advanced economies for several decades. Recent IMF research argues that central banks increasingly face a difficult trade-off when inflation is driven primarily by supply shocks. Rather than responding mechanically to temporary increases in prices, policymakers must determine whether inflation expectations remain well anchored or whether stronger monetary tightening becomes necessary.

For India, maintaining price stability remains particularly challenging because food and fuel prices constitute a relatively larger proportion of household expenditure than in most advanced economies. Consequently, the RBI's inflation-targeting framework requires greater flexibility while preserving long-term credibility.

Financial Stability as a Co-equal Objective

The Global Financial Crisis fundamentally altered the philosophy of central banking by demonstrating that stable inflation does not necessarily imply financial stability. Prior to 2008, many economies experienced low and stable inflation despite the accumulation of significant financial imbalances. Consequently, financial stability has become an explicit objective of modern central banking. Financial stability encompasses far more than preventing banking failures. It includes ensuring that financial

institutions remain adequately capitalized, payment systems continue functioning efficiently, credit markets operate smoothly, and financial shocks do not propagate throughout the broader economy. Central banks now routinely conduct macroprudential surveillance, stress testing, systemic risk assessment, liquidity monitoring, capital adequacy supervision, crisis simulations, and resolution planning. These functions have become indispensable components of modern monetary governance. The RBI's Financial Stability Report, published semi-annually, exemplifies this integrated approach by combining macroeconomic analysis with banking-sector resilience assessments, stress-testing exercises, and evaluations of emerging risks.

Macroprudential Regulation

One of the most important institutional innovations since the Global Financial Crisis has been the emergence of macroprudential regulation. Traditional banking supervision primarily focused on the safety of individual financial institutions (microprudential regulation). Central banks increasingly employ instruments such as Countercyclical Capital Buffers, Liquidity Coverage Ratios, Net Stable Funding Ratios, Dynamic Provisioning, Loan-to-Value limits, and Debt-Service ratios to mitigate systemic risks before they evolve into financial crises. India has progressively strengthened these regulatory mechanisms following the banking-sector stress experienced during the previous decade.

Lender of Last Resort

Walter Bagehot's nineteenth-century principle that central banks should lend freely against good collateral during crises remains one of the defining features of modern central banking. However, the lender-of-last-resort function has evolved considerably. The COVID-19 pandemic illustrated this expanded role. Central banks across the world—including the RBI—introduced extraordinary liquidity programmes designed to maintain financial market functioning while preventing temporary liquidity shortages from developing into solvency crises.

Payment Systems and Financial Market Infrastructure

Perhaps no function of modern central banks has evolved more rapidly than payment system oversight. Historically, payment systems were regarded primarily as operational infrastructure. India's digital payment revolution has attracted considerable international attention because it demonstrates how central-bank-supported digital public infrastructure can simultaneously enhance efficiency, competition, and financial inclusion. The extraordinary growth of UPI has fundamentally changed retail payments by enabling instantaneous low-cost digital transactions at massive scale, making India one of the world's largest real-time payment markets.

Financial Inclusion

Unlike many advanced economies, central banks in developing countries frequently perform developmental functions alongside traditional monetary responsibilities. Financial inclusion has therefore become an essential component of the RBI's institutional mandate. The RBI has actively promoted financial inclusion through simplified banking regulations, priority-sector lending, payment banks, small finance banks, digital banking, Aadhaar-enabled payments, UPI, digital literacy initiatives. The integration of Jan Dhan accounts, Aadhaar identification, and mobile connectivity has substantially

expanded formal financial participation.

Central Bank Digital Currency (CBDC)

The emergence of Central Bank Digital Currency represents one of the most important developments in the evolution of central banking. Unlike cryptocurrencies, CBDCs constitute sovereign liabilities issued by central banks.

Artificial Intelligence and Supervisory Technology

Artificial intelligence has emerged as another transformative force shaping modern central banking. Central banks increasingly employ AI for fraud detection, anti-money laundering, financial supervision, macroeconomic forecasting, payment monitoring, cyber-risk detection, regulatory reporting. This dual effect complicates inflation assessment because traditional macroeconomic indicators may provide conflicting signals regarding the appropriate monetary policy stance. Recognising these developments, the RBI has begun strengthening governance frameworks relating to AI adoption within regulated financial institutions while promoting responsible innovation.

Central Bank Independence, Transparency, and Accountability

Institutional credibility remains the cornerstone of effective central banking. An extensive body of literature demonstrates that greater central-bank independence contributes to lower and more stable inflation by reducing political incentives for excessive monetary expansion. The RBI has progressively strengthened policy communication through Monetary Policy Committee resolutions, press conferences, speeches, and analytical publications, improving market understanding and monetary policy transmission.

Emerging Challenges for the Reserve Bank of India

The Reserve Bank of India enters the second half of the 2020s from a position of considerable institutional strength. The successful management of the COVID-19 crisis, the orderly normalization of monetary policy, sustained financial-sector resilience, and India’s leadership in digital payments have enhanced the RBI’s domestic and international credibility.

Balancing Inflation Control with Economic Growth

One of the foremost challenges confronting the RBI is maintaining an appropriate balance between controlling inflation and supporting economic growth. The post-pandemic experience demonstrated that monetary policy increasingly operates under conditions where inflation is driven by multiple factors, including supply-chain disruptions, geopolitical tensions, food-price volatility, and energy shocks.

India’s economic structure makes this challenge particularly significant. Food items constitute a relatively large share of the Consumer Price Index (CPI), causing weather conditions, agricultural production, and global commodity prices to exert considerable influence on headline inflation. The RBI’s flexible inflation-targeting framework has thus far demonstrated considerable resilience, but future policy decisions will require increasingly sophisticated judgement rather than mechanical adherence to policy rules. The challenge lies in preserving the credibility of the inflation target while

ensuring that monetary policy remains sufficiently flexible to accommodate temporary external shocks.

Financial Stability in an Expanding Credit Environment

India's banking sector has undergone remarkable improvement in recent years. Capital adequacy has strengthened, asset quality has improved significantly, and stress-testing exercises indicate substantial resilience under adverse macroeconomic scenarios.

Cybersecurity and Digital Operational Resilience

India's rapid digitalization has transformed the country's financial architecture. Digital payments, online banking, cloud computing, artificial intelligence, and interconnected financial platforms have substantially improved efficiency and financial inclusion.

Artificial Intelligence and Supervisory Governance

Artificial intelligence is transforming financial services through applications in credit assessment, fraud detection, customer service, risk management, regulatory reporting, and macroeconomic forecasting. These technologies promise substantial efficiency gains while simultaneously introducing new categories of systemic risk.

Regulation of Digital Assets

The rapid growth of digital assets, cryptocurrencies, and tokenized financial products presents another important challenge. Although the RBI has consistently expressed concerns regarding privately issued cryptocurrencies because of their potential implications for monetary sovereignty, consumer protection, capital flows, and financial stability, technological innovation in distributed ledger systems continues to advance rapidly.

Institutional Independence and Policy Coordination

The increasing interaction between monetary policy, fiscal policy, financial regulation, and technological governance has intensified the need for effective institutional coordination. During periods of economic crisis, central banks often work closely with governments to stabilize financial markets and support economic recovery.

Conclusion

The evolution of central banking reflects a broader transformation in the nature of economic governance itself. Modern central banks are no longer confined to managing inflation or regulating the money supply; they have become strategic institutions that shape financial stability, technological progress, and long-term economic resilience. For India, the Reserve Bank of India stands at the forefront of this transformation. Its ability to anticipate emerging risks, embrace technological innovation, preserve institutional independence, and adapt to an increasingly interconnected global economy will determine not only the future effectiveness of monetary policy but also the resilience and competitiveness of the Indian economy in the decades ahead. As economic and technological landscapes continue to evolve, the RBI's commitment to prudent policymaking, transparent

governance, and continuous institutional innovation will remain indispensable for ensuring sustainable growth, financial stability, and public trust in India's financial system.

References

[1] Bank for International Settlements. (2025). *BIS Quarterly Review*.

[2] Bank for International Settlements. (2025). *Annual Economic Report 2025*.

[3] International Monetary Fund. (2025). *World Economic Outlook*.

[4] International Monetary Fund. (2025). *Global Financial Stability Report*.

[5] International Monetary Fund. (2026). *The central bank's dilemma: Look through supply shocks or control inflation expectations?*

[6] Reserve Bank of India. (2025). *Annual Report 2024–25*.

[7] Reserve Bank of India. (2026). *Annual Report 2025–26*.

[8] Reserve Bank of India. (2025). *Financial Stability Report*.

[9] Reserve Bank of India. (2026). *Financial Stability Report.*

[10] World Bank. (2020). *Inflation Targeting in India: An Interim Assessment*,

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

उदारीकरण के बाद भारतीय राजनीति में सत्ता एवं सामाजिक न्याय का विश्लेषण

कुमुदनी कश्यप
शोधार्थी
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

डॉ. जुल्फिकार
राजनीतिशास्त्र विभाग
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जहाँ राजनीति केवल शासन व्यवस्था का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज के विभिन्न वर्गों की आकांक्षाओं, संघर्षों और अधिकारों की अभिव्यक्ति का भी प्रमुख साधन है। भारतीय राजनीति का विकास सामाजिक संरचना, आर्थिक नीतियों और ऐतिहासिक परिस्थितियों के साथ निरंतर बदलता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने लोकतंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों को अपनाते हुए एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया, जिसमें प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार और अवसर प्राप्त हो सकें। हालांकि समय के साथ भारतीय राजनीति में सत्ता की प्रकृति और सामाजिक न्याय की अवधारणा में अनेक परिवर्तन आए। विशेष रूप से वर्ष 1991 के बाद लागू हुई उदारीकरण की आर्थिक नीति ने भारतीय राजनीति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना को एक नई दिशा प्रदान की।

उदारीकरण भारतीय आर्थिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसने भारत की पारंपरिक राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था को बाजार आधारित अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर किया। 1991 में भारत गंभीर आर्थिक संकट से गुजर रहा था। विदेशी मुद्रा भंडार में कमी, बढ़ता राजकोषीय घाटा और आर्थिक अस्थिरता जैसी परिस्थितियों के कारण तत्कालीन सरकार ने नई आर्थिक नीति अपनाई। इस नीति के अंतर्गत उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण को प्रमुख आधार बनाया गया। इसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था को अधिक खुला, प्रतिस्पर्धी और आधुनिक बनाना था। आर्थिक क्षेत्र में हुए इन परिवर्तनों का प्रभाव केवल उत्पादन, व्यापार और निवेश तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसका प्रभाव भारतीय राजनीति और सामाजिक संबंधों पर भी पड़ा।

भारतीय राजनीति में सत्ता का अर्थ केवल सरकार बनाने या शासन करने की शक्ति नहीं है, बल्कि यह समाज में संसाधनों के वितरण, निर्णय लेने की क्षमता और विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधित्व से भी संबंधित है। स्वतंत्रता के बाद लंबे समय तक भारतीय राजनीति में एक विशेष प्रकार के राजनीतिक नेतृत्व और सत्ता संरचना का प्रभाव रहा। लेकिन 1990 के दशक के बाद आर्थिक उदारीकरण, मंडल राजनीति, क्षेत्रीय दलों के उदय और सामाजिक आंदोलनों के कारण सत्ता के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिला। सत्ता अब केवल राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दलों तक सीमित नहीं रही, बल्कि क्षेत्रीय शक्तियों, सामाजिक समूहों, आर्थिक संस्थानों और नागरिक संगठनों की भूमिका भी बढ़ गई।

सामाजिक न्याय भारतीय लोकतंत्र का एक मूलभूत सिद्धांत है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक

और राजनीतिक न्याय स्थापित करने का संकल्प व्यक्त किया गया है। संविधान निर्माताओं ने यह समझा था कि भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही जातिगत, आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को समाप्त किए बिना वास्तविक लोकतंत्र स्थापित नहीं किया जा सकता। इसी उद्देश्य से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किए गए। सामाजिक न्याय की अवधारणा का उद्देश्य केवल समान अधिकार प्रदान करना नहीं, बल्कि उन वर्गों को अवसर उपलब्ध कराना भी है जो ऐतिहासिक रूप से वंचित रहे हैं।

उदारीकरण के बाद सामाजिक न्याय की अवधारणा में भी परिवर्तन आया। पहले सामाजिक न्याय का मुख्य केंद्र जातिगत भेदभाव, आरक्षण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व था, लेकिन आर्थिक उदारीकरण के बाद इसमें रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर, डिजिटल पहुँच और जीवन स्तर जैसे मुद्दे भी शामिल हो गए। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था ने विकास के नए अवसर तो प्रदान किए, लेकिन इसके लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच सके। इससे आर्थिक असमानता और सामाजिक विषमता के प्रश्न और अधिक महत्वपूर्ण हो गए।

1990 के दशक का समय भारतीय राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। इसी समय मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किया गया, जिसके कारण पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हुई। दूसरी ओर उदारीकरण ने आर्थिक नीतियों को नई दिशा दी। इन दोनों प्रक्रियाओं ने भारतीय राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। एक ओर सामाजिक न्याय की राजनीति ने वंचित वर्गों को सत्ता में भागीदारी प्रदान की, वहीं दूसरी ओर उदारीकरण ने विकास और आर्थिक सुधारों को राजनीतिक विमर्श का केंद्र बनाया। इस प्रकार भारतीय राजनीति में सामाजिक प्रतिनिधित्व और आर्थिक विकास के बीच एक नया संबंध विकसित हुआ।

उदारीकरण के बाद भारतीय सत्ता संरचना में निजी क्षेत्र और बाजार शक्तियों का प्रभाव बढ़ा। पहले राज्य आर्थिक विकास का मुख्य संचालक था, लेकिन उदारीकरण के बाद निजी कंपनियों, बहुराष्ट्रीय संस्थानों और वैश्विक आर्थिक संगठनों की भूमिका बढ़ने लगी। इससे शासन और नीति निर्माण की प्रक्रिया में भी परिवर्तन आया। सरकारों को अब केवल सामाजिक कल्याण ही नहीं, बल्कि निवेश आकर्षित करने, आर्थिक वृद्धि बढ़ाने और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भाग लेने जैसी जिम्मेदारियों का भी निर्वहन करना पड़ा।

हालांकि उदारीकरण ने आर्थिक विकास को गति दी और भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ा, लेकिन इसके प्रभाव सभी सामाजिक वर्गों पर समान नहीं रहे। शहरी क्षेत्रों, शिक्षित वर्गों और पूंजी रखने वाले समूहों को अधिक अवसर प्राप्त हुए, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे किसानों, मजदूरों और असंगठित क्षेत्र के लोगों के सामने नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुईं। रोजगार की अस्थिरता, कृषि संकट और आय में असमानता जैसे मुद्दे सामाजिक न्याय की बहस का हिस्सा बने।

भारतीय राजनीति में उदारीकरण के बाद क्षेत्रीय दलों का प्रभाव भी तेजी से बढ़ा। इन दलों ने स्थानीय सामाजिक समूहों, क्षेत्रीय समस्याओं और सामाजिक न्याय के मुद्दों को राजनीतिक मंच प्रदान किया। इससे भारतीय लोकतंत्र में सत्ता का विकेंद्रीकरण हुआ और विभिन्न समुदायों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ी। राज्यों की राजनीति में पिछड़े वर्गों, दलितों, आदिवासियों और अन्य सामाजिक समूहों के नेताओं का प्रभाव बढ़ा, जिससे सत्ता संरचना अधिक विविधतापूर्ण बनी।

उदारीकरण के बाद चुनावी राजनीति में विकास एक प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा। राजनीतिक दलों ने आर्थिक विकास, रोजगार, बुनियादी सुविधाओं और निवेश को अपने चुनावी एजेंडे में शामिल किया। लेकिन इसके साथ ही सामाजिक न्याय, समान अवसर और कमजोर वर्गों के अधिकारों के प्रश्न भी राजनीतिक बहस का महत्वपूर्ण हिस्सा बने रहे। इससे भारतीय राजनीति में विकास और न्याय के बीच संतुलन स्थापित करने की चुनौती सामने आई।

समकालीन भारतीय राजनीति में सत्ता और सामाजिक न्याय का संबंध अत्यंत जटिल हो गया है। आज सत्ता प्राप्ति के लिए केवल राजनीतिक संगठन और विचारधारा पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक गठबंधन, आर्थिक नीतियाँ और जनकल्याणकारी योजनाएँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राजनीतिक दल विभिन्न सामाजिक समूहों को साथ जोड़कर सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया में जाति, वर्ग, क्षेत्र, धर्म और आर्थिक स्थिति जैसे कारक महत्वपूर्ण हो जाते

हैं।

महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता भी उदारीकरण के बाद सामाजिक न्याय के महत्वपूर्ण विषय बनकर उभरे हैं। शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं। इसी प्रकार युवाओं की बढ़ती संख्या, डिजिटल क्रांति और सूचना तकनीक ने राजनीति में नए अवसर और चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं।

मीडिया और संचार तकनीक के विकास ने भी सत्ता और सामाजिक न्याय की राजनीति को प्रभावित किया है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने नागरिकों को अपनी आवाज उठाने का नया माध्यम प्रदान किया है। अब जनता केवल चुनाव के समय ही नहीं, बल्कि लगातार राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी कर सकती है। हालांकि डिजिटल विभाजन और गलत सूचना जैसी समस्याएँ भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के सामने नई चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं।

उदारीकरण के बाद भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय का प्रश्न केवल सरकारी नीतियों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह लोकतंत्र की गुणवत्ता से भी जुड़ गया है। लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज के सभी वर्गों को निर्णय प्रक्रिया में कितनी भागीदारी प्राप्त है और विकास के लाभ कितने समान रूप से वितरित होते हैं। इसलिए आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के बीच संतुलन स्थापित करना भारतीय राजनीति की प्रमुख आवश्यकता बन गई है।

वर्तमान समय में भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह आर्थिक विकास की गति को बनाए रखते हुए सामाजिक असमानताओं को कैसे कम करे। उदारीकरण ने भारत को वैश्विक स्तर पर नई पहचान दी है, लेकिन इसके साथ यह आवश्यक है कि विकास का लाभ समाज के कमजोर वर्गों तक भी पहुँचे। सामाजिक न्याय केवल सरकारी योजनाओं या आरक्षण तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे समान अवसर, सम्मानजनक जीवन और नागरिक अधिकारों के व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए।

कूंजी शब्द : उदारीकरण, भारतीय राजनीति, सत्ता, सामाजिक न्याय, आर्थिक सुधार, नई आर्थिक नीति (1991), वैश्वीकरण, निजीकरण, लोकतंत्र, राजनीतिक सत्ता संरचना, सामाजिक समानता, आर्थिक असमानता, विकास और न्याय।

संदर्भ सूची

भारत सरकार भारत का संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

डॉ. भीमराव आंबेडकर जाति का विनाश सामाजिक न्याय एवं जाति व्यवस्था पर महत्वपूर्ण ग्रंथ।

गांधी, महात्मा हिंद स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

नेहरू, जवाहरलाल भारत की खोज, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।

चंद्र, बिपिन आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।

दत्त, आर. पाल्मे एवं सुंदरम, के. पी. एम. भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चंद प्रकाशन, नई दिल्ली।

दत्त, रुडोल्फ एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था : विकास और नीतियाँ, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली।

बासु, दुर्गादास भारत का संविधान : एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस प्रकाशन।

लक्ष्मीकांत, एम. भारतीय राजव्यवस्था, मैकग्रॉ हिल एजुकेशन, नई दिल्ली।

सिंह, योगेंद्र भारतीय समाज में परिवर्तन और विकास, रावत प्रकाशन, जयपुर।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

गढ़वाल हिमालय में पर्यटन का सकारात्मक प्रभाव (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

डॉ. विक्रम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर - समाजशास्त्र
एस. डी. एम. राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय डोईवाला (देहरादून)

गढ़वाल हिमालय उत्तराखण्ड के 29 - 26 एवं 31 - 28 अक्षांश एवं 80 -6 देशान्तर के बीच स्थित है। गढ़वाल मण्डल के पूर्व में कुमाँयु, पश्चिम में टोन्स नदी है और हिमालय प्रदेश उत्तर में तथा गंगाद्वार हरिद्वार है। उत्तराखण्ड बनने के बाद गढ़वाल में चमोली, पौढ़ी, रूद्रप्रयाग, टिहरी, उत्तरकाशी, हरिद्वार व देहरादून जनपद है। प्राचीन ग्रन्थों में गढ़वाल को तपोभूमि, हिमवन्त, बद्रिकाश्रम एवं केदारखण्ड कहा गया है।

गढ़वाल हिमालय अपनी सांस्कृतिक विरासत के चलते आदिकाल से देवभूमि के नाम से विख्यात है। सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न यहाँ पर लोककला एवं लोकसाहित्य में भी अनूठी मनमोहक झलक विद्यमान रही है। ललित कला के क्षेत्र में गढ़वाल चित्रकला शैली में अपना प्रमुख स्थान रखती है। यहाँ हिमाच्छादित ऊँचे पर्वत, हरे - भरें विस्तर्ण बुग्याल (चारागाह), दूर - दूर तक फैले चीड़, देवदार, बाँज बुरांश के जंगल, कल - कल निनाद करती हुई नदियां, सीढीनुमाखेत, दर्पण के समान स्वच्छ जल के तालाब, देवी - देवताओं के असंख्या मन्दिर आदि सभी यहां की प्राकृतिक सम्पदायें अनुपम है। साथ ही ऋषि मुनियों की तपस्थली होने के कारण सौभाग्य भी इसी पावन भूमि को प्राप्त है। अपनी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक प्रभुसत्ता के चलते यह पर्यटकों को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करती है। साथ ही अपनी प्राकृतिक सुशमा, एतिहासिक स्मारकों, साँस्कृतिक धरोहरों धार्मिक स्थलों एवं विशिष्ट प्राकृतिक छय के बल पर जनमानस में श्रद्धा एवं जनमानस की भावना विकसित होती है। गढ़वाल हिमालय पयर्टन के लिए बर्फ से ढ़की चोटियाँ, हरी - भरी घाटियां, पवित्र तीर्थस्थल और साहसिक गतिविधियों के लिए माना जाता है। यहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता में फूलों की घाटी, नंदा देवी और कामेट जैसी ऊँची चोटियां, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री जैसी तीर्थ स्थल और औली, चकराता, जैसे स्कीइंग डेस्टिनेशन शामिल है। इसके लिए टिहरी बाँध, मंसूरी और खिर्सू जैसी जगाहें भी यहाँ के सौन्दर्य में चार चाँद लगती है। जिसका परिणाम पर्यटकों की प्रतिवर्ष बढ़ती हुई जनसंख्या से लगाया जाता है।

पर्यटन का अर्थ :- सर्वप्रथम 1952 में 'टुअर' शब्द का प्रादुर्भाव हुआ, जो कि लैटिन शब्द 'टोनस' से बना है। जिसका अर्थ प्रारम्भ में 'वृतात्मक' उपकरण या स्थिति से लगाया जाता है। इसी शब्द से धीरे-धीरे टूरिज्म शब्द की उत्पत्ति हुई। पर्यटन यात्रा की एक विशिष्ट अवस्था है। पर्यटन शब्द का शाब्दिक अर्थ यात्रा करना, भ्रमण करना, मनोरंजन करना आदि माना जाता रहा है। मानव मे ज्ञान के साथ - साथ ही यात्रावृत्ति का भी विकास होता है। प्रारम्भिक काल से उसकी मायावी प्रवृत्ति अनेकानेक ज्ञान की प्राप्ति हेतु उसे भ्रमण करने के लिए विवश करती रही है। उसकी यात्रावृत्ति तथा धार्मिक आस्था के रूप में उभरी तो कभी प्रकृति की सुरम्य वादियों ने मनमोहक कर अपने समीप बुलाया। जहाँ व्यक्ति को इस पावन धरा पर स्वर्ग

का आभास प्रत्यक्ष रूप से हुआ। वर्तमान काल में यात्रा का उद्देश्य मात्र आत्म संतुष्टि प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति की सोच में परिवर्तन कर नई संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों से परिचित करना भी है। इस प्रकार गढ़वाल हिमालय में पर्यटन के विकास के फलस्वरूप पर्यटन ने मानव जीवन पर धार्मिक, सामाजिक - साँस्कृतिक, आर्थिक, मनोरंजन एवं पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। जिसका अध्ययन इस शोध पत्र में किया जा रहा है।

अध्ययन के उद्देश्य

1 - गढ़वाल में पर्यटन के विकास हेतु सौन्दर्य की जानकारी प्राप्त करना।

2 - गढ़वाल में पर्यटन को बढ़ावा देने में उत्तराखण्ड सरकार के प्रयासों की जानकारी प्राप्त करना।

3 - मानव जीवन पर पर्यटन का सकारात्मक आर्थिक प्रभाव एवं स्वरोजगार का विश्लेशण करना।

4 - धार्मिक, सामाजिक - साँस्कृतिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव का अध्ययन करना।

5 - पर्यटन की सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव की व्याख्या करना।

6 - पर्यटन का मनोरंजन पर सकारात्मक प्रभाव की जानकारी प्राप्त करना।

शोध विधि : - इस शोध पत्र में शोध आलेख द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है, जिसमें सरकारी रिपोर्ट, गैर - सरकारी रिपोर्ट, शोध आलेख, पत्र - पत्रिकाओं, सन्दर्भ ग्रन्थों इन्टरनेट एवं पुस्तक आदि से तथ्य प्राप्त कर विश्लेषण किया गया है जिसके लिए शोध आलेख में वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। यह शोध विधि इस शोध पत्र के लिए उपयुक्त है।

उत्तराखण्ड सरकार का पर्यटन के विकास हेतु प्रयास

सरकार ने गढ़वाल में पर्यटन के विकास के लिए कई योजनाएं शुरू की है, जिसमें वित्तीय प्रोत्साहन और बुनियादी ढ़ांचे का विकास शामिल है। इनमें वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली पर्यटन स्वरोजगार योजना और दीन दयाल उपाध्याय गृह आवास जैसी योजना शामिल है, जो स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करती है। साथ ही सरकार 52 गढ़ो के जीर्णोद्धार पर भी ध्यान केन्द्रित कर रही है।

प्रमुख योजनाएँ और पहल

उत्तराखण्ड पर्यटन उद्यमी प्रोत्साहन योजना :- इस योजना के तहत, होटल और साहसिक गतिविधियों जैसे पर्यटन उद्यमों में निवेश करने वालों को स्टांप शुल्क में छूट, पूंजीगत अनुदान और ब्याज सब्सिडी जैसे वित्तीय प्रोत्साहन दिये जाते है।

बीर चन्द्र सिंह गढ़वाली पर्यटन स्वरोजगार योजना : - यह योजना स्थानीय युवाओं और उद्यमियों को बस और टैक्सी परिवहन, मोटेल, योग केन्द्र और साहसिक पर्यटन उपकरण जैसे विभिन्न पर्यटन गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करती है।

दीन दयाल उपाध्याय ग्रह आवास योजना :- यह स्थानीय निवासियों को अपने घरों को होम - स्टे के रूप में विकसित करने में मदद करती है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है। इसमें पूंजीगत लागत पर सब्सिडी और ब्याज सब्सिडी प्रदान की जाती है।

ट्रेकिंग ट्रैक्षन योजना :- यह योजना ट्रेकिंग मार्गो के पास होम स्टे के विकास को बढ़ावा देती है और इसके तहत प्रति कमरा सब्सिडी प्रदान करती है।

बुनियादी ढंाचे का विकास :- सरकार ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में आधुनिक ढ़ांचे के विकास पर ध्यान केन्द्रित कर रही है।

विरासत पर्यटन का संरक्षण :- सरकार गढ़वाल के एतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व के 52 गढ़ों (किलों) के जीर्णोद्धार और सरंक्षण का कार्य कर रही है, जिससे पर्यटकों को विरासत का अनुभव मिल सकें।

आर्थिक और वित्तीय सहायता :- टिहरी गढ़वाल जैसे जिलों में टिकाओं और ग्रामीण विकास के लिए एशियाई विकास बैंक (ABD) जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ मिलकर काम किया जा रहा है।

उत्तराखण्ड की पर्यटन नीति 2023 नये पर्यटन स्थलों का विकास, निजी निवेश को आकर्षित करने और डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग करके पर्यटन को बढ़ावा देने पर केन्द्रित है। इसमें नये पर्यटक जैसे कि हेलीटूरिज्म और साहसिक गतिविधियों के लिए वित्तीय प्रोत्साहन और सब्सिडी शामिल है। यह नीति 2030 तक रुपये 40,000 करोड़ तक निवेश आकर्षित करने का लक्ष्य रखती हैं और स्थानीय पर्यटन को बढ़ावा देती है।

आर्थिक विकास और रोजगार में पर्यटन का सकारात्मक प्रभाव :- पर्यटन ने गढ़वाल हिमालय में आर्थिक विकास और रोजगार में अपनी विशेष भूमिका निभायी है, जिसने यहाँ की लोगों की स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करके स्थानीय स्तर पर रोजगार उत्पन्न करके बेरोजगारी एवं गरीबी दूर करने में सहायक रही है। यहाँ की ग्रामीण जनता पर्यटकों के लिए होमस्टे की सुविधा प्राप्त करवा रही है जिससे उनकी केवल आय ही नहीं बढ़ती बल्कि पर्यटकों को स्थानीय संस्कृति का भी अनुभव कराती हैं। ट्रेकिंग वन्यजीव पर्यटन और अन्य साहसिक गतिविधियाँ रोजगार सृजन का बड़ा जरिया है जिसमें प्राकृतिक सुन्दरता का बड़ा योगदान है।

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में पर्यटन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह राज्य की आय, सकल घरेलू उत्पाद (जी एस डी पी) और रोजगार सृजन में बड़ा योगदान देता है। यहाँ धार्मिक स्थानों जैसे - बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि से राजस्व उत्पन्न करता है और विभिन्न सहायक उद्योगों जैसे - होटल रेस्तरा आदि को बढ़ावा देता है। राज्य सरकार भी पर्यटन में निवेश को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएं चला रही है। पर्यटन के क्षेत्र में 01 से 05 करोड़ तक का निवेश करने वाले प्रदेश के स्थानीय निवासियों/ उद्यमियों को प्रोत्साहित और आर्थिक रूप से सबल बनाने हेतु उत्तराखण्ड पर्यटन उद्यमी प्रोत्साहन योजना 30 अगस्त 2024 प्रख्यापित किये जाने की श्री राज्यपाल महोदय द्वारा सहर्श स्वीकृति प्रदान की गयी है। जो कि उत्तराखण्ड सरकार की एक मजबूत पहल है,. जिसका उद्देश्य राज्य में पर्यटन क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देना है। इस योजना के तहत राज्य में स्थायी निवासियों को पर्यटन परियोजनाओं में निवेश के लिए वित्तीय प्रोत्साहन, जैसे सब्सिडी और ब्याज पर छूट मिलती है।

गढ़वाल मण्डल विकास निगम द्वारा 'गढ़वाल ऊन' का व्यवसाय भी स्थापित किया गया जो धीरे - धीरे लोकप्रिय हो गया। तीर्थयात्रा के मार्ग पर औषधि की दुकाने भारी मात्रा में खुल रहीं हैं। साथ ही स्थानीय लोगों द्वारा यात्रियों/ पर्यटकों को सहारा देने के लिए बांस की छड़ी एवं कण्डी की विक्रय का कार्य भी देखने को मिलता है। तीर्थयात्रियों/ पर्यटकों की आवश्यकता की वस्तुओं का व्यवसाय भी दिन - प्रतिदिन वृद्धि की ओर अग्रसर है।

धार्मिक क्षेत्र में पर्यटन का सकारात्मक प्रभाव :- गढ़वाल हिमालय में पर्यटन का धार्मिक क्षेत्र पर सकारात्मक प्रभाव मुख्य रूप से आर्थिक विकास और रोजगार के अवसर पैदा करनें के रूप में देखा जाता है क्योंकि लाखों तीर्थ यात्री और पर्यटक इन पवित्र स्थलों की यात्रा करते हैं। इससे स्थानीस निवासियों के लिए रोजगार के अवसर पैदा होते हैं और पलायन को कम करने में मदद मिलती है। जिससे पर्यटन, विशेष रूप से धार्मिक पर्यटन, स्थानीय समुदाय के लिए रोजगार का एक प्रमुख स्त्रोत बन गया है, जिससे कई लोग गरीबी से बाहर आए हैं, साथ ही पर्यटकों के आगमन से राज्य और स्थानीय सरकारों के लिए राजस्व बढ़ता है जो कि विकास के रूप में महत्वपूर्ण है। 2020 - 2021 के आँकड़ों के मुताबिक उत्तराखण्ड में पर्यटन से जुड़े कारोबार से लगभग 24,000 करोड़ (रुपये चौबीस हजार करोड़) रूपये का राजस्व प्राप्त हुआ। गढ़वाल हिमालय में पर्यटन का पलायन रोकने में भी सकारात्मक प्रभाव रहा है। पर्यटन क्षेत्र में होटल, रेस्टोरेंट, गाइड, नौकविहार और साहसिक गतिविधियों के संचालन से विभिन्न क्षेत्र में रोजगार के अवसर पैदा हुए हैं, जिससे स्थानीय युवा शहरों की ओर पलायन करने के बजाय अपने गाँव में रह रहे हैं।

गढ़वाल हिमालय में चिकित्सा और स्वास्थ्य पर्यटन भी बढ़ रहा है जिसमें हर साल हजारों लोग किफायती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा, आयुर्वेदिक उपचार एंव योगसाधना के लिए धर्मनगरी ऋशिकेश एवं हरिद्वार की आ रहे हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्यटन का सकारात्मक प्रभावः- पर्यटन ने सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अपना प्रभाव डाला है। जिसमें पर्यटन से स्थानीय संस्कृति और परम्पराओं को बढ़ावा मिलता है और देशी - विदेशी पर्यटकों को स्थानीय रीति - रिवाज खान - पान और वेशभूशा से परिचित होने का अवसर प्राप्त होता है। गढ़वाल हिमालय की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना पर पर्यटन का गहरा प्रभाव पड़ा है जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने और परम्पराओं को संरक्षित करने के साथ - साथ चुनौतियाँ भी पेश करता है। यह क्षेत्र अपनी आध्यात्मिक यात्राओं, जैसा कि चार धाम और पंच केदार के लिए प्रसिद्ध है, जिसने सदियों से पर्यटन को आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त साहसिक पर्यटन जैसे ट्रेकिंग, स्कीइंग और प्रकृति प्रेमियों के लिए परिदृश्य, जैसे फूलों की घाटी, स्थानीय संस्कृति में बदलाव ला रहा है। आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव भी यहाँ के जीवनशैली, खान - पान, व्यवहार के तरीकों पर भी पड़ा है। विशेषकर शहरों जैसे. ऋशिकेश और मंसूरी मे परम्परागत पहनावे और भाषा में बदलाव ला रहा है।

गढ़वाल हिमालय में स्थित चार धाम यात्रा पर आने वाले श्रद्धालुओं से संस्कृति एवं भाषा में परिवर्तन देखा जााता है। यहाँ की देवतुल्य संस्कृति व्यक्ति में मूल्यों का संचार कर एवं नैतिक दृष्टि से सम्पन्न कर मानव का पूर्ण मानव बनाने में समर्थवान है। जिससे व्यक्ति में प्रेम, अहिंसा और विश्वबंधुत्व जैसे महान गुण विकसित होते हैं। यहाँ की प्रकृति का औषधीय स्वरूप मानव को स्वस्थ परिवेश प्रदान करता है, जहाँ व्यक्ति अनेकानेक रोगों से प्रकृति द्वारा ही निजात पाता रहता है। पर्यटन के सकारात्मक सामाजिक - सांस्कृतिक प्रभाव विशेषकर कुछ गंतव्य स्थानों पर देखने को मिलता है जो निम्नवत् हैं।

● पर्यटन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों के कई सांस्कृतिक समूह के लोगों के साथ परिचित होने के लिए एक उपयुक्त मंच प्रदान करता है जो विभिन्न अवसरों पर परस्पर मिलकर आपसी सहयोग एवं भाईचारा बढ़ाते हैं।

● पर्यटन में शिक्षा का एक घटक भी शामिल होता है। शिक्षा के माध्यम से पर्यटन एक साथ दो या दो से अधिक सांस्कृतिक समूहों के लोगों के बीच समझ को सर्वधित और पल्लवित करता है और मेहमानों के बीच सांस्कृतिक विनिमय की पेशकश करता है।

● सांस्कृतिक विनिमय के कारण लोग एक - दूसरे के प्रति सहानुभूति करते हैं और उनके पूर्वाग्रहों को कम करते हैं।

● अंततः सहानुभूति और समझ दो समुदायों/देशों के बीच तनाव को कम करने में मद्दगार हो सकता है। इस तरह शांति के साथ अच्छे एवं मजबूत संबंध स्थापित होने की संभावना बढ़ जाती है।

● पर्यटन सामुदायिक सुविधाओं और सेवाओं के विकास का समर्थन है, इस प्रकार बेहतर जीवन शैली का नेतृत्व करती है।

● पर्यटन प्राकृतिक सांस्कृतिक, पुरातात्विक या ऐतिहासिक स्थलों के महत्व और मूल्यों के बारे में जागरूकता प्रदान करता है। यह स्थानीय और राष्ट्रीयता विरासत पर गर्भ की भावना को बढ़ाता है। यह उनके संरक्षण के लिए नेतृत्व प्रदान करता है।

पर्यटन का सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावः- पर्यटन के कई सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव हो सकते हैं, जैसे संरक्षण के लिए आर्थिक प्रोत्साहन, पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देना और लुप्तप्राय प्रजातियों की सुरक्षा। यह प्राकृतिक और एतिहासिक स्थलों के रखरखाव और बहाली के लिए धन प्रदान कर सकता है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी लाभ पहुँचाता है। टिकाऊ पर्यटन और परिस्थिकी पर्यटन के माध्यम से, प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने और पारिस्थिकी संतुलन को बनाए रखने में मद्द मिलती है। पर्यटन की सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव की भूमिक निम्नवत् हैः-

● यहाँ पर बड़ी संख्या में पर्यटन आते हैं और पर्यटकों से आय उत्पन्न होती है। इसलिए अधिक से अधिक पर्यावरणीय

चेतना की उम्मीद की जाती हैं।

● कभी - कभी विदेशी पर्यटक, पर्यावरण पर दबाव कम करने के बारे में अच्छा विचार एवं सुझाव देते हैं और स्थायी पर्यटन पर बल देते हैं।

● एकत्रित धन का उपयोग अधिक संसाधनों के निर्माण और क्षेत्र के सौन्दर्यीकरण के लिए किया जाता है।

● सफाई अभियान अधिक से अधिक पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए संचालित किया जाता है।

● अधिक से अधिक पर्यावरणीय सुरक्षात्मक उपायों को अपनाया जाता है।

● पारिस्थितिक संतुलन अनुरक्षण पारिस्थिकी तंत्र की रक्षा करने के उद्देश्य बन जाता है।

● पर्यावरण पर पर्यटन के दुश्प्रभावों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न अनुसंधान गतिविधियाँ/ परियोजनाएं चलायी जा रही हैं। ये अध्ययन सामाजिक समस्याओं को समझाने में फायदेमंद है। इन अध्ययनों के निष्कर्षो और अनुशंसाओं का पालन किया जाता है। यह सही पर्यावरण/ पारिस्थितिकी संतुलन बनाने में मद्द करता है।

● पर्यटन का सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव में सार्वजनिक पार्क, उद्यान, सड़कों के किनारे हरियाली, मूर्ति सदृश्य परिदृश्य, औशधि जड़ी बूटियों में प्रयोग किए जाने वाले उद्यानों, पौधों की नर्सरी को विकसित और अनुरक्षित किया जाता है।

● अपेक्षित, विकृत भूमि को पार्को में बदल दिया जाता है और आकर्षित बनाया जाता है जिससे सकारात्मक पर्यावरण का विकास होता है।

● निजी और सार्वजनिक को पुनर्निमित किया जाता है। ऐसा करने से क्षेत्र बहुत सुन्दर प्रतीत होता है जो आँखों को आनन्द प्रदान करता है जो कि स्थानीय लोगों के साथ - साथ पर्यटकों के लिए भी आवश्यक है।

● यह स्थानीय समुदाय को अपने प्राकृतिक और सांस्कृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए आर्थिक प्रोत्साहन देता है, क्योंकि ये संसाधन पर्यटन के लिए मूल्यवान होता है।

● जब पर्यटन को ठीक से प्रबंधित किया जाता है तो यह जैव विविधता संरक्षण में मदद करता है, क्योंकि पर्यटक अक्सर उन क्षेत्रों में जाते हैं जहाँ समृद्ध प्राकृतिक जीवन होता है।

मनोरंजन के क्षेत्र में सकारात्मक प्रभाव ः-आज के व्यस्त जीवन में मनोरंजन के साधन हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। मनोरंजन के माध्यम से हम अपनी थकान मिटा सकते है, तनाव को कम कर सकते हैं और अपनी रचनात्मकता को प्रोत्साहित कर सकते हैं। मनोरंजन के साधन हमें मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रखने में मद्द करते हैं। यह खुशी और संतोश का जरिया बनता है। गढ़वाल हिमालय में पर्यटन ने मनोरंजन के क्षेत्र में भी अपना विशेष प्रभाव डाला है।

गढ़वाल में मनोरंजन के केन्द्र, साहसिक खेल, धार्मिक स्थल और प्राकृतिक सुन्दरता है, जिनमें टिहरी झील, ऋशिकेश, कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान और औली शामिल है। जो पर्यटकों को मनोरंजन हेतु अपनी ओर खींच ले आते है। पर्यटक यहाँ राफ्टिंग, बंजी जंपिंग, पैराग्लाइडिंग, ट्रैकिंग, बोटिंग, जेट स्कींग, पैरासेलिंग और फ्लाई बोडिंग और स्पीट बोटिंग का आनन्द लेकर अपना मनोरंजन करते हैं।

निष्कर्ष - अतः स्पष्ट है कि गढ़वाल हिमालय में पर्यटन विकसित होने के फलस्वरूप इसने अपना सकारात्मक प्रभाव डाला है। जिसका महत्व आर्थिक, सामाजिक - सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय स्तर पर देखा गया है। पर्यटन ने गढ़वाल हिमालय की अर्थव्यवस्था मजबूत की है, विभिन्न संस्कृतियों के बीच समझ बढ़ाई है, स्थानीय समुदाय के जीवन स्तर में सुधार किया है साथ ही पर्यटन से रोजगार के अवसर बढ़े हैं जिससे ग्रामीण जनता को पलायन रोकने में मद्द मिली है। पर्यटन ने हमें नई जगहों और लोगों से परिचित करवाकर ज्ञान के विस्तार में वृद्धि और सोचने, बोलने और व्यवहार करने के तरीकों में व्यापक दृष्टिकोण का विस्तार किया है। साथ ही पयर्टन ने यहाँ पर रोजगार सृजनः आर्थिक विकास में बढ़ावा, सकल उत्पाद (जी एस डी पी) में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सन्दर्भ सूची

- एटकिंसन, ए0 टी0, 1982 : दि हिमालय ऑफ नार्थ वैस्टर्न ऑफ इण्डिया, एम0 पी0 डब्ल्यू0 पी0 इलाहाबाद।
- बैंजवाल रमाकांत, 2002 : गढ़वाल हिमालय - समाज, संस्कृति व यातायात पर्यटन का परिचयात्मक विवरण, पब्लिशिंग कम्पनी, 7 सन्तनगर (ईस्ट आफ कैलास), दिल्ली - 65।
- डबराल, शिव प्र्रसाद, 1965 : उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग - 3, वीरगाथा प्रेस, दुगड्डा पौड़ी गढ़वाल।
- डबराल, शिव प्रसाद, 1987 : गढ़वाल का नवीन इतिहास, भाग 1,2 (1441-1804), वीरगाथा प्रेस, दुगड्डा, पौड़ी गढ़वाल।
- हॉट, पी0 के, 1952 : मैथड्स इन सोशियल रिसर्च, मैग्रॉ हिल्स, बुक कम्पनी, न्यूयार्क।
- जोशी अतुल, 2020 : उत्तराखण्ड में पर्यटन के विभिन्न आयाम : अवसर एवं चुनौतियां, जगदम्बा पब्लिशिंग कम्पनी
- मेहरा, सुरेन्द्र सिंह, 1998 : उत्तरकाशी के धार्मिक पर्यटन स्थल, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज दिल्ली।
- नैथानी, शिव प्रसाद एवं, 1982 : उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य और पर्यटन सरस्वती पब्लिकेशन, श्रीनगर गढ़वाल।
- नेगी, मनमोहन, 1999 : पर्यटन एवं यात्रा के सिद्धान्त, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
- प्रसाद, शंकर काला, 1982 : गढ़वाल हिमालय में तीर्थयात्रा एवं नया पर्यटन, सरिता बुक हाउस 2594/194 श्रीनगर।
- सती, विसम्बर प्रसाद, 2025 : गढ़वाल में पर्यटन और आजीविका की स्थिति, स्प्रिंगर नेचर।
- तिवारी ए० , 2019 : उत्तराखण्ड हिमालय में पयर्टन और आजीविका की स्थिति, इण्डियन जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज।
- उत्तराखण्ड कल्याणकारी योजनाएं परीक्षावाणी उत्तराखण्ड : एक समग्र अध्ययन, केसरी नन्दन त्रिपाठी।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

CRITICAL EVALUATION OF SENIOR SECONDARY (CLASS 12) ENGLISH TEXTBOOKS: A STUDY BASED ON STUDENTS' RESPONSES

Mr. Vinod Kumar
Mentor

Mani Saluja
Student Name

Abstract

The present study critically evaluates selected Class 12 English textbooks from the perspective of students. Textbooks are an important component of school education because they provide organised learning content, guide classroom instruction and support the development of language and literary competencies. The study adopted a descriptive survey approach to examine students' responses regarding five major dimensions of textbook quality: content quality, language suitability, exercises and activities, inclusivity and values, and layout and design. A sample of 250 students responded to a 50-item evaluation tool. The data were organised through frequency and percentage analysis and presented using tables, bar graphs and a pie chart. The overall findings show that 62% of the recorded responses were favourable, while 38% were unfavourable. The result indicates a generally positive perception of the textbooks, but the proportion of disagreement also points towards areas requiring revision and improvement. The study concludes that periodic textbook evaluation, learner feedback, inclusive representation, accessible language, meaningful activities and improved presentation can strengthen the educational effectiveness of Class 12 English textbooks.

1. INTRODUCTION

Textbooks occupy an important position in the formal school education system. They provide a structured selection of knowledge and learning experiences and serve as an important link between curriculum objectives and classroom practice. In English education, textbooks provide opportunities for the development of language skills, literary understanding, communication and critical thinking. At the senior secondary level, these functions become especially important because learners are preparing for higher education, employment and participation in wider social life.

A Class 12 English textbook therefore needs to be relevant, accurate, understandable, inclusive and pedagogically meaningful. It should provide suitable literary and language content while also encouraging students to think, interpret, communicate and apply what they learn. Textbook evaluation is consequently necessary to determine whether the prescribed material continues to meet changing educational and learner needs.

Educational expectations are continuously changing because of developments in curriculum, technology, communication and social life. Contemporary learners require more than factual knowledge; they need critical thinking, creativity, communication, collaboration, social awareness and independent learning. Therefore, the quality of textbooks should be examined periodically.

The present study examines Class 12 English textbooks through students' responses across five broad dimensions. Students are direct users of textbooks, so their responses provide useful evidence concerning the accessibility, relevance and educational usefulness of prescribed learning material.

1.1. OBJECTIVES OF THE STUDY

- To critically evaluate the content quality of Class 12 English textbooks.
- To examine the suitability of language used in Class 12 English textbooks.
- To evaluate the exercises and activities provided in the textbooks.
- To examine inclusivity and values represented in the textbooks.
- To evaluate the layout and design of the textbooks.
- To analyse the overall response of students towards the selected textbooks.
- To identify major strengths and areas requiring improvement.

2. REVIEW OF RELATED LITERATURE

The literature review should cover research on textbook evaluation, English-language textbooks, senior secondary textbooks, content quality, language suitability, exercises and activities, inclusivity and values, and textbook design. Previous studies should be synthesised rather than merely listed. The review should identify established findings, methods used by earlier researchers and areas that remain insufficiently examined. The research gap should provide a clear justification for the present investigation.

2.1. Studies Conducted Abroad

International studies show that senior secondary English textbooks often provide well-organized content but remain examination-oriented, grammar-focused, and limited in speaking, listening, critical thinking, creativity, and real-life communication. Researchers such as Nunan, Littlejohn, Cunningsworth, Hajailan, Tok, Tomlinson, and others emphasized the need for learner-centred, communicative, culturally relevant, interactive, and skill-integrated textbooks. Studies from Asia, Europe, and the Middle East similarly reported limited learner engagement, authentic activities, higher-order thinking, and opportunities for collaboration and communication.

2.2. Studies in India

Indian studies also indicate that senior secondary English textbooks have gradually improved in content, organization, cultural representation, and alignment with curriculum reforms such as NCF-2005 and NEP-2020. However, researchers including Banerjee, Aggarwal, Verma, Sharma, Rao, Mukunda & Sinha, Singh & Gupta, Bhatia, Priyan Ranjan, Gupta, Rani, Patel & Verma, and Harpreet Kaur reported continued emphasis on literature, grammar, rote learning, and examinations, with insufficient speaking, listening, creativity, critical thinking, learner autonomy, and inclusive content. Overall, the reviewed studies highlight the need for continuous evaluation and revision of Class XII

English textbooks to make them more communicative, learner-centred, inclusive, interactive, and aligned with modern educational requirements.

3. Plan and Procedure

3.1. Research Mythology

Research approach and method: The study uses a quantitative orientation for analysing students' responses and may be described as a descriptive survey study.

Direct textbook content analysis may be added where the researcher independently examines textbook material.

3.2. Sample:

The sample collected in State board Two schools from nearly 250 students.

3.3. Tool:

A 50-item textbook evaluation questionnaire/rating scale organised under five dimensions. This questionnaire is developed by Harpreet kaur, a researcher at Chandigarh University.

Dimension	Items
Content Quality	10
Language Suitability	10
Exercises & Activities	10
Inclusivity & Values	10
Layout & Design	10
Total	**50**

3.4.Statistical analysis:

Frequency, percentage and graphical presentation were used for the present Agree/Disagree dataset. The exact validity and reliability procedures should be reported according to the procedures actually followed by the researcher.

4. RESULTS AND DATA ANALYSIS

The 50 evaluation statements generated 12,500 recorded responses (250 students × 50 statements). The aggregate dataset contains 7,750 Agree responses and 4,750 Disagree responses. Thus, the overall response distribution is 62% Agree and 38% Disagree.

Table 1. Consolidated Overall and Dimension-wise Response Distribution

Dimension	Agree	Disagree	Total	Agree %	Disagree %
Overall Response	7,750	4,750	12,500	62%	38%
Content Quality	1,561	939	2,500	62.4%	37.6%

Language Suitability	1,611	889	2,500	64.4%	35.6%
Exercises & Activities	1,505	995	2,500	60.2%	39.8%
Inclusivity & Values	1,472	1,028	2,500	58.9%	41.1%
Layout & Design	1,601	899	2,500	64.0%	36.0%

Figure 1. Consolidated graphical presentation of the overall response and all five dimension-wise item responses.

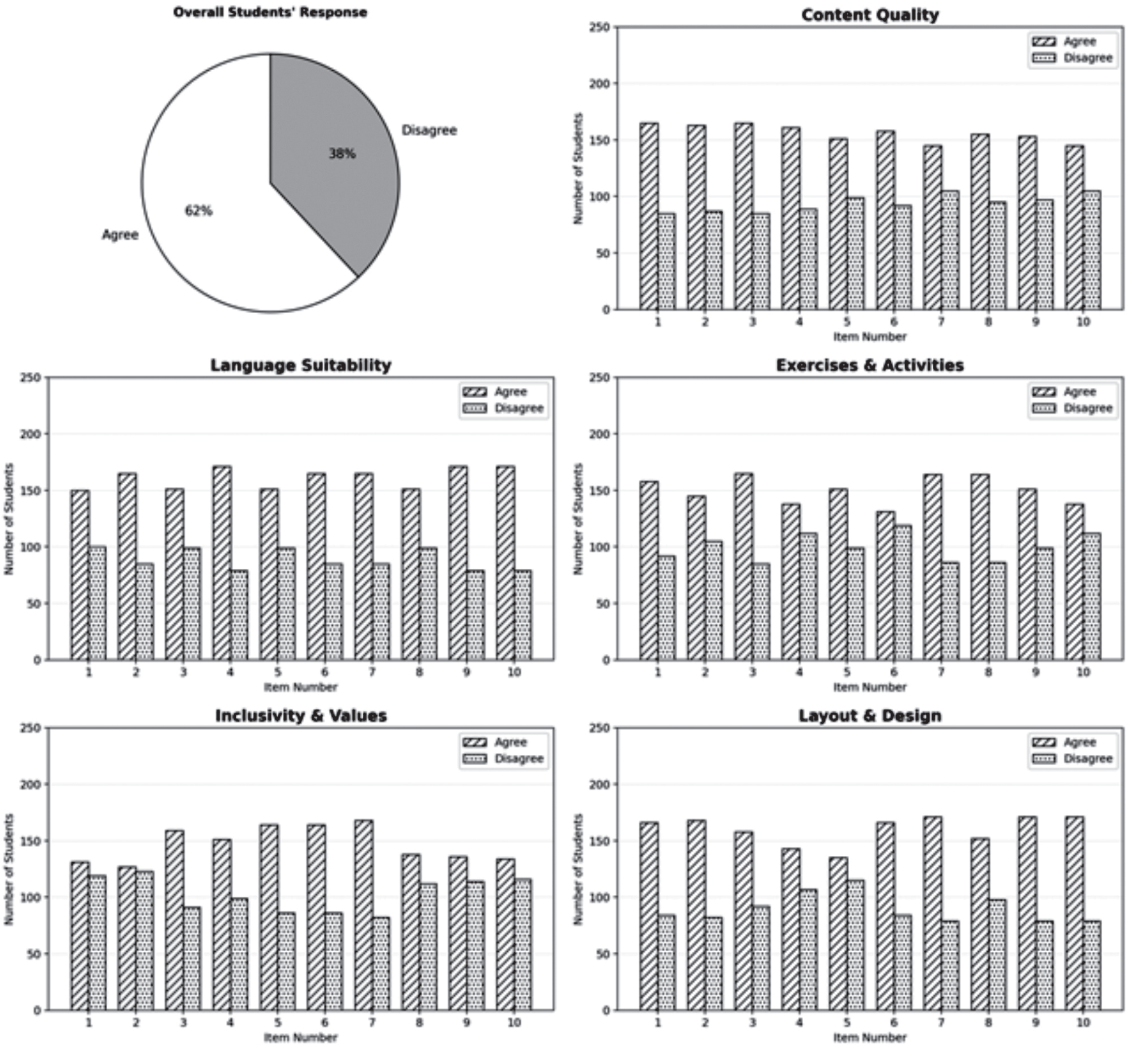

The pie chart shows that the larger proportion of responses (62%) is favourable, whereas 38% is unfavourable. The finding suggests that the textbooks are generally viewed positively by participating students, while the disagreement percentage indicates meaningful scope for improvement.

4.2 Data Interpretation

4.2.1- Content Quality

Across the ten statements under Content Quality, the dimension recorded 1561 Agree responses and 939 Disagree responses out of 2,500 responses. This corresponds to 62.4% agreement and 37.6% disagreement. The consolidated graph provides a visual comparison of the two response categories.

4.2.2- Language Suitability

Across the ten statements under Language Suitability, the dimension recorded 1611 Agree responses and 889 Disagree responses out of 2,500 responses. This corresponds to 64.4% agreement and 35.6% disagreement. The consolidated graph provides a visual comparison of the two response categories.

4.2.3- Exercises & Activities

Across the ten statements under Exercises & Activities, the dimension recorded 1505 Agree responses and 995 Disagree responses out of 2,500 responses. This corresponds to 60.2% agreement and 39.8% disagreement. The consolidated graph provides a visual comparison of the two response categories.

4.2.4- Inclusivity & Values

Across the ten statements under Inclusivity & Values, the dimension recorded 1472 Agree responses and 1028 Disagree responses out of 2,500 responses. This corresponds to 58.9% agreement and 41.1% disagreement. The consolidated graph provides a visual comparison of the two response categories.

4.2.5- Layout & Design

Across the ten statements under Layout & Design, the dimension recorded 1601 Agree responses and 899 Disagree responses out of 2,500 responses. This corresponds to 64.0% agreement and 36.0% disagreement. The consolidated graph provides a visual comparison of the two response categories.

The overall pattern indicates a favourable student perception of the selected Class 12 English textbooks. The 62% agreement suggests that a majority of respondents recognise positive qualities in the evaluated material. At the same time, the 38% disagreement is substantial enough to require attention. A favourable overall response does not mean that revision is unnecessary; rather, it indicates that the existing material provides a useful foundation while particular aspects can be strengthened.

5. MAJOR FINDINGS, CONCLUSION AND SUGGESTIONS

5.1.Major Findings

- The overall response was 62% Agree and 38% Disagree.
- Students generally expressed a favourable perception of the selected textbooks.
- The five dimensions provide evidence concerning content, language, activities, inclusivity and design.
- The disagreement responses indicate identifiable areas requiring improvement.

• Periodic evaluation using student and teacher feedback can support evidence-based textbook revision.

5.2. EDUCATIONAL IMPLICATIONS

The findings have implications for teachers, textbook writers, curriculum planners and educational institutions. Teachers can use supplementary activities where textbook material is insufficient. Textbook writers can use learner feedback to improve content relevance, language accessibility, activities and representation. Curriculum planners can incorporate systematic textbook evaluation into revision processes.

5.3. CONCLUSION

The study provides a systematic evaluation of Class 12 English textbooks using student responses across content quality, language suitability, exercises and activities, inclusivity and values, and layout and design. The overall 62% favourable response indicates that the textbooks are generally satisfactory from the students' perspective. However, the 38% unfavourable response demonstrates meaningful scope for improvement. Continuous evaluation, feedback and revision can help ensure that English textbooks remain relevant, inclusive, accessible and pedagogically effective.

SUMMARY

The present dissertation focuses on the critical evaluation of Class XII English textbooks with the purpose of examining their quality, relevance and effectiveness from the students' perspective. The review of related literature indicates that, although English textbooks have gradually improved in content, organization and cultural representation, many studies have reported continued emphasis on examination-oriented learning, grammar, rote learning and literary content, with comparatively limited opportunities for communication, creativity, critical thinking, speaking, listening and learner autonomy. These findings provided the rationale for the present study.

A descriptive survey approach was adopted. The study included 250 students, and data were collected through a 50-item textbook evaluation tool covering five dimensions: Content Quality, Language Suitability, Exercises and Activities, Inclusivity and Values, and Layout and Design. Frequency and percentage were used for analysing the Agree/Disagree responses.

The overall findings revealed 62% Agree and 38% Disagree responses, indicating a generally favourable perception of the textbooks. Language Suitability recorded the highest agreement (64.4%), followed by Layout and Design (64.0%), Content Quality (62.4%), Exercises and Activities (60.2%), while Inclusivity and Values recorded 58.9%. The study concludes that textbooks are generally satisfactory but require continuous evaluation and revision to promote learner-centred, inclusive, communicative and meaningful learning experiences.

BIBLIOGRAPHY

1. Brown, H. D. (2007). Principles of Language Learning and Teaching. Pearson Education.
2. Creswell, J. W. (2014). Research Design: Qualitative, Quantitative and Mixed Methods Approaches. Sage Publications.

3. Harpreet Kaur. (2018). Textbook Evaluation Checklist.
4. Kothari, C. R. (2014). Research Methodology: Methods and Techniques. New Age International.
5. McGrath, I. (2002). Materials Evaluation and Design for Language Teaching. Edinburgh University Press.
6. Nation, I. S. P., & Macalister, J. (2010). Language Curriculum Design. Routledge.
7. NCERT. (2005). National Curriculum Framework 2005. NCERT.
8. NCERT. (2022). Flamingo: English Core for Class XII. NCERT.
9. NCERT. (2022). Vistas: Supplementary Reader for Class XII. NCERT.
10. Richards, J. C. (2015). Curriculum Development in Language Teaching. Cambridge University Press.
11. Sheldon, L. E. (2004). Evaluating ELT textbooks and materials. ELT Journal, 58(4), 237–246.
12. Tomlinson, B. (2011). Materials Development in Language Teaching. Cambridge University press.
13. UNESCO (2015). Rethinking Education: Towards a Global Common Good? UNESCO.
14. Government of India (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

शिवाजी सावंत के मराठी से हिंदी में अनूदित प्रमुख उपन्यासों में वंचितों के प्रति संवेदना और संघर्षशील जीवन

अनुराधा
शोध छात्रा (पी एच डी हिन्दी, नेट)
शोध केन्द्र - डी ए वी कॉलेज कानपुर - 208001
संपर्क सूत्र 7027297767
Email id : rajputanjali306@gmail.com

शिवाजी सावंत मराठी भाषा साहित्य के एक प्रमुख भारतीय उपन्यासकार हैं। शिवाजी सावंत के उपन्यास मृत्युंजय लिखने के कारण उन्हें मृत्युंजयकार के रूप में भी जाना जाता है। उनके अन्य उल्लेखनीय रचनाएं छावा और योगेंद्र भी है। 1994 ई० में शिवाजी सावंत को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा दिए जाने वाले "मूर्तिदेवी पुरस्कार" से सम्मानित किया गया और इस सम्मान को पाने वाले यह पहले मराठी लेखक थे।

इन्होंने महाभारत महाकाव्य के प्रमुख किरदारों में से एक मुख्य किरदार "कर्ण" को मृत्युंजय के लिए चुना। मृत्युंजय उपन्यास कर्ण पर आधारित एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास का अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, मलयालम आदि में किया गया। इसे कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

शिवाजी सावंत का दूसरा प्रमुख उपन्यास "छावा" है जिसमें छत्रपति संभाजी के जीवन का संघर्ष एवं वंचितों की तरह जीवन देखने को मिलता है। छत्रपति संभाजी, छत्रपति शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। जिनके बारे में कई लेखकों एवं इतिहासकारों ने अपने इतिहास में अच्छा और बुरा भी लिखा है। लेकिन "छावा" उपन्यास में छत्रपति संभाजी के जीवन और कार्य का अच्छा लेखन मिलता है। इस उपन्यास में "छावा" का अर्थ है शेर का बच्चा। छत्रपति संभाजी महाराज का नाम महाराष्ट्र के इतिहास में अमर है।

'छावा' उपन्यास के बाद शिवाजी सावंत का उपन्यास 'युगन्धर लिखा गया, जो श्री कृष्ण के जीवन पर आधारित है। श्री कृष्ण भगवान महाभारत और अन्य महाकाव्य में एक महान हिंदू देवता होने के साथ-साथ हिंदुओं के भगवान भी हैं। इस उपन्यास को साहित्य अकादमी द्वारा कई पुरस्कारों से पुरस्कृत गया है।

इस शोध-पत्र में शिवाजी सावंत के प्रमुख उपन्यासों का व्याख्यान किया है, जो चर्चित एवं सर्वश्रेष्ठ हैं। निम्नलिखित उपन्यासों में मुख्य पात्रों के संघर्ष एवं वंचित जीवन के बारे में बताया है जो इस प्रकार है—

1. **मृत्युंजय** - शिवाजी सावंत द्वारा लिखित मृत्युंजय कर्ण पर आधारित है, जो महाभारत के मुख्य पात्रों में से लिए गए हैं। इस उपन्यास में कर्ण एक ऐसा पात्र है, जो पूर्वाग्रह से ग्रसित है क्योंकि महाभारत में यह कौरव दुर्योधन के मित्र थे। पांडवों से इन्होंने युद्ध किया था, इसलिए यह नायक होने के बावजूद भी कहीं-कहीं खलनायक प्रतीत होते हैं। किंतु जब मैंने मृत्युंजय उपन्यास को पढ़ा वह समझा तो ज्ञात हुआ कि कर्ण तो एक ऐसा योद्धा था जो कि इस धरती पर मिलना असंभव है। कर्ण के इस उपन्यास को पढ़कर मेरे मन में कर्ण के प्रति गहरी संवेदना होने लगी। यह उपन्यास हमें कई अपरिचित

घटना को बहुत पास से परिचित कराता है।

इस उपन्यास की कथा एक तरफा ना होकर कर्ण की जीवन गाथा है जो महाभारत के मुख्य पात्रों में से एक है। कर्ण एक सुतपुत्र थे जो माता कुंती को प्राप्त असाधारण वरदान के कारण प्राप्त हुए। जिसे कुंती ने समाज व संसार के डर के कारण, कुंती की दासी धात्री द्वारा एक डिब्बे में रखकर गंगा नदी में छोड़ दिया था। लेकिन यह डिब्बा हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र अधिरथ के पास पहुंच गया, जो गंगा नदी पर घोड़ा को धो रहे थे। बाद में अधिरथ व उनकी पत्नी राधा ने कर्ण की देखभाल में पालन पोषण किया। जन्म से लेकर अंत समय तक उन्हें अपनी माता के पुत्र सुख से वंचित रहना पड़ा।

यह उपन्यास कर्ण की आत्मकथात्मक शैली में लिखा है जो की मराठी उपन्यास की पौराणिक कथाओं में से एक है। यह उपन्यास कारण के आत्मकथा है कारण को सूर्यपुत्र, सुतपुत्र, राधेय, कौन्टेय आदि कई नाम से जाना जाता है। मृत्युंजय से तात्पर्य है मौत पर विजय प्राप्त करने वाला क्योंकि कर्ण इतने संघर्ष के साथ भी अकेला ऐसा बहादुर योद्धा था जिसने मौत को पास होते हुए दान दिया था।

इस उपन्यास में सुतपुत्र कर्ण के साथ-साथ उसके मित्र दुर्योधन, राजमाता कुंती, भगवान श्री कृष्ण, भाई शोण और उनकी पत्नी वृषाली के बारे में भी परिचय दिया है।

कर्ण एक योद्धा के साथ-साथ बहुत बड़े दानवीर भी थे। भगवान इंद्र ब्राह्मण वेश धारण करके कर्ण के पास आए थे। भगवान इंद्र ने कर्ण के कुंडलों कवच को दान में मांग लिया था जो उन्हें जन्म के साथ ही मिले थे। लेकिन कर्ण यह जानते हुए भी कि इन कवचों के बिना उनकी मौत निश्चित है, उन्होंने वह भगवान इंद्र को दान में दे दिए थे। कर्ण जैसा योद्धा, पुत्र, दानवीर आज के समय में मिलना बहुत कठिन है।

इसमें नायक कर्ण अपने संघर्षो का प्रतिनिधित्व करता है। कर्ण का संपूर्ण जीवन चक्रीय घटनाओं से चिन्हित है, जिसमें कर्ण का संघर्ष वंचित अस्तित्व गहरी निराशा को दर्शाता है। इसमें कर्ण ने दुर्योधन के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था, क्योंकि दुर्योधन कर्ण का परम मित्र था, कर्ण पांडवों में कुंती के ज्येष्ठ पुत्र व अर्जुन के बड़े भाई थे। जब उन्हें यह बात श्री कृष्ण से पता चलती है कि वह स्वयं पांडवों में ज्येष्ठ पुत्र व भाई हैं, तो वह इस बात को जानकर भी पांडवों के साथ रहने के लिए मना कर अपने परम मित्र दुर्योधन को चुनते हैं। कर्ण को भली भांति पता था कि दुर्योधन अन्याय की तरफ है लेकिन फिर भी कर्ण अपनी मित्रता के प्रति सच्ची निष्ठा व प्रेम दिखाते हैं। ने सुतपुत्र होने के कारण जीवन पर्यंत अपमान ही सहन किया है। ब्रह्मास्त्र विद्या प्राप्त करने के दौरान एक गाय चराने वाले का कर्ण को श्राप देना व विद्या समाप्त होने के बाद युद्ध के दौरान अपने गुरु परशुराम की ब्रह्मास्त्र विद्या भूल जाना कर्ण के लिए हमारे मन में गहरी संवेदना प्रकट करता है। कर्ण जन्म से ही स्वतंत्र इच्छा शक्ति के साथ पैदा हुए थे लेकिन दिव्य वरदान व महानता के कारण भी कर्ण नियति को नहीं बदल पता। अंततः उसके साथ अंत समय में वही होता है। युद्धभूमि में पहिया धंस जाता है। परशुराम के द्वारा सीखी गई सारी ब्रह्मास्त्र विद्या युद्ध की भूमि में कर्ण भूल जाता है और निहत्था मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पौराणिक उपन्यासों में कर्ण जैसा व्यक्ति एवं संघर्षशील वंचित योद्धा ने कभी देखा होगा और नहीं हम कभी देख पाएंगे।

2. छावा - शिवाजी सावंत का दूसरी अनुपम कृति 'छावा' है जो मृत्युंजय के बाद लिखी गयी। छावा उपन्यास एक वृहद एवं ऐतिहासिक है, जिसमें छत्रपति शिवाजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र छत्रपति संभाजी महाराज का वर्णन मिलता है। इसमें संभाजी के जीवन संघर्ष एवं बलिदान का चित्रण है। इस उपन्यास में संभाजी के जीवन के विभिन्न पहलुओं व उनके साहसी व्यक्तित्व एवं उनके अंत की त्रासद गाथा का वर्णन किया है।

छत्रपति संभाजी छत्रपति शिवाजी और उनकी पहली पत्नी सईबाई जी के सबसे बड़े पुत्र और मराठा साम्राज्य के दूसरे छत्रपति थे किंतु फिर भी इनका जीवन संघर्ष से घिरा हुआ था। कुछ इतिहासकारों ने संभाजी के बारे में अच्छा में बुरा लिखा है, लेकिन इस उपन्यास में उनका जीवन जन्म से ही मुश्किल परिस्थितियों से घिरा था। उन्होंने साहस के साथ सभी परिस्थितियों का सामना किया और मराठा साम्राज्य के वीर पुरुष कहलाए।

वीर संभाजी जन्म से ही संघर्ष के साथ जीवन जी रहे थे। बचपन में ही उनकी माता सईबाई की मृत्यु होने के कारण

वह माता के प्रेम-दुलार से वंचित रहे। छत्रपति शिवाजी की दूसरी पत्नी और संभाजी की सौतेली मां की भी ममता उन्हें नहीं मिली। मात्र 9 वर्ष की आयु में ही मृत्यु की झूठी अफवाह फैलाकर उन्हें एक अनजान जगह पर रखा गया।

उनकी सौतेली मां और भाई ने उनके खिलाफ अनेकों षड्यंत्र किये। अपनों के द्वारा किए गए षड्यंत्र और छल को उन्होंने संघर्ष के साथ जिया है। अंत समय में उत्तराधिकार के लालच में आकर उनके अपने रिश्तेदारों व गांव वालों ने शत्रु से हाथ मिला लिया और औरंगजेब के सेनापति मुकर्रब खान ने उन्हें अपने किले पर बंदी बना लिया। उनके साथ उनके प्रिय मित्र कवि कलश को भी बंदी बना लिया गया। संभाजी एवं उनके कवि मित्र पर मानसिक एवं शारीरिक अत्याचार शुरू किए गए। इस उपन्यास के अंतिम 20 पृष्ठों में इन दोनों की मृत्यु तक के 40 दिनों का अत्यंत हृदय विदारक वर्णन किया है। इतनी यातनाओं के बाद भी संभाजी, औरंगजेब के सामने झुके नहीं और न ही उन्होंने हिंदू धर्म का त्याग किया, जो कि औरंगजेब की हार का कारण बना।

संभाजी के इस व्यक्तित्व को जानकर मन में अनेकों भाव एवं हृदयविदारक चोटों का आघात होता है, जो असहनीय है।

3. युगन्धर- 'युगन्धर' उपन्यास 'छावा' उपन्यास के बाद का तीसरा उपन्यास है जो शिवाजी सावंत के द्वारा लिखित है। शिवाजी सावंत ने ऐसे उपन्यासों को लिखा जो हमारे हृदय को भाव-विभोर कर देते हैं और मन को संवेदनाओं से भर देते हैं।

युगन्धर उपन्यास श्री कृष्ण के जीवन को उद्घाटित करती है, जिसे किसी ने कभी न जाना, न ही समझा। युगन्धर की शुरुआत अंत से होती है और फिर फ़्लैशबेक में। यह उपन्यास श्री कृष्ण भगवान के जीवन का वृतांत है। शिवाजी सावंत द्वारा रचित श्री कृष्ण एक बहुआयामी चरित्र है जिन्हें न केवल एक दिव्या सत्ता के रूप में बल्कि भावनाओं, दुविधाओं और रिश्तो से ग्रस्त एक इंसान के रूप में भी चित्रित किया गया है, जो कि श्री कृष्ण के सूक्ष्म चित्रण को सहज और सुलभ बनता है। युगन्धर के 'आचमन' में लेखक ने श्री कृष्ण के बारे में एक सुंदर लेख प्रस्तुत किया जो इस प्रकार है–

"श्री कृष्ण जी सभी अर्थों में जीवन को गढ़नेवाली महान विभूति हैं इसका सबसे बड़ा गुणधर्म यही है कि जहां-जहां जीवन को बिगाड़ने वाली दुष्ट, अमंगल शक्तियां जीवन के मार्ग में रुकावट बनकर खड़ी हुई, दूरदर्शिता से पहले ही उन्हें पहचान कर श्री कृष्ण जी ने भिन्न-भिन्न मार्गो से उन्हें अविलंब जड़ सहित उखाड़ दिया।"

भगवान श्री कृष्ण जी हजारों वर्षो से भारतीय जनमानस के हृदय में व्याप्त व्यक्त व अव्यक्त रूप से कालजयी चरित्र के एक युग पुरुष हैं। जिनके चरित्र का वर्णन श्रीमद् भागवत, महाभारत, हरिवंश पुराण आदि में देखने को मिलता है। इन सभी पुराण एवं ग्रंथों में हजारों वर्षो से श्री कृष्ण जी के चरित्र पर सापेक्ष विचारों की मनगढ़ंत पढ़ते चढ़ा रखी हैं। जिसके कारण वह एक चमत्कारी व्यक्तित्व बने रहे और आज श्री कृष्ण जी वास्तविकता से अनंत दूरी पर है।

जिस प्रकार आकाश में तपता सूर्य कभी पुराना नहीं होता, उसी प्रकार महाभारत कथा का मेरुदंड यह तत्वज्ञ वीर भी कभी भारतीय मानस पटल से गायब नहीं हो सकता।

इस उपन्यास में लेखक ने उन मुख्य पात्रों का वर्णन किया है, जो श्री कृष्ण जी के साथ भावनात्मक रूप से करीब थे। रुक्मणी, द्रोपदी, अर्जुन, उद्धव, दारुक और सत्यकी जैसे 13 प्रमुख पात्रों के द्वारा श्री कृष्ण के व्यक्तित्व को अलग-अलग पहलुओं द्वारा उभारा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने श्री कृष्ण जी को सिर्फ एक देवता के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसे इंसान के रूप में गढ़ा है जो कूटनीति और प्रेम के बीच खड़ा है।

निष्कर्ष

संक्षेप रूप में हम कह सकते हैं कि मेरा यह शोध पत्र शिवाजी सावंत के तीन प्रमुख उपन्यास मृत्युंजय, छावा और युगन्धर पर आधारित है। इसमें मृत्युंजय के पात्र कर्ण, छावा के छत्रपति संभाजी, युगन्धर के श्री कृष्ण जी इन तीनों के चरित्र का वर्णन और जीवन वृतांत इतना मार्मिक एवं हृदयविदारक है कि कोई भी व्यक्ति इन्हें पढ़ते व लिखते समय रो देते हैं। मैंने

स्वयं यह महसूस किया है कि इन सभी पौराणिक उपन्यास से मैं भावात्मक एवं संवेदनात्मक रूप से जुड़ चुकी हूं। इन तीनों पात्रों को वह अधिकार एवं सम्मान नहीं मिल पाया जिसका उन्हें हक था। मृत्युंजय के कर्ण ने जीवन पर्यंत सुतपुत्र संबोधन सुन अपमान सहा। एक दानवीर, योद्धा, साहसी, निडर व सबके दुखों को समझने वाले ये तीनों पात्र उन सभी अधिकारों से वंचित रहे जिसका उन्हें संपूर्ण हक था।

संदर्भ ग्रंथ

1. मृत्युंजय, मूल मराठी लेखक-शिवाजी सावंत, हिंदी अनुवादक-ओम शिवराज, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2022 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. छावा, मूल मराठी लेखक-शिवाजी सावंत, हिंदी अनुवादक - वेदकुमार वेदालंकार, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2021 नई दिल्ली।
3. युगन्धर, मूल मराठी लेखक शिवाजी सावंत हिंदी अनुवादक मृणालिनी शिवाजी सावंत, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2020, नई दिल्ली।
4. युगन्धर - पृष्ठ संख्या आचमन (11)

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

गीतांजलि श्री का परिचय और व्यक्तित्व

दीपिका श्रीमाली
(शोधार्थी)
उदयपुर (राजस्थान)
ईमेल-Shrimalideepika4489@gmail.com

परिचय

"गीतांजलि श्री" का कथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म 12 जून 1957 को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ था। इन्हें "गीतांजलि पांडे" के नाम से जाना जाता है। इनके पिता सरकारी अफसर थे। गीतांजलि श्री का बचपन उत्तर-प्रदेश के अलग-अलग शहरों में बीता। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा उन शहरों के स्थानीय स्कूलों में हुई। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। लेकिन घर में उनके हिन्दी बोली जाती थी। लेखिका का परिचय उत्तर-प्रदेश की बोली से घर पर ही हुआ। घर में आने-जाने वाले स्थानीय लोगों के सम्पर्क ने इन्हें स्थानीय बोली व संस्कृति से परिचित कराया। धीरे-धीरे समय के साथ वे यहाँ की संस्कृति व भाषा से जुड़ती चली गयी। गीतांजलि श्री" ने दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज से स्नातक और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से इतिहास में एम. ए. किया। महाराज सयाजी राव विश्वविद्यालय वडोदरा से प्रेमचन्द और उत्तर भारत के औपनिवेशिक शिक्षित वर्ग विषय पर शोध की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय तक जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में अध्यापन के बाद सूरत के सेंटर फॉर सोशल स्टडीज में पोक्ट डॉ टरल रिसर्च के लिए गई। वहीं रहते हुए उन्होंने कहानियाँ लिखनी शुरू की। उनका परिवार मूल रूप से गाजीपुर जिले के गोडउर गाँव का रहने वाला है। बाल अधिकार संरक्षक डॉ. एस पी सिंह ने कई सम्मेलनों में कहाँ की आप बाल अधिकारों के लिए भी अच्छा लिखते है। "गीतांजलि श्री" ने एक साक्षात्कार में बताया है कि मेरा बचपन यू.पी. के अलग- अलग शहरों में गुजरा जहाँ मेरे पिता बतौर प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त थे। मैंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा लोकल अंग्रेजी माध्यम स्कूलों से शुरू की। हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य से मेरा संबंध अनौपचारिक और व्यक्तिगत था मेरी माँ सिर्फ हिन्दी ही बोलती थी। मेरे आसपास उत्तरप्रदेश के शहरों में सब कुछ हिन्दी में ही था। बचपन में मैंने ज्यादा से ज्यादा हिन्दी की पत्रिकाएँ, पढ़ी, आज के दौर के उन सभी अंग्रेजी स्कूलों में जाने वाले बच्चों से ज्यादा- चंदा मामा, पराग, नंदन जैसी हिन्दी पत्रिकाएं रामायण, महाभारत, अरेबियन रातें, शेख चिल्ली, पंचतन्त्र, कथासरित्सागर, भूतनाथ और चन्द्रकांता संतति की कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ते थे। शायद आज जितनी पत्रिकाएँ अंग्रेजी में बच्चों को उपलब्ध है, वे उस समय उपलब्ध नहीं थी और इनके अभाव ही ने मुझे हिन्दी पत्रिकाओं की तरफ, हिन्दी भाषा का जानने समझने की तरफ मोड़ा। बचपन के दिनों में ही उनकी नजदीकी मित्रता मुंशी प्रेमचन्द की पोती व उसके परिवार से थी। इसके साथ ही साहित्यिक कार्यक्रमों में भी वे हिस्सा लेती थी। सरकारी नौकरी में पिताजी के होने के कारण उनके स्थानांतरण जगह - जगह होते थे। इस कारण उन्हें जगह-जगह उत्तरप्रदेश के छोटे - बड़े शहरों में रहने का मौका मिला। जगह-जगह जाने के स्थानीय लोगो से मिलने का, वहाँ के जन - जीवन को पास से देखने का मौका मिला। उत्तर-प्रदेश के परिवेश

व यहाँ के सामाजिक व पारिवारिक ढाँचे को उन्होंने बेहतर ढंग से जाना था/उस समय राष्ट्रीयता की भावना जोरों पर थी और हिन्दी का ही बोलबाला था। छोटे-बड़े सभी शहरों में काव्य-गोष्ठियां आयोजित होती रहती थी और साहित्यकारों को बुलाया जाता था। जब पिताजी की पोस्टिंग इलाहाबाद में थी तब वहाँ महादेवी वर्मा, फिराक गोरखपुरी, सुमित्रानंदन पंत जैसे साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला। गीतांजलि श्री के घर पर भी कवि सम्मेलन होते रहते थे जिस कारण उनकी रुचि साहित्य और कला में बढ़ती गयी। उन्होंने बताया कि उनकी मित्रता और संबंध मुंशी प्रेमचन्द की पोती और उनके पूरे परिवार से थी। जिसने उन्हें संस्कृति व साहित्य की तरफ जोड़ने में एक सकारात्मक भूमिका निभायी। मुंशी प्रेमचन्द के पूरे परिवार का झुकाव साहित्य की तरफ ही था। शायद आज जितनी पत्रिकाएँ अंग्रेजी में बच्चों को उपलब्ध है, वे उस समय उपलब्ध नहीं थी और इनके अभाव ही ने मुझे हिन्दी पत्रिकाओं की तरफ, हिन्दी भाषा का जानने समझने की तरफ मोड़ा। बचपन के दिनों में ही उनकी नजदीकी मित्रता मुंशी प्रेमचन्द की पोती व उसके परिवार से थी। इसके साथ ही साहित्यिक कार्यक्रमों में भी वे हिस्सा लेती थी। सरकारी नौकरी में पिताजी के होने के कारण उनके स्थानांतरण जगह - जगह होते थे। इस कारण उन्हें जगह-जगह उत्तरप्रदेश के छोटे - बड़े शहरों में रहने का मौका मिला। जगह- जगह जाने के स्थानीय लोगो से मिलने का, वहाँ के जन - जीवन को पास से देखने का मौका मिला। उत्तर-प्रदेश के परिवेश व यहाँ के सामाजिक व पारिवारिक ढाँचे को उन्होंने बेहतर ढंग से जाना था। उस समय राष्ट्रीयता की भावना जोरों पर थी और हिन्दी का ही बोलबाला था। छोटे-बड़े सभी शहरों में काव्य-गोष्ठियां आयोजित होती रहती थी और साहित्यकारों को बुलाया जाता था। जब उनके पिताजी की पोस्टिंग इलाहाबाद में थी तब उनको वहाँ महादेवी वर्मा, फिराक गोरखपुरी, सुमित्रानंदन पंत जैसे साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला। गीतांजलि श्री के घर पर भी कवि सम्मेलन होते रहते थे जिस कारण उनकी रुचि साहित्य और कला में बढ़ती गयी। उन्होंने बताया कि उनकी मित्रता और संबंध मुंशी प्रेमचन्द की पोती और उनके पूरे परिवार से थी। जिसने उन्हें संस्कृति व साहित्य की तरफ जोड़ने में एक सकारात्मक भूमिका निभायी। मुंशी प्रेमचन्द के पूरे परिवार का झुकाव साहित्य की तरफ ही था। गीतांजलि श्री को अपने करियर का चुनाव करने में भी विरोध का सामना करना पड़ा। गीतांजलि श्री के पिताजी चाहते थे कि वे आई. ए. एस. बने और किसी आई. ए. एस. से ही शादी करे। लेकिन गीतांजलि श्री का मन नहीं था तो उन्होंने जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय से आधुनिक भारतीय इतिहास में स्नातकोत्तर किया, पी. एच. डी. भी उन्होंने इतिहास में ही किया। गीतांजलि श्री का रुझान साहित्य की तरफ बचपन से ही था। लेकिन व्यवस्थित ढंग से कथा-लेखन की शुरुआत उन्होंने अपनी पी. एच. डी. जमा करने के बाद की। गीतांजलि भी अपने कहानी लेखन के विषय में सुषमा बेदी को दिए गए, साक्षात्कार में वे बताती है - मैं बचपन से ही खुद को लेखक मानती थी। मेरी माँ होती थी कि बच्चे कहते हैं कि कहानी सुनाओं और मैं कहती थी कि कहानी सुनिए मुझ से। बचपन से मुझे लगता था कि मैं लेखक प्रारम्भिक स्कूल के दिनों में मैं अंग्रेजी में रोमांचक कहानियाँ लिखा करती थी, इनिड ब्लाइटन से प्रभावित। जब मैंने पी. एच. डी. अपनी सब्मिट की और शायद मैं उस समय तीस वर्ष की होने जा रही थी। तो मेरे मन में एक पैनिक की स्थिति बनी कि अरे, मैं अपने को लेखक मानती हूँ तो कब लिखूंगी। तब फिर मैंने घबराकर कुछ लिखना शुरू किया और कॉलेज डेज में अकेले बैठकर ऐसा नहीं था कि लिखा नहीं था। लिखा था पर बहुत ज्यादा लोगो को दिखाया भी नहीं था। सिर्फ एक - दो दोस्तों को दिखाया कुछ अंग्रेजी में भी कोशिश करी, कुछ हिन्दी में भी किया पर उसको बढ़ाया नहीं।जब ये पैनिक आया तो बिल्कुल पता नहीं बाढ़ जैसा ऐसा कुछ फूटा मेरे अंदर और ऐसे लगातार ताबड़तोड़ मैंने जो कहानियाँ लिखी उस वक्त कि खुद मैं भी हैरान हुई। यह नहीं कि बहुत अच्छी चीजें लिख गयी, पर बुरी नहीं थी बहुत संभावनाएँ दिख रही थी और जिनको पढ़ाया उनको भी लगा कि अरे हाँ यह तो तुम कर सकती हो, बहुत देर से शुरू किया और तीस साल की उम्र हो गयी थी और बहुत तेजी से लिखा उस वक्त। औपचारिक शिक्षा के अभाव में, इतिहास ही उपलब्ध विकल्प था, लेकिन उन्होंने हिन्दी - साहित्य का ट्यूटोरियल लेना शुरू किया। अपनी पी. एच. डी. के लिए उन्होंने महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय बड़ौदा के एक इतिहासकार के साथ प्रेमचन्द पर काम करना शुरू किया प्रेमचन्द जी 20वीं शती के राष्ट्रीय बौद्धिक व्यक्तित्व के समृद्ध उदाहरण हैं। उन्होंने उन पर एक शोध - ग्रंथ भी लिखा है- " बिट्वीन टू वर्ल्डसः" एन इंटेलेक्चुअल बायोग्राफी ऑफ प्रेमचंद"

अपने शोध ग्रंथ के बारे में आउटलुक को दिए साक्षात्कार में वे बताती है- “निःसंदेह इसने मुझे अनुमति दी कि मैं हिन्दी जगत में पूरी तरह प्रवेश कर जाऊँ स्पष्ट तौर पर ये सभी महत्वपूर्ण बनने के वर्ष थे और इसने मेरी लेखनी को प्रभावित किया। गीतांजलि श्री के अब तक पाँच उपन्यास और पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों में “माई” (1993 ई.) हमारा शहर उस बरस (1998 ई.) तिरोहित (2001ई.) खाली जगह (2006 ई.), रेत समाधि (2018) शामिल है। उनके कहानी संग्रह है - अनुगूंज (1991 ई.) वैराग्य (1999) मार्च, माँ और साकुरा (2008). प्रतिनिधि कहानियाँ (2010ई) यहाँ हाथी रहते थे (2012) ⁄उनके अन्य शैक्षणिक प्रकाशन हैः “प्रेमचन्द एंड इंडस्ट्रियलिज्मः ए स्टडी इन एडीड्ष्यूनल एंबिवैलैंस, ‘प्रेमचन्द एंड द पिजेंदीः कंस्ट्रेड रेडिकलिज्मइको [1] नॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकलि, (26), (25 जून, 1983 ई.) द नार्थ इंडियन इंटेलिजेशिया एंड द हिन्दू - मुस्लिम क्वेश्चन (क्वेश्चन) ए स्टडी आफ प्रेमचन्द राइटिंग्स’ (22 सितम्बर, 1984 ई.)। गीतांजलि श्री की पहली कहानी “बेलपत्र” का प्रकाशन सन 1987 ई. में हंस पत्रिका में हुआ था। लेकिन एक लेखक के रूप में उनकी पहचान अनुगूंज (1991ई.) के प्रकाशन के बाद बनी जो एक कहानी संग्रह है। इनके कथा - साहित्य का अनुवाद व्यापक स्तर पर हुआ है। इसमें अंग्रेजी के साथ-साथ जर्मन, फ्रेंच, सर्बिया, बांग्ला, उर्दू, मलयालम, उड़िया और गुजराती भाषाएं शामिल है। हालांकि “माई” (1993 ई.) उपन्यास के अंग्रेजी अनुवाद ने उन्हें सर्वप्रथम यश दिलाया। इसका अनुवाद नीता कुमार ने किया है जो प्रसिद्ध स्कॉलर व लेखिका है। वर्तमान में वे ब्रैडिस विश्वविद्यालय (यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका) में मानव विज्ञान पढ़ाती है। सन् 2002 ई. में नीता कुमार को “माई“ उपन्यास के अंग्रेजी अनुवाद के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। “माई” उपन्यास के अंग्रेजी अनुवाद को ह्यूचिसन क्रासवर्ड अनुवाद पुरस्कार के लिए भी शॉर्टलिस्ट किया गया था। ‘खाली जगह’ उपन्यास का निवेदिता मेनन ने “द एम्प्टी स्पेस“ नाम से अंग्रेजी अनुवाद किया है जो बम धमाके से हुई त्रासदी को चित्रित करती है। इस उपन्यास का अनुवाद उर्दू में भी हुआ है। अंग्रेजी साहित्य ‘द एम्प्टिस्पेस’ के 2013ई. में डिएससी प्राइज फॉर साउथ एशियन लिटरेचर के लिए भी चयनित किया गया था। “तिरोहिता (2001ई.) का अंग्रेजी अनुवाद राहुल सोनी ने “द रूफ बिनीय देअर फीट’ शीर्षक से किया है। उनका उपन्यास ‘रेत-समाधि) (2018 ई.) सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की पहली ऐसी रचना है जिसके अंग्रेजी अनुवाद “टॉब आफ सेंड” (अनुवाद - डेजी रॉकवेल) को प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार की लम्बी सूची में स्थान मिला है।

व्यक्तित्व

हिन्दी साहित्य की चर्चित और प्रतिष्ठित कथाकार गीतांजलि श्री समकालीन लेखन में एक विशिष्ट स्थान रखती है। उनकी रचनाएं न केवल विषयवस्तु की दृष्टि से नवीन हैं, बल्कि भाषा, कथन-शैली और संवेदना के स्तर पर भी वे प्रयोगशील और सृजनात्मक दृष्टि प्रस्तुत करती है। उनके व्यक्तित्व के कई ऐसे आयाम हैं जो उन्हें अन्य लेखकों से अलग, विशिष्ट और महत्वपूर्ण बनाते हैं। सबसे पहले उनका साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यन्त समृद्ध और बहुआयामी है। गीतांजलि श्री ने हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री- अनुभव, ऐतिहासिक चेतना, सामाजिक- सांस्कृतिक द्वंद्व, स्मृति और समय जैसे विषयों को गहन संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा में कविता की लय, कथा की सहजता और विचार की गहराई स्वाभाविक रूप से देखी जा सकती हैं। माई, हमारा शहर उस बरस, तिरोहित, रोंदे और विशेष रूप से रेत समाधि जैसी कृतियाँ उनके अद्वितीय साहित्यिक कौशल का प्रमाण है। उनका लेखन पारंपरिक कथा-ढांचे से अलग दिशा में चलता है, जहाँ अर्थ कई स्तरों पर खुलता है। दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उनका नारीवादी दृष्टिकोण। वे किसी घोषणात्मक नारीवाद की समर्थक नहीं है, बल्कि उनके पात्रों; स्थितियों और कथा विन्यास में स्त्री की आंतरिक जटिलताओं मनोवैज्ञानिक संघर्षो और सामाजिक बंधनों का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। उनध्की स्त्रियाँ केवल पीड़ित नहीं, बल्कि विचारशील, संघर्षशील और अपनी पहचान के लिए सजग है। वे पितृसत्ता के कठोर ढाँचों को प्रश्नांकित करती है और पाठक को नए मानवीय दृष्टिकोण से सोचने के लिए प्रेरित करती है। उनके व्यक्तित्व का तीसरा पक्ष है भाषा के प्रति उनका गहरा लगाव। गीताजंलि श्री हिन्दी के साथ- साथ उर्दू, अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की परंपराओं से समृद्ध है। उनकी भाषा में लोक और शास्त्र, आधुनिकता और परंपरा - दोनों

की संगति दिखाई देती है। वे भाषा को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि कथा की आत्मा मानती है। इसी कारण उनके उपन्यासों में भाषा एक सक्रिय चरित्र की तरह उपस्थित होती है। रेत समाधि में यह भाषा-प्रयोग अपने चरम रूप में दिखाई देता है। गीतांजलि श्री के व्यक्तित्व का एक अन्य पक्ष है उनका वैश्विक साहित्यिक योगदान। अंतरराष्ट्रीय मंच पर उन्हें भारी पहचान रेत समाधि के अंग्रेजी अनुवाद ट्रम्ब ऑफ सैंड के लिए मिली, जिसे 2022 में बुकर्स अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह सम्मान न केवल उनके लिए बल्कि संपूर्ण हिन्दी साहित्य के लिए ऐतिहासिक महत्व रखता है। इससे सिद्ध होता है कि उनका साहित्य स्थानिक सीमाओं से परे जाकर वैश्विक मानव - अनुभवों से संवाद स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त, उनका संवेदनशील, विचारशील और सामाजिक रूप से सजग व्यक्तित्व भी उल्लेखनीय है। वे समाज, राजनीति, इतिहास और संस्कृति के प्रश्नों से गहराई से जुड़ी हुई है। उनके लेखन में हिंसा, विस्थापन, विभाजन, स्मृति और पहचान जैसे प्रश्नों पर तीक्ष्ण दृष्टि मिलती है। फिर भी, उनका स्वर कद्र नहीं, बल्कि मानवीय करुणा और आशा से भरा हुआ है।

अंततः गीतांजलि श्री का व्यक्तित्व एक ऐसे रचनाकार का है जो निरंतर नए रास्तों की तलाश करती है। उनका लेखन हमें सोचने, प्रश्न करने और मानव जीवन की जटिलताओं को समझने की दिशा देता है। यही विविधता, गहराई और प्रयोगशीलता उन्हें समकालीन हिन्दी साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण और विशिष्ट लेखिकाओं में शुमार करती है। गीतांजलि श्री पर अनुसंधान करते समय उनसे दूरभाष पर बात करते समय एवम् यूट्यूब पर साक्षात्कारों से उनके व्यक्तित्व व विचारों को जानने पर यह पता चलता है कि प्रभावशाली व्यक्तित्व की धनी गीतांजलि श्री मध्यम कद की, रंग गोरा, दीप्तिमान आँखे, कांतियुक्त चेहरा, सुन्दर घने बाल, भरी हुई सुन्दर देह दृष्टि मन को मोहने वाली मुस्कराहट हमेशा अपने आभा मण्डल में बनाए रखती है। उनकी मुस्कराहट उनके भव्य व्यक्तित्व की पहचान कराती है। उनके चेहरे पर हमेशा यह भाव रहता है कि वे जो भी कहती है स्पष्ट व बिंदास कहती है। आप मृदुभाषी, मिलनसारी, ममतामयी आकर्षक व्यक्तित्व की धनी है। गीतांजलि श्री को अपने देश, परिवेश तथा प्रदेश से बहुत जुड़ाव सा है पिता की आई. ए. एस. में नौकरी होने से वे विभिन्न छोटे-बड़े शहरों से जमीनी तौर पर जुड़ी हुई- सी प्रतीत होती है। गीतांजलि श्री के लेखन की स्पष्ट होता है कि उनके व्यक्तित्त्व में स्वाभिमान कूट- कूट कर भरा हुआ है। गीतांजलि श्री का आन्तरिक व्यक्तित्व कोमल भावनाओं के युक्त संवेदनशील व अच्छे विचारों से भरा हुआ है। आपके मुख मण्डल पर तेजस्विता की किरण हर समय प्रकाशमय होती रहती है। उनकी सकारात्मक सोच उन्हें आशावादी बनाए रखती है। गीतांजलि श्री के विचार प्रगतिशील हैं। समाज की विविध समस्याओं पर चिंतन मनन कर यथार्थ रूप से लेखन प्रस्तुत करती है। गीतांजलि श्री के स्वभाव में हम निभीकता, यथार्थ को स्थापित करने की उत्कट लालसा, खुलापन, लेखन के प्रति पूर्ण निष्ठा, स्त्री की प्रति जागरूकता एवम् विद्रोहात्मकता, नयी सोच स्पष्ट रूप से झलकती है। गीतांजलि श्री को प्रकृति से काफी लगाव है वे प्रकृति के समक्ष वे अपने आप को बौना समझती है प्रकृति उनके लिए बहुत उम्दा चीज है। व्यक्ति के जन्म लेने के पश्चात ही प्रकृति और परिवेश से उसका संबंध स्थापित होता है। और पृथ्वी लोक के व्यवहार और क्रियाओं के अनुरूप वह प्रतिक्रिया करता है, सोचने समझने की कोशिश करता हुआ बहुत कुछ सीखता चला जाता है। इस प्रकार ज्ञान, अनुभव और व्यवहार से प्राप्त सारभूत निष्कर्षों को सहेजता हुआ वह जीवन निर्वाह के क्रम को उत्तरोत्तर बढ़ाता चला जाता है। यही समूची यात्रा उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग और सम्बल प्रदान करती है। कौटुम्बिक, पारिवारिक, परिवेशीय एवं सामाजिक सामुदायिक, धार्मिक आदि से संबंधित समन्वय, संस्कारों, लोक व्यवहार, इनमें आत्म भागीदारी, आवासीय गतिविधियों, खान-पान आदि के तौर- तरीकों ज्ञान तथा इनसे संबंधित अनुभवों का मिश्रण ही व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित होता है और इन्हीं के आधार पर व्यक्तित्व को परिभाषित किया जा सकता है एवं उद्घ्घाटित किया जा सकता है। यह व्यक्तित्व न केवल सकारात्मक बल्कि नकारात्मक परिवर्तनों और इससे उत्पन्न बदलाव और वैचारिक क्रांति की झलक व्यक्ति के जीवन से महसूस की जा सकती है। व्यक्तित्व निखार में मौलिक बिम्बों का योगदान सर्वोपरि होता है जिनके सहारे व्यक्ति अपने मन की कल्पनाओं और भावनाओं के बिम्ब देता हुआ प्रगति के आयाम स्थापित करता है और मौलिक अभिव्यक्ति तथा सृजन कर्म के सहारे कालजयी यश और कीर्ति प्राप्त करता है। गीतांजलि श्री की सकारात्मक सोच उन्हें आशावादी बनाए रखती है। समाज की विविध समस्याओं पर चिंतन मनन कर यथार्थ रूप से लेखन प्रस्तुत करती हैं।

वे प्रकृति से भी जुड़ी हुई है। प्रकृति उनके लिए खूब मायने रखती है। इसलिए उनका लेखन प्रकृति प्रधान स्वीकारा जाता है।

भारतीय समाज में नारी की स्थितियों के बारे में चल रही धारणाओं आए बदलाव और युगीन तत्वों के समावेश पर उनका गहन अध्ययन - चिन्तन और मनन न केवल उनके सृजन कर्म की विलक्षणता में झलकता है स्त्री विमर्श से संबंधित परिष्करणमें भी उनके सारभूत निष्कर्ष और सुझाव अपने आप में यादगार और अविस्मरणीय लेखन को अभिव्यक्त करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य सागर www.google.com
2. हमारा शहर उस बरस, संपादक गीतांजलि श्री, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1997

पता
दीपिका श्रीमाली पुत्री श्री कुंदन लाल श्रीमाली
14, बाबेल स्ट्रीट, रावजी की हाटा,
उदयपुर (राजस्थान) 313001
मो. न.9680784760
ईमेल-Shrimalideepika4489@gmail.com

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

संबंधों की त्रासद नियति 'रेहन पर रग्घू'

राहुल वर्मा
(शोधार्थी) हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
संपर्क सूत्र : 7557314948
ईमेल : rv567894321@gmail-com

शोध सार

प्रस्तुत शोध आलेख 'संबंधों की त्रासद नियतिरू रेहन पर रग्घू' में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास की कथा पारिवारिक संबंधों की कथा है, जिसमें परिवार के सदस्यों के बीच के संबंध नई सोच और पारंपरिक विचारधारा की टकराहट से बदल गए हैं। कथानायक वृद्ध रघुनाथ का अपने पुत्रों से एकतरफ़ा संबंध है। रघुनाथ अपने बच्चों की ज़रूरतों और आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं, वहीं उनके बेटों को अपने वृद्ध माता-पिता की कोई परवाह नहीं है। शीला और सरला माँ-बेटी अवश्य हैं किंतु दोनों के बीच आत्मीय संबंध नहीं हैं। ससुर के रूप में रघुनाथ अपनी पुत्रवधू सोनल के साथ अपनी तरफ़ से संबंधों को बेहतर बनाने की कोशिश करते हैं। शीला और सोनल के संबंध पारंपरिक सास और आधुनिक बहू के हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण, बाजारवाद और भूमंडलीकरण की आंधी में पारिवारिक संबंधों में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन में बड़े-बुज़ुर्ग सिमटकर घर के एक कोने में अनुपयोगी वस्तु बनकर रह गए हैं, जो न केवल हमारे व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करता है, अपितु सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारण के रूप में भी उभरता है। इस प्रकार की समस्याओं ने भारतीय परिवेश और संस्कृति को पूर्णतः परिवर्तित कर बाजारवादी संस्कृति में तब्दील कर दिया है, जिसने हमारे बुद्धि-विवेक को गहराई से प्रभावित कर सामाजिक और नैतिक मूल्यों का क्षरण किया है।

बीज शब्द : वृद्ध, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, आधुनिकीकरण, निजीकरण, अकेलापन, निराशा, संत्रास।

मूल आलेख

मनुष्य अपने भविष्य को निरंतर सुखमय बनाने के लिए जीवन भर अनेक प्रकार की तैयारियाँ करता रहता है। कभी वह भविष्य को सुखमय और भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न बनाने के लिए जीवन भर कठिन परिश्रम करता है, तो कभी वह बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, उनकी ज़रूरतों, माँगों और उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए कड़ी धूप में मेहनत करता है। उसका पूरा जीवन परिवार की तमाम व्यवस्थाएँ पूरी करने में व्यतीत हो जाता है। जब तक वह व्यक्ति घर-परिवार में आमदनी का जरिया होता है, तब तक वह घर-परिवार में सम्मान और प्रतिष्ठा का अधिकारी समझा जाता है। जैसे-जैसे वह अपने जीवन के संध्याकाल की ओर अग्रसर होता है, वैसे-वैसे ही घर-परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त समाज के लोग भी उसे बेकार और फ़ालतू समझने लगते हैं, जिसके कारण घर में कलह शुरू हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की परंपरा खंडित होकर एकल परिवार में परिवर्तित होने लगती है। वर्तमान में जिस गति से वृद्धों की उपेक्षा और उनसे पिंड छुड़ाने की प्रवृत्ति

बढ़ रही है, उसे वृद्धाश्रमों तथा अनेक सामाजिक उपक्रमों की वृद्धि से समझा जा सकता है।

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास आधुनिक समाज में पारिवारिक स्तर पर आए बदलावों को चिह्नित करता है। बहुत-से नवयुवक अपने माता-पिता की आवश्यकताओं और उनके बुढ़ापे की असुविधाओं के प्रति लापरवाह हैं। वे माता-पिता को बिना बताए शादी कर लेते हैं। उन्हें अपने माता-पिता से कोई प्रेम नहीं है; वे केवल रुपयों-पैसों से प्रेम करते हैं। उपन्यास में रघुनाथ और उनकी पत्नी शीला के अतिरिक्त उनके दो पुत्र, संजय और धनंजय, एवं एक पुत्री सरला है। एक समय ऐसा हुआ करता था जब घर के सभी लोग मिल-जुलकर प्रेमभाव से रहा करते थे, लेकिन जैसे-जैसे बच्चे बड़े हुए और पढ़ने-लिखने के लिए घर से दूर गए, वे बाहर की दुनिया को समझने एवं अपनाने का प्रयास करने लगे। इसमें सफल होकर वे परिवार से अलग अपनी एक नई दुनिया का सृजन करने लगते हैं—जैसा कि उपन्यास में रघुनाथ के तीनों बच्चे करते हैं। रघुनाथ कॉलेज में अध्यापक थे और कॉलेज के मैनेजर की बेटी से अपने बड़े बेटे संजय की शादी करना चाहते थे, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। संजय अपनी पसंद की लड़की से शादी करना चाहता था :

"उन्होंने चाहा—मैनेजर समधी बनें!

संजय ने यह नहीं चाहा था! उसने वह किया जो उसने चाहा।"[1]

इस घटना के घटित होने के बाद से रघुनाथ पर मुसीबतों का पहाड़ टूटना शुरू हो जाता है। बेटी का विवाह रघुनाथ के बेटे संजय से न होने के कारण, मैनेजर सेवानिवृत्ति के कुछ वर्ष पूर्व रघुनाथ पर 'नेग्लिजेंस ऑफ़ ड्यूटी' और 'इनसबऑर्डिनेशन' का आरोप लगाते हुए निलंबन का नोटिस भेज देते हैं। आयु के इस पड़ाव पर आकर मास्टर रघुनाथ निलंबन से बचने के लिए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति (वॉलंटरी रिटायरमेंट) ले लेते हैं। वहीं छोटा बेटा धनंजय नोएडा में एम.बी.ए. करने गया था, किंतु वह वहाँ एक विधवा महिला के साथ सह-निवास (लिव-इन-रिलेशनशिप) में रहने लगता है। कुल मिलाकर कहने का आशय यह है कि रघुनाथ और शीला को अपने किसी भी पुत्र या पुत्री का विवाह करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ। वृद्धावस्था में उनके सारे सपनों और अरमानों को उनके अपने ही बच्चों ने अपने नफ़ा-नुकसान के चलते रौंद दिया, जिसके कारण रिश्तों में खोखलापन और जड़विहीनता देखने को मिलती है। इस संदर्भ में गोपेश्वर सिंह ने लिखा है:

"गाँव से शहर तक फैली इस कथा के नायक रघुनाथ की अजीब और विवश दास्तान को पढ़ते हुए मुझ जैसा पाठक, तेज़ी से आए इस सामाजिक और पारिवारिक बदलाव को स्वीकार नहीं कर पाता। उसे यह विश्वास नहीं होता कि हमारे सारे संबंध इतने निर्मम तरीके से बदल गए हैं। भूमंडलीकृत व्यवस्था के तहत बदलाव तो आया है, लेकिन इतनी तेज़ी से आया है—यह उपन्यास पढ़कर ही मैंने जाना। इस बदलाव के कारण हमारी दुनिया कितनी निर्मम, आत्मकेंद्रित, जड़विहीन और संवेदनहीन हो गई है, इसकी दिलचस्प और प्रामाणिक कथा है—'रेहन पर रग्घू'।"[2]

वर्तमान समय संक्रमणशील मानसिकता का दौर है। जहाँ पहले समष्टि को प्रमुख माना जाता था, वहाँ आज व्यष्टि को प्रमुखता दी जा रही है। वर्तमान में दया, परोपकार, करुणा और ममता जैसे समस्त मानवीय मूल्यों को दरकिनार करके उनके स्थान पर स्वार्थ भावना का वर्चस्व स्थापित हो गया है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि जहाँ स्वार्थ की भावना प्रबल होगी, वहाँ नैतिकता का ह्रास होना स्वाभाविक है। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में रघुनाथ का छोटा बेटा धनंजय इसी भावना से ग्रसित होकर, नैतिक ज्ञान और मानवीय जीवन-मूल्यों को भुलाकर अपने पिता के प्रति दुर्भावना रखता है। उपन्यास में धनंजय अपने पिता के सूटकेस में रखे ब्रीफ़केस से बिना बताए रुपये निकाल लेता है और पिता के पूछने पर उल्टा उन्हीं के चरित्र पर लांछन लगा देता है :

"मंगनी की बछिया के दाँत नहीं गिनते! संतोष कीजिए, जितना मिल गया मुफ्त का समझिए!''

वे एकटक राजू को देखते रहे—"तुमने तो कुछ इधर-उधर नहीं किया!''

"मैं जानता था यही शक करेंगे आप! स्वभाव से ही शक्की हैं।"[3]

यह भावना वर्तमान में केवल धनंजय की ही नहीं है, अपितु आज की लगभग नब्बे प्रतिशत युवा पीढ़ी के यही विचार हैं, जो समय-समय पर अपने माता-पिता को अपशब्द कहते या कोसते हुए नज़र आते हैं। अक्सर समाज में देखा जाता है

कि यदि परिवार में दो बेटे हैं, तो एक बेटा अपने माता-पिता पर बुढ़ापे में पक्षपात और भेदभाव करने का आरोप लगाता है; किंतु वास्तविकता यह है कि कोई भी माँ या बाप अपने बच्चों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते, चाहे वह शिक्षा का मसला हो या संपत्ति का। उपन्यास में धनंजय अपने पिता रघुनाथ पर दोनों बेटों को एक समान शिक्षा न देने और उनकी शिक्षा पर समान रूप से व्यय न करने का आरोप लगाते हुए कहता है :

"हमारे बापजान के दो बेटे—संजू और मैं! इन्होंने एक आँख से हमें देखा ही नहीं। सारी मेहनत और सारा पैसा इन्होंने उस पर खर्च किया। पढ़ाया, लिखाया, कंप्यूटर इंजीनियर बनाया और मेरे लिए कॉमर्स पढ़ो। जिसे पढ़ने में न यह मेरी मदद कर सकते थे।"[4]

आजकल की चकाचौंध भरी जीवन-शैली ने मानवीय रिश्तों की डोर को कमज़ोर कर दिया है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने युवाओं को अंधा बना दिया है। चकाचौंध भरी जीवन-शैली जीने के लिए बच्चे अपने माता-पिता को न जाने क्या-क्या—कंजूस, दरिद्र बोलते रहते हैं; लेकिन वे यह कभी नहीं सोचते कि उन्होंने ऐसा क्यों किया और किसके लिए किया? अगर वे स्वयं इन बिंदुओं पर विचार करें, तो उन्हें स्वयं उत्तर मिल जाएगा कि ऐसा उन्होंने अपने हित के लिए नहीं अपितु आपके हित के लिए किया था, जिससे आपकी ज़रूरतें पूरी हो सकें और आपको भविष्य में किसी दिक्कत या परेशानी का सामना न करना पड़े।

उपन्यास में रघुनाथ का छोटा बेटा धनंजय आज के युवाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। काशीनाथ सिंह ने दिखाया है कि धनंजय नगरीय जीवन-शैली से प्रभावित होकर गाँव-देहात में रहने वाले रघुनाथ से टेलीफ़ोन और बिजली के तार खिंचवाने के लिए कहते समय उन्हें कंजूस तथा दरिद्र बोलकर बुढ़ापे में उनका अपमान करता हैरू

"पहले तो इनसे कहो कि ये कंजूसी और दरिद्रता छोड़ें अब! हँसी उड़ाते हैं लोग। यह ढिबरी और लालटेन छोड़ें और दूसरों की तरह तार खिंचवा के कम से कम आँगन और दरवाज़े पर लट्टू लगवा लें। रोशनी हो घर में! इसके साथ फोन भी लगवा रहे हैं लोग।"[5]

बुढ़ापे से त्रस्त रघुनाथ जीवन की इस संध्यावेला में स्वयं को अपमानित और उपेक्षित अनुभव करते हैं। अपनी किस्मत को रोते और माथा पीटते हुए उनके मुख से जो वाक्य निकलता है, वह वाक्य केवल रघुनाथ का नहीं, अपितु लगभग साठ प्रतिशत भारत के वृद्धजनों का वाक्य है, जो उनके हृदय से प्रतिदिन निकलता है :

माथा पीटते हुए फिर बैठ गए रघुनाथ—"हाय रे किस्मत! जिनके लिए कंजूसी की, उन्हीं के मुँह से यही सुनने को बदा था।"[6]

मनुष्य ने भले ही भौतिक क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति कर ली हो, किंतु नैतिक दृष्टि से उसका पतन ही हुआ है। इसके कारण वह अपने अपनों और अपनी जड़ों से कटता जा रहा है। आधुनिक समाज में ऐसी घटनाएँ प्रायः सुनने को मिलती हैं, जो वृद्ध माता-पिता के मन में अपनी ही संतानों के प्रति भय और दहशत का माहौल पैदा कर देती हैं—जैसे किसी बेटे द्वारा धन-संपत्ति के लालच में माता-पिता को घर से निकाल देना या उनकी हत्या कर देना। उपन्यास में रघुनाथ जब अपने बड़े बेटे संजय और बहू सोनल के साथ अशोक विहार में रहते हैं, तब उनकी मित्रता बापट साहब नाम के एक अन्य बुज़ुर्ग से होती है। बापट साहब ने अपने गोद लिए (दत्तक) पुत्र का लालन-पालन किया, उसे पढ़ाया-लिखाया, नौकरी दिलवाई और उसका विवाह भी कराया। किंतु उसके गलत आचरण से तंग आकर उन्होंने उसे घर से निकाल दिया था। इसके बावजूद वह बलपूर्वक उनका मकान अपने नाम करवाना चाहता था और संभवतः हत्या करने से पूर्व उसने ऐसा करवा भी लिया। जब सोनल के मित्र समीर से रघुनाथ को इस हत्याकांड का पता चलता है, तो वे अत्यधिक दुःखी होते हैं। साथ ही, वे अपने भविष्य को लेकर भी आशंकित और चिंतित हो उठते हैं कि कहीं उनके साथ भी ऐसी ही कोई अनहोनी न हो जाए।

काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में स्पष्ट रूप से दिखाया है कि किस प्रकार आधुनिक मानवीय संबंधों में केवल अर्थ (धन) की महत्ता रह गई है। अर्थ के प्रति इस अंधी दौड़ में लोग इतने स्वार्थी हो गए हैं कि उन्हें न तो अपनों की परवाह और चिंता है, और न ही परायों के प्रति मानवता का भाव। उन्हें सिर्फ़ और सिर्फ़ अपने लाभ से मतलब है। उपन्यास

में रघुनाथ और उनके चचेरे भाई के बीच संबंध चाहे कितने भी अच्छे रहे हों, किंतु उनके भतीजों का बर्ताव रघुनाथ के प्रति अत्यंत असामाजिक, अशोभनीय और निराशाजनक है। रघुनाथ के घर के पीछे उनके चचेरे भाई का घर था, जिसके आगे रघुनाथ की कुछ ज़मीन खाली पड़ी थी। उस ज़मीन को देखकर चचेरे भाई के बेटों की नीयत बिगड़ गई और वे उसे हथियाना चाहते थे। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि जब तक उनके चचेरे भाई जीवित थे, तब तक वे एक-दूसरे का आदर-सम्मान करते थे। उनके मन में धन-संपत्ति के बँटवारे को लेकर कोई दुर्भावना नहीं थी और वे बँटवारे का सम्मान करते थे; किंतु उनके न रहने पर, अगली पीढ़ी के भतीजों के मन में लालच आ जाता है। इसी लालच ने भूमंडलीकरण और बाजारवाद से उत्पन्न उपयोगितावादी संस्कृति को जन्म दिया है

"साले बुड्ढ़े! टेंटुआ पकड़ कर अभी चाँप दें तो टें बोल जाओगे! हम जितनी ही शराफ़त से बात कर रहे हैं, उतना ही शेर बन रहे हो! जा, जो करना है, कर ले!" उठते हुए उसने उनकी कमर पर एँड़ जमाई–"साला बुड्ढ़ा हरामज़ादा!"[7]

सोनल आज की आधुनिक, नई सोच और नए ज़माने का प्रतिनिधित्व करने वाली बहू के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। उसे अपनी जीवन-शैली के समक्ष मानवीय मूल्य तुच्छ और बेकार लगते हैं। उसने अपने जीवन में कभी किसी चीज़ या वस्तु के लिए संघर्ष और परिश्रम नहीं किया है, जैसा कि उसकी सास शीला ने अपने जीवन में किया है। शीला भली-भांति जानती है कि अन्न पैदा करने में कितनी मेहनत और परिश्रम लगता है, तब जाकर दो वक्त की रोटी खाने को मिलती है। इसी कारण शीला सोचती है :

"बहू नकचढ़ी ही नहीं, सिरचढ़ी भी है! पैदा करती, तब उसे अनाज का मोल भी पता चलता। माँ-बाप की इकलौती औलाद, जात की लाला–खेत-खलिहान से मतलब नहीं; उसे क्या मालूम अपनी फसल का सुख-दुःख?"[8]

समय और परिस्थितियाँ मनुष्य को मज़बूत, गंभीर और चेतनामय बनाती हैं। इन्हीं परिस्थितियों से गुज़रकर शीला को मानवीय मूल्यों और जीवन के अनुभवों का ज्ञान हुआ है; वहीं सोनल ने अपने जीवन में कभी इस तरह की परिस्थितियों का अनुभव या सामना नहीं किया है। ऐसे में वह उस परिस्थिति को किस प्रकार समझ सकती है? हिंदी प्रदेश में कहावत है–'जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई'। यह उक्ति सोनल पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। यही कारण है कि सोनल और शीला में पीढ़ियों का अंतर होने से समय-समय पर आपसी टकराव और खींचतान होती रहती है। इस विषय पर सदाशिव श्रोत्रिय ने अपने लेख 'जीवन में सीधी निगाह' में लिखा है :

"नई और पुरानी पीढ़ी के मूल्यों में टकराव के कारण आज कई जगह उनका साथ रह पाना कठिन हो गया है। इस टकराव के कारण शीला, सोनल के पास नहीं रह पाती।"[9]

रघुनाथ उपन्यास में सोनल के प्रति अपने संबंधों को हमेशा बेहतर बनाने की कोशिश करते हैं। उपन्यास में रघुनाथ सोनल को बहू से अधिक बेटी समझने का प्रयास करते हैं। वृद्धावस्था के इस पड़ाव पर आकर रघुनाथ अपने हिसाब से उसे नहीं चलाते, जबकि उन्हें जीवन का अनुभव और तजुर्बा सोनल से अधिक है। फिर भी वे सोनल के हिसाब से चल रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि जीवन के इस संध्याकाल में उसके तरीक़े से चलना ही बेहतर है; अन्यथा रोज़-रोज़ आपस में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। इसीलिए उन्हें स्वयं को ससुर से अधिक पिता समझना सही लगा :

"इन्हें ससुर के बजाय 'बाप' बनकर चलना ज्यादा सुविधाजनक लगा था। अव्वल तो तनाव का कोई मसला पैदा ही न होने दो और पैदा हो भी तो ग़म खा जाओ या टाल जाओ।"[10]

आधुनिकता की प्रचंड आंधी ने आज के युवा वर्ग को भौतिकतावादी बना दिया है। कम समय में अधिक धन-संपत्ति अर्जित करने तथा अपने भविष्य को सुरक्षित एवं सुखमय बनाने की मनोवृत्ति के कारण लोगों में गाँव से कस्बे, कस्बे से नगर और नगर से महानगर की ओर पलायन करने की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इसके कारण घर के वरिष्ठ (वृद्ध) जन पीछे छूटते जा रहे हैं। जिस अवस्था में उन्हें अपने बच्चों के प्यार और देखभाल की आवश्यकता थी, उस अवस्था में या तो वे स्वयं अपनी देखभाल कर रहे हैं या फिर अपने ही बेटे और बहुओं की खरी-खोटी बातें सुन-सुनकर शेष जीवन बिताने को मजबूर हैं।

उपरोक्त विवेचन के फलस्वरूप अंततः कहा जा सकता है कि 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास वस्तुतः भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उदारीकरण के दौर में बिखरते पारिवारिक संबंधों और टूटती मानवीय संवेदनाओं की एक प्रामाणिक एवं हृदयविदारक कथा है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक काशीनाथ सिंह ने यह स्पष्ट किया है कि आधुनिकता और भौतिकता की अंधी दौड़ में किस प्रकार नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का क्षरण हुआ है। आज का युवा वर्ग कम समय में अधिक धन-संपत्ति अर्जित करने और व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की लालसा में अपनी जड़ों, परंपराओं और वृद्ध माता-पिता से विमुख होता जा रहा है। संक्षेप में कहा जाए तो यह उपन्यास केवल एक परिवार की त्रासदी नहीं है, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज के उस संक्रमणकाल का आईना है, जहाँ विकास की चमक-दमक के पीछे बुज़ुर्ग हाशिए पर धकेल दिए गए हैं और मानवीय रिश्ते संवेदनहीनता की बलि चढ़ रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 18.
2. डॉ. कामेश्वर प्रसाद सिंह (संपा.), चौपाल (पत्रिका), पृ. 58.
3. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 27.
4. वही, पृ. 28.
5. वही, पृ. 28.
6. वही, पृ. 28.
7. वही, पृ. 80.
8. वही, पृ. 121.
9. डॉ. कामेश्वर प्रसाद सिंह (संपा.), चौपाल (पत्रिका), पृ. 74.
10. वही, पृ. 128.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

अरुण कमल के काव्य में समय के तीन आयाम : स्मृति, यथार्थ और संभावना

डॉ. नीतू बाला
प्राथमिक हिंदी शिक्षिका
सेंट जोसेफ कॉन्वेंट पंजाबी हाई स्कूल,
बठिण्डा, पंजाब

शोध-सारांश

समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवि अरुण कमल के काव्य में 'समय' की बहुआयामी उपस्थिति का अनुशीलन प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य है। कवि के यहाँ समय तीन आयामों—स्मृति, यथार्थ और संभावना—में विभक्त होकर प्रकट होता है। 'स्मृति का आयाम' अतीत के ग्राम्य-जीवन और संबंधों को वर्तमान के विघटन के विरुद्ध खड़ा करता है। 'यथार्थ का आयाम' महानगरीय जीवन, श्रमिकों के शोषण और आम आदमी की टूटन को वाणी देता है। 'संभावना का आयाम' निराशा के बीच नव-निर्माण और भविष्य की उम्मीद जगाता है। निष्कर्षतः, अरुण कमल के काव्य में समय के ये तीनों आयाम मिलकर एक समग्र काल-चेतना का निर्माण करते हैं। जो मनुष्य को जड़ों से जोड़ते हुए संघर्ष के लिए प्रेरित करती है।

बीज-शब्द : अरुण कमल, काल-चेतना, स्मृति, यथार्थ, संभावना, समकालीन कविता।

भूमिका

आधुनिक हिन्दी कविता में अरुण कमल (जन्मरू 1954) का नाम उन कवियों में अग्रणी है। जिन्होंने आम आदमी के पक्ष में खड़े होकर समय के जटिल यथार्थ को कविता का विषय बनाया। 'नए इलाके में' (1996) और 'अपनी केवल धार' (1990) जैसे संग्रहों के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनके काव्य में 'समय' एक केंद्रीय तत्व है। यह समय केवल घड़ी का समय नहीं, बल्कि सामाजिक, ऐतिहासिक और व्यक्तिगत अनुभवों से निर्मित एक जीवंत इकाई है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इसी 'समय' को स्मृति, यथार्थ और संभावना—इन तीन आयामों में विश्लेषित किया गया है।

स्मृति का आयाम : अतीत का आलोक

अरुण कमल के काव्य में स्मृति केवल बीते हुए कल को याद करना नहीं है। यह एक सांस्कृतिक प्रतिरोध और अस्तित्व को बचाने का हथियार है। भूमंडलीकरण, विस्थापन और महानगरों के दबाव में कवि स्मृति के सहारे अपने को टूटने से बचाता है।

सैद्धांतिक आधार

स्मृति यहाँ 3 काम करती है :

1. पहचान का निर्माण- "मैं कौन हूँ" इसका उत्तर स्मृति देती है।

2. वर्तमान की आलोचना - जब आज खोखला लगे तो कल की तुलना से सच सामने आता है।

3. भविष्य के लिए ऊर्जा - अतीत की ताकत से ही आगे लड़ने की हिम्मत मिलती है।

'बाबूजी' कविता संबंधों की स्मृति

"उनकी हंसी में बजती थी / कोई पुरानी धूप"

पिता अब नहीं हैं। पर उनकी हंसी की गर्माहट आज भी कवि के अंदर है। "पुरानी धूप" रूपक है—जो अब नहीं है पर उजाला देती है।

'पुराने मित्र' / 'स्कूल' की स्मृतियाँ

अरुण कमल अक्सर बचपन के दोस्तों, शिक्षकों, गली-मोहल्ले को याद करते हैं। ये स्मृतियाँ निर्दोष समय की हैं। जब रिश्तों में स्वार्थ नहीं था। अरुण कमल के यहाँ स्मृति पलायनवादी न होकर वर्तमान को समझने का एक उपकरण है। 'घर' कविता में कवि कहता है—

'घर एक जगह नहीं / एक समय है जो बीत गया'।

यह पंक्ति बताती है कि कवि के लिए घर का भौगोलिक अस्तित्व समाप्त हो चुका है, पर वह एक समय के रूप में स्मृति में जीवित है। इसी प्रकार 'बाबूजी' कविता में—

'उनकी हँसी में बजती थी / कोई पुरानी धूप।'

के माध्यम से कवि अतीत के संबंधों की ऊष्मा को वर्तमान की ठंडक के विरुद्ध रखता है। यह स्मृति विस्थापित मनुष्य को उसकी जड़ों, उसकी संस्कृति से जोड़े रखती है।

यथार्थ का आयाम : वर्तमान की टूटन :

इसमें भाषा का यथार्थ भी है—

अरुण कमल क्लिष्ट और संस्कृतनिष्ठ भाषा नहीं लिखते।

''साहब आए थे / फाइल देखी / चले गए"- 'ऑफिस' कविता

छोटी-छोटी, टूटी-फूटी, रोजमर्रा की भाषा। क्योंकि शोषित की जिंदगी भी ऐसी ही टूटी-फूटी है। भाषा खुद यथार्थ बन जाती है।

इसमें संस्थाओं का यथार्थ है—

स्कूल, अस्पताल, थाना, ऑफिस—सभी जगह भ्रष्टाचार और बेरुखी।

''दरवाजे पर लिखा है—अंदर आइए / पर अंदर कोई नहीं है"

व्यवस्था नाम की है, काम की नहीं। आम आदमी धक्के खाता रहता है।

इसमें प्रतिरोध का यथार्थ भी है—

सिर्फ शिकायत नहीं, लड़ाई भी है।

"जब मजदूर हड़ताल पर जाता है / तब फैक्ट्री की सुई भी रुक जाती है"

यथार्थ काला है। पर पूरी तरह बेनूर नहीं। शोषित जब एक होता है, तो समय का पहिया भी घुमा देता है।

कवि का सबसे मुखर स्वर वर्तमान के क्रूर यथार्थ से टकराता है। 'मजदूर' कविता की ये पंक्तियाँ—"दिन भर ईंटें ढोता है / और शाम को ढोता है थकान"—श्रमिक वर्ग की नियति को उजागर करती हैं। 'शहर' कविता में महानगरीय अकेलापन इस प्रकार प्रकट हुआ है—"यहाँ हर आदमी / अपने अकेलेपन का मालिक है"। यहाँ समय ठहरा हुआ, बोझिल और शोषणकारी

व्यवस्था का पर्याय बन गया है।

इसमें भाषा, संस्थाओं और संबंधों का यथार्थ भी शामिल है। कवि बाज़ार, ऑफिस और सत्ता की बेरुखी को नंगी आँखों से दिखाता है। पर अरुण कमल का यह यथार्थ केवल वर्णनात्मक न होकर पक्षधर यथार्थ है, जो शोषित के साथ खड़ा दिखता है और प्रतिरोध की संभावना भी जगाता है।

'संभावना का आयाम : भविष्य की आहट'

तमाम अँधेरे के बावजूद अरुण कमल का काव्य निराशावादी नहीं है। 'नए इलाके में' शीर्षक कविता इस आयाम का सबसे सशक्त उदाहरण है—"हम आए हैं नए इलाके में / जहाँ सब कुछ बनना अभी बाकी है"। यह विस्थापन के दर्द को नव-निर्माण की उम्मीद में बदल देती है। 'बीज' कविता में कवि लिखता है—"मिट्टी में गड़ा हुआ बीज / आने वाले पेड़ का सपना है"। यहाँ समय गतिशील है और मनुष्य के संघर्ष, उसकी उम्मीद में ही उसकी सार्थकता है।

इसमें भाषा के स्तर पर भी संभावना है। अरुण कमल कठिन शब्दों की जगह आम बोलचाल की भाषा अपनाते हैं। "सड़क, चौराहा, बस, मजदूर" जैसे शब्दों से वो कविता को आम आदमी तक ले जाते हैं।

इसमें स्त्री और वंचित वर्ग की भूमिका भी उभरती है। 'औरत' और 'लड़की' वाली कविताओं में कवि दिखाता है कि आने वाला समय उन्हीं के हाथों बदलेगा जो अब तक सबसे पीछे थे। "जब औरत बोलेगी / तब घर की दीवारें भी हिलेंगी" - ये पंक्तियाँ भविष्य में सामाजिक बदलाव का संकेत हैं। इस प्रकार अरुण कमल की संभावना अंधी आशा नहीं है। वह स्मृति और यथार्थ की जमीन पर खड़ी होकर संघर्ष से उपजी ठोस उम्मीद है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि अरुण कमल के काव्य में स्मृति, यथार्थ और संभावना के तीनों आयाम एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अतीत की स्मृति वर्तमान के अमानवीय यथार्थ को चुनौती देती है और वर्तमान का संघर्ष भविष्य की संभावनाओं का द्वार खोलता है। कवि एक ऐसी समग्र 'काल-चेतना' का विकास करता है जो मनुष्य को निराशा से बचाकर इतिहास-बोध से संपन्न और भविष्य के प्रति आशान्वित बनाती है। समकालीन कविता में समय के इस द्वंद्वात्मक और आशावादी रूपांकन के कारण अरुण कमल का काव्य विशिष्ट हो उठता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

क) प्राथमिक स्रोत : अरुण कमल की कविता संग्रह

1. कमल, अरुण. नए इलाके में. राजकमल प्रकाशन, 1996.
2. कमल, अरुण. सबूत. वाणी प्रकाशन, 2002.
3. कमल, अरुण. कविता का समय. वाणी प्रकाशन, 2009.
4. कमल, अरुण. तुमने कहा था. वाणी प्रकाशन, 2015.

ख) द्वितीयक स्रोत : पुस्तकें एवं शोध-लेख'

1. नामदेव, निवेदिता. समकालीन हिंदी कविता : संवेदना और शिल्प. वाणी प्रकाशन, 2010.
2. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन, 2018.
3. वर्मा, मैनेजर. हिंदी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन, 2015.

ग) पत्र-पत्रिकाओं के लेख

1. शुक्ल, रमेश. "अरुण कमल : स्मृति, यथार्थ और संघर्ष." -हंस-, मार्च 2014, पृ. 45-52.
2. श्रीवास्तव, कुमार. "नए इलाके में : विस्थापन और उम्मीद." पहल अंक 98, 2016, पृ. 112-118

नाम—डॉ. नीतू बाला, सम्पर्क—9888201192, ईमेल—neetu-coolgirl199@gmail.com

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

औद्योगीकरण और श्रमिक परिवारों के जीवन-स्तर में परिवर्तनः हनुमानगढ़ जिले का एक भौगोलिक विश्लेषण

मुकेश कुमार
शोधार्थी

डॉ. बबिता शर्मा
सहायक आचार्य भूगोल विभाग
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़

सार

औद्योगीकरण किसी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ वहाँ के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है। उद्योगों के विकास से रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, लेकिन इसके साथ परिवार की संरचना, महिलाओं की भूमिका, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी स्थितियों में भी परिवर्तन आ सकता है। हनुमानगढ़ जिला कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। सिंचाई सुविधाओं के विस्तार तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ यहाँ चावल मिल, कपास जिनिंग, स्पिनिंग तथा अन्य कृषि आधारित औद्योगिक गतिविधियों का विकास हुआ है। इन गतिविधियों ने श्रमिक परिवारों के जीवन में कुछ नए अवसर पैदा किए हैं, वहीं स्वास्थ्य, आवास तथा कार्य-परिस्थितियों से जुड़ी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण के श्रमिक परिवारों के जीवन-स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों का भौगोलिक विश्लेषण करना है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार की सूचनाओं का उपयोग किया गया है। प्राथमिक जानकारी वर्ष 2025-2026 में 150 श्रमिक परिवारों के सर्वेक्षण से प्राप्त की गई। परिवार की संरचना, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी, बच्चों की शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य तथा घरेलू सुविधाओं को प्रमुख संकेतक बनाया गया है।

अध्ययन से पता चलता है कि औद्योगिक गतिविधियों के साथ श्रमिक परिवारों के जीवन में कुछ सकारात्मक परिवर्तन आए हैं। 72 प्रतिशत परिवारों ने बच्चों की शिक्षा में सुधार बताया तथा 74.6 प्रतिशत परिवारों में घरेलू मूलभूत सुविधाओं में सुधार पाया गया। दूसरी ओर, 62 प्रतिशत श्रमिकों ने कार्य से संबंधित स्वास्थ्य समस्या बताई। स्वास्थ्य सुविधा में सुधार महसूस करने वाले परिवारों का अनुपात 32 प्रतिशत रहा। इससे स्पष्ट होता है कि औद्योगीकरण का प्रभाव एकतरफा नहीं है। कुछ सामाजिक एवं भौतिक सुविधाओं में सुधार के साथ स्वास्थ्य और बुनियादी सुविधाओं से जुड़ी समस्याएँ भी बनी हुई हैं।

मुख्य शब्दः औद्योगीकरण, श्रमिक परिवार, जीवन-स्तर, स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा, महिला भागीदारी, हनुमानगढ़।

प्रस्तावना

औद्योगिक विकास किसी क्षेत्र की आर्थिक संरचना को बदलने के साथ सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है। कृषि पर निर्भर परिवारों के लिए उद्योग रोजगार का अतिरिक्त साधन उपलब्ध कराते हैं। इससे परिवार की आर्थिक गतिविधियों के साथ उसके निवास, दैनिक कार्य और सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन हो सकता है।

हनुमानगढ़ में कृषि और कृषि आधारित उद्योगों का संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के साथ कृषि उत्पादन बढ़ा और कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण से जुड़ी औद्योगिक इकाइयों का विकास हुआ। चावल मिल, कपास जिनिंग, स्पिनिंग तथा अन्य इकाइयों ने जिले के विभिन्न भागों में श्रम की मांग पैदा की।

औद्योगिक कार्य का प्रभाव केवल काम करने वाले व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता। कार्य का समय, कार्यस्थल की दूरी और परिवार के सदस्यों की आर्थिक भागीदारी का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। महिलाओं की भूमिका, बच्चों की शिक्षा, आवास और स्वास्थ्य जैसी स्थितियाँ भी इससे प्रभावित हो सकती हैं।

इसी कारण श्रमिक परिवारों के जीवन-स्तर का अध्ययन केवल आय के आधार पर करना पर्याप्त नहीं है। वर्तमान अध्ययन में सामाजिक, आवासीय, स्वास्थ्य एवं शैक्षिक स्थितियों को साथ लेकर औद्योगीकरण के प्रभाव को समझने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन का क्षेत्र हनुमानगढ़ जिला है। जिले में कृषि के साथ कृषि आधारित प्रसंस्करण गतिविधियों का विकास हुआ है। हनुमानगढ़ जंक्शन, टाउन तथा टिब्बी सहित विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिक परिवार औद्योगिक कार्य से जुड़े हैं। इन क्षेत्रों में औद्योगिक गतिविधियों की प्रकृति तथा स्थानीय सुविधाओं में अंतर पाया जाता है।

औद्योगिक क्षेत्र के आसपास रहने वाले परिवारों का कार्यस्थल से संपर्क अपेक्षाकृत अधिक रहता है। कुछ परिवार कार्यस्थल के निकट रहते हैं, जबकि कुछ ग्रामीण क्षेत्रों से आवागमन करते हैं। इसलिए जीवन-स्तर के अध्ययन में स्थानिक स्थिति को भी ध्यान में रखा गया है।

शोध समीक्षा

औद्योगीकरण के प्रभाव को समझने के लिए पूर्ववर्ती अध्ययनों का अवलोकन आवश्यक है। वर्तमान अध्ययन के लिए 2021 से 2026 तक के छह चयनित अध्ययनों को लिया गया है। इन अध्ययनों में श्रम बाजार, औद्योगिक क्लस्टर, प्रवास, आवास, ग्रामीण विकास तथा श्रमिकों से संबंधित नीतिगत पक्षों पर चर्चा की गई है।

मेहता एवं बनर्जी (2021) ने भारतीय कृषि-औद्योगिक क्लस्टरों में श्रम बाजार का स्थानिक अध्ययन किया। उनके अध्ययन से औद्योगिक गतिविधियों और श्रम के क्षेत्रीय वितरण को समझने में सहायता मिलती है।

चंद्रा एवं कौर (2022) ने भारतीय औद्योगिक क्लस्टरों में ग्रामीण-नगरीय श्रम प्रवास और आवास का अध्ययन किया। इससे रोजगार के कारण होने वाले स्थान परिवर्तन तथा आवासीय स्थिति के संबंध को समझने का आधार मिलता है।

राव एवं पटेल (2023) ने उत्तर भारत के औद्योगिक गलियारों में अनौपचारिक आवास की स्थिति का अध्ययन किया। यह अध्ययन औद्योगिक क्षेत्रों के आसपास रहने वाले श्रमिक परिवारों की आवासीय परिस्थितियों के संदर्भ में उपयोगी है।

रेड्डी एवं शर्मा (2024) ने भारतीय कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में जैव-ऊर्जा और ग्रामीण विकास के संबंध का अध्ययन किया। इससे कृषि आधारित क्षेत्रों में नई औद्योगिक गतिविधियों के सामाजिक प्रभाव को समझने में सहायता मिलती है।

साहू एवं सिंह (2025) ने भारतीय सिंचाई क्षेत्रों में जल संसाधनों तथा जल गुणवत्ता की परिस्थितियों का अध्ययन किया। यह अध्ययन वर्तमान शोध के लिए कृषि-औद्योगिक क्षेत्र की पर्यावरणीय पृष्ठभूमि समझने में सहायक है।

चोपड़ा एवं वर्मा (2026) ने राजस्थान में श्रम कानून सुधार और औद्योगिक प्रदर्शन का नीतिगत अध्ययन किया। इससे औद्योगिक विकास के साथ श्रमिक सुरक्षा और संस्थागत व्यवस्था के महत्व को समझने का आधार मिलता है।

इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि औद्योगीकरण का संबंध केवल रोजगार से नहीं है। श्रम प्रवास, आवास, ग्रामीण विकास, पर्यावरण और श्रमिक सुरक्षा भी इससे जुड़े हुए हैं। फिर भी हनुमानगढ़ जिले के श्रमिक परिवारों के जीवन-स्तर को इन पक्षों के साथ जोड़कर स्थानीय स्तर पर अध्ययन की आवश्यकता बनी हुई है।

शोध-अंतर

पूर्ववर्ती अध्ययनों में औद्योगिक क्लस्टर, श्रम प्रवास, आवास, ग्रामीण विकास और श्रमिक नीतियों के अलग-अलग पक्षों पर चर्चा की गई है। लेकिन हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण के प्रभाव को पारिवारिक संरचना, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य और घरेलू सुविधाओं के साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता है।

इसी शोध-अंतर को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अध्ययन में श्रमिक परिवारों को अध्ययन की मुख्य इकाई बनाया गया है और औद्योगीकरण के सामाजिक एवं जीवन-स्तरीय प्रभावों का भौगोलिक विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

- औद्योगीकरण के प्रभाव से श्रमिक परिवारों के जीवन-स्तर में आए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
- औद्योगिक विकास के प्रभाव से पारिवारिक संरचना एवं पारिवारिक भूमिकाओं में आए परिवर्तनों की पहचान करना।
- महिलाओं की आर्थिक भागीदारी तथा परिवार में उनकी भूमिका में आए परिवर्तन का अध्ययन करना।
- औद्योगिक कार्य-परिस्थितियों का श्रमिकों एवं उनके परिवारों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- औद्योगीकरण के प्रभाव से आवासीय दशाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा शैक्षिक अवसरों में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करना।

शोध विधि एवं सामग्री

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार की सूचनाओं का उपयोग किया गया है। प्राथमिक जानकारी वर्ष 2025-2026 में 150 श्रमिक परिवारों के घरेलू सर्वेक्षण से प्राप्त की गई। सर्वेक्षण में परिवार की संरचना, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी, बच्चों की शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य, पेयजल, स्वच्छता तथा घरेलू सुविधाओं से संबंधित जानकारी ली गई।

अध्ययन में हनुमानगढ़ जंक्शन, टाउन तथा टिब्बी सहित चयनित औद्योगिक क्षेत्रों को आधार बनाया गया। प्राप्त आँकड़ों को संख्या और प्रतिशत के रूप में व्यवस्थित किया गया। इनका तुलनात्मक अध्ययन करके औद्योगीकरण से जुड़े सामाजिक एवं जीवन-स्तरीय परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया गया।

सारणी 1ः औद्योगीकरण के बाद श्रमिक परिवारों की सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन

संकेतक	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	27	18.0
एकल परिवार	123	82.0
महिलाओं की आर्थिक भागीदारी	84	56.0
महिलाओं की आर्थिक भागीदारी नहीं	66	44.0
औद्योगिक कार्य के बाद महिला रोजगार में वृद्धि	52	34.6
बच्चों की शिक्षा में सुधार	108	72.0
शिक्षा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं	42	28.0
स्थायी आवास	98	65.3
अर्ध-पक्का/कच्चा आवास	52	34.7
औद्योगिक क्षेत्र के निकट निवास (2 किमी)	114	76.0
औद्योगिक क्षेत्र से दूर निवास (2 किमी)	36	24.0

स्रोतः प्राथमिक घरेलू सर्वेक्षण, 2025-2026, N=150।

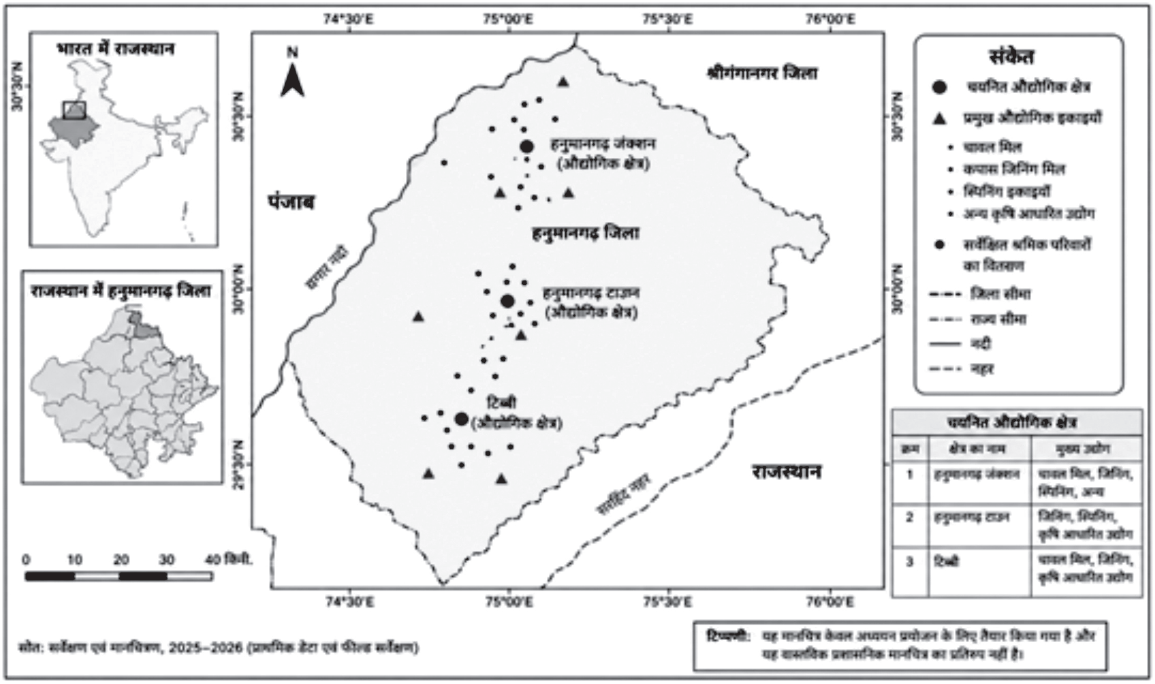

चित्र 1: हनुमानगढ़ जिले में चयनित औद्योगिक क्षेत्रों एवं श्रमिक परिवारों के अध्ययन क्षेत्र का स्थानिक वितरण

सारणी 2: श्रमिक परिवारों के स्वास्थ्य एवं जीवन-स्तर से संबंधित प्रमुख परिवर्तन

संकेतक	संख्या	प्रतिशत
स्वास्थ्य सुविधा में सुधार महसूस करने वाले परिवार	48	32.0
स्वास्थ्य स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं	102	68.0
कार्य-संबंधित स्वास्थ्य समस्या वाले श्रमिक	93	62.0
नियमित स्वास्थ्य जाँच कराने वाले	18	12.0
बच्चों की शिक्षा जारी रखने वाले परिवार	118	78.6
बच्चों की शिक्षा में सुधार महसूस करने वाले	108	72.0
आवासीय सुविधा में सुधार वाले परिवार	58	38.6
पेयजलध्स्वच्छता सुविधा में सुधार	42	28.0
घरेलू मूलभूत सुविधाओं में सुधार	112	74.6
औद्योगिक क्षेत्र के कारण जीवन-स्तर में सुधार महसूस करने वाले	64	42.6

स्रोतः प्राथमिक घरेलू सर्वेक्षण, 2025-2026, N=150।

अध्ययन की सीमाएँ

यह अध्ययन हनुमानगढ़ जिले के चयनित औद्योगिक क्षेत्रों तथा 150 श्रमिक परिवारों के सर्वेक्षण तक सीमित है।

इसलिए इसके निष्कर्षों को पूरे राजस्थान के श्रमिक परिवारों पर सीधे लागू नहीं किया जा सकता। सामाजिक एवं स्वास्थ्य संबंधी जानकारी उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचनाओं पर आधारित है। अलग-अलग औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य की प्रकृति तथा स्थानीय सुविधाओं में अंतर होने के कारण परिवारों पर प्रभाव भी समान नहीं हो सकता। अतः निष्कर्षों को अध्ययन क्षेत्र और अध्ययन अवधि के संदर्भ में समझना उचित होगा।

परिणाम एवं चर्चा

सारणी 1 के अनुसार सर्वेक्षित 150 परिवारों में 123 परिवार अर्थात् 82 प्रतिशत एकल परिवार हैं, जबकि संयुक्त परिवारों का अनुपात 18 प्रतिशत है। यह स्थिति औद्योगिक क्षेत्रों से जुड़े परिवारों में एकल परिवार के स्वरूप की अधिकता को दर्शाती है। रोजगार के कारण निवास स्थान में परिवर्तन और कार्यस्थल के निकट रहने की आवश्यकता इस स्थिति से जुड़ी हो सकती है।

महिलाओं की आर्थिक भागीदारी 84 परिवारों में पाई गई, जो 56 प्रतिशत है। इनमें 52 परिवारों ने औद्योगिक कार्य के बाद महिला रोजगार में वृद्धि बताई। इससे पता चलता है कि औद्योगिक गतिविधियों ने कुछ परिवारों में महिलाओं की आर्थिक भूमिका बढ़ाने का अवसर दिया है। हालांकि 44 प्रतिशत परिवारों में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी नहीं है। इसलिए यह परिवर्तन सभी परिवारों में समान नहीं है।

बच्चों की शिक्षा के संबंध में स्थिति अपेक्षाकृत सकारात्मक है। 118 परिवारों में बच्चों की शिक्षा जारी रही और 108 परिवारों ने शिक्षा में सुधार बताया। इससे संकेत मिलता है कि श्रमिक परिवारों में बच्चों की शिक्षा को महत्व दिया जा रहा है। दूसरी ओर 42 परिवारों ने शिक्षा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं बताया। इसलिए औद्योगिक रोजगार का शैक्षिक प्रभाव परिवारों की परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग दिखाई देता है।

आवासीय स्थिति में 98 परिवार स्थायी आवास में रहते हैं, जबकि 52 परिवार अर्ध-पक्के या कच्चे आवास में हैं। 114 परिवार औद्योगिक क्षेत्र से दो किलोमीटर के भीतर रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि अधिकांश सर्वेक्षित परिवार कार्यस्थल के अपेक्षाकृत निकट रहते हैं। कार्यस्थल की निकटता दैनिक आवागमन को सुविधाजनक बना सकती है, लेकिन इससे औद्योगिक क्षेत्र के आसपास उपलब्ध आवासीय और बुनियादी सुविधाओं का महत्व भी बढ़ जाता है।

स्वास्थ्य से संबंधित आँकड़े अधिक महत्वपूर्ण हैं। 93 श्रमिकों अर्थात् 62 प्रतिशत ने कार्य से संबंधित स्वास्थ्य समस्या बताई। यह स्थिति औद्योगिक कार्य-परिस्थितियों पर ध्यान देने की आवश्यकता को स्पष्ट करती है। औद्योगिक क्षेत्रों में धूल, भूसी तथा अन्य कार्यस्थलीय परिस्थितियों के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होने की जानकारी सर्वेक्षण में सामने आई है।

स्वास्थ्य सुविधा में सुधार महसूस करने वाले परिवार केवल 32 प्रतिशत रहे, जबकि 68 प्रतिशत परिवारों ने स्वास्थ्य स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं बताया। नियमित स्वास्थ्य जाँच कराने वाले परिवारों का अनुपात 12 प्रतिशत है। इससे पता चलता है कि स्वास्थ्य सुविधा की उपलब्धता के साथ नियमित स्वास्थ्य-जाँच की आदत और पहुँच भी महत्वपूर्ण है।

घरेलू मूलभूत सुविधाओं में 112 परिवारों अर्थात् 74.6 प्रतिशत ने सुधार बताया। यह जीवन-स्तर में आए भौतिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण संकेत है। इसके विपरीत आवासीय सुविधा में सुधार 38.6 प्रतिशत और पेयजल एवं स्वच्छता में सुधार 28 प्रतिशत परिवारों में पाया गया। इससे स्पष्ट है कि घरेलू सुविधाओं में सुधार की तुलना में बुनियादी आवासीय एवं स्वच्छता सुविधाओं की स्थिति अभी पूरी तरह संतोषजनक नहीं है।

कुल 64 परिवारों अर्थात् 42.6 प्रतिशत ने माना कि औद्योगिक क्षेत्र के कारण उनके जीवन-स्तर में सुधार हुआ। इससे पता चलता है कि औद्योगीकरण का लाभ सभी परिवारों तक समान रूप से नहीं पहुँचा है। एक ओर शिक्षा और घरेलू सुविधाओं में सुधार दिखाई देता है, दूसरी ओर स्वास्थ्य, आवास तथा स्वच्छता से संबंधित समस्याएँ बनी हुई हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण ने श्रमिक परिवारों के सामाजिक जीवन और जीवन-स्तर में कई प्रकार के परिवर्तन किए हैं। एकल परिवारों की अधिकता, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी तथा बच्चों की शिक्षा में सुधार इसके प्रमुख पक्ष हैं। घरेलू मूलभूत सुविधाओं में भी काफी परिवारों ने सुधार बताया है।

इसके साथ स्वास्थ्य संबंधी स्थिति विशेष ध्यान की मांग करती है। 62 प्रतिशत श्रमिकों द्वारा कार्य-संबंधित स्वास्थ्य समस्या बताना यह संकेत देता है कि औद्योगिक विकास के साथ श्रमिक सुरक्षा और स्वास्थ्य व्यवस्था को मजबूत करना आवश्यक है। आवास तथा पेयजल-स्वच्छता की स्थिति में भी सुधार की आवश्यकता दिखाई देती है।

औद्योगिक क्षेत्रों में नियमित स्वास्थ्य जाँच, कार्यस्थल की सुरक्षा व्यवस्था, स्वच्छ पेयजल और स्वच्छता सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। श्रमिक बस्तियों में मूलभूत सुविधाओं के विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। महिलाओं के लिए सुरक्षित रोजगार एवं कौशल विकास के अवसर बढ़ाए जाने चाहिए। बच्चों की शिक्षा की निरंतरता के लिए श्रमिक परिवारों को आवश्यक सहयोग उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

इस प्रकार औद्योगिक विकास को केवल उत्पादन और रोजगार वृद्धि के रूप में नहीं, बल्कि श्रमिक परिवारों के समग्र जीवन-स्तर में सुधार से जोड़कर देखना अधिक उचित होगा।

संदर्भ सूची

- मेहता, एस., एवं बनर्जी, पी. (2021). भारतीय कृषि-औद्योगिक क्लस्टरों में श्रम बाजारः एक स्थानिक दृष्टिकोण। जर्नल ऑफ रूरल स्टडीज, 82, 1-15।
- चंद्रा, ए., एवं कौर, आर. (2022). भारतीय औद्योगिक क्लस्टरों में ग्रामीण-नगरीय श्रम प्रवास और आवास। इंटरनेशनल माइग्रेशन रिव्यू, 56(2), 331-356।
- राव, पी., एवं पटेल, डी. (2023). उत्तर भारत के औद्योगिक गलियारों में अनौपचारिक आवास की गतिशीलता। अर्बन स्टडीज, 60(6), 1125-1142।
- रेड्डी, के., एवं शर्मा, वी. (2024). भारतीय कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में जैव-ऊर्जा और ग्रामीण विकास। एनर्जी पॉलिसी, 178, 104-114।
- साहू, ए., एवं सिंह, आर. (2025). भारतीय सिंचाई क्षेत्रों में दबावग्रस्त जलभृत, जल गुणवत्ता में गिरावट और पार्श्व प्रवाह। वॉटर रिसोर्सेज रिसर्च (प्रीप्रिंट)।
- चोपड़ा, एन., एवं वर्मा, एस. (2026). राजस्थान में श्रम कानून सुधार और औद्योगिक प्रदर्शनः एक नीतिगत विश्लेषण। जर्नल ऑफ पॉलिसी मॉडलिंग, 48(1), 1-28।
- जैनिसो, ए., शुक्ला, पी. के., एवं रेड्डी, बी. ए. (2021). भारत में अवैतनिक घरेलू एवं देखभाल कार्य में लैंगिक अंतर को समझना। आर्काइव प्रीप्रिंट।
- अनौपचारिक से औपचारिक अर्थव्यवस्था की ओर संक्रमणः बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता। (2022). द इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स।
- नटराजन, आर. आर., शोट्टे, एस., एवं सेन, के. (2023). भारत में रोजगार की सीढ़ी पर ऊपर या नीचे जानाः अनौपचारिकता से औपचारिकता की ओर संक्रमण का अध्ययन। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन एवं मानव विकास संस्थान (2024). भारत रोजगार रिपोर्ट 2024ः युवा रोजगार, शिक्षा एवं कौशल। नई दिल्लीः आईएलओ एवं मानव विकास संस्थान। यह रिपोर्ट भारत के श्रम बाजार में रोजगार, शिक्षा और कौशल के संबंध का विश्लेषण करती है।

- अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन एवं ओईसीडी (2025). कार्यबल में पुरुषों एवं महिलाओं के बीच समानता। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन।
- बिरहमान, एन. बी., खड़कवाल, जी., रॉय, एस., शेख, एन., वेलामुरी, पी. एस., लता, एच. एवं अन्य (2026). कोविड-19 के बाद भारत के श्रमिकों में व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं सुरक्षाः भारतीय कार्यबल से प्राप्त अंतर्दृष्टियाँ। फ्रंटियर्स इन पब्लिक हेल्थ, 14।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में विद्रूप संवेदनाओं से मुक्ति का स्वर एवं मानवीय सरोकार

प्रशांत चौरसे
ग़ज़लकार एवं शोधार्थी (हिन्दी)
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों के माध्यम से समकालीन समाज की विद्रूपताओं, व्यवस्था के अंतर्विरोधों और संवेदनहीनता के विरुद्ध संघर्ष की चेतना का विश्लेषण करता है। कुँअर बेचैन की ग़ज़लें मात्र व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति न होकर व्यापक सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हैं। वे उपभोक्तावादी दौर में टूटते मानवीय रिश्तों, आर्थिक शोषण, अकर्मण्यता और व्यवस्थागत अन्याय को रेखांकित करते हुए जन-मानस को मौन और जड़ता तोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। उनका ग़ज़ल साहित्य यह स्पष्ट करता है कि मुक्ति का मार्ग आत्ममंथन, अटूट कर्मनिष्ठा, सामूहिक संघर्ष और अगाध प्रेम से होकर गुजरता है। यह आलेख उनके प्रमुख ग़ज़लों के संदर्भ में उनके मानवतावादी दृष्टिकोण, आस्था और सामाजिक पुनर्गठन के संकल्प को रेखांकित करता है।

बीज शब्दः डॉ. कुँअर बेचैन, ग़ज़ल, विद्रूप संवेदना, संवेदनहीनता, उपभोक्तावाद, जीवन संघर्ष, मानवता, प्रेम, कर्मनिष्ठता, आत्म चिंतन।

मूलतः

समकालीन हिंदी ग़ज़ल परंपरा में डॉ. कुँअर बेचैन का नाम एक संवेदनशील और जनपक्षधर ग़ज़लकार के रूप में प्रमुखता से लिया जाता है। उनका संपूर्ण रचना-संसार इस बात का साक्षी है कि वे वर्तमान समाज की विकृतियों और पीड़ाओं के मूल में व्यवस्थागत खामियों को देखते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि शोषण, लूट और अत्याचार किसी भी समाज की स्वाभाविक परिणति नहीं, इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था द्वारा थोपे गए हथियार हैं। जब तक आम जनमानस में अपनी शक्ति और अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं आएगी, तब तक सामाजिक विषमता दूर नहीं हो सकती। कवि का उद्देश्य जनता को अपनी सामूहिक शक्ति और संघर्षशील चेतना से सम्पन्न करना है ताकि वे मौन रहकर शोषण को स्वीकार करने के बजाय व्यवस्था को चुनौती दे सकें। उनकी ग़ज़ल सीधे तौर पर आत्ममंथन और प्रतिरोध का आह्वान करती है :

**"जहाँ इन्सान की औकात से दौलत बड़ी होगी
महल तन कर खड़े होंगे झुकी हर झोपड़ी होगी
जरा सोचो कि मुँह तक रोटियाँ क्यों आ नहीं पायीं
तुम्हारी ही कलाई में कहीं कुछ गड़बड़ी होगी।"**[1]

कवि की सूक्ष्म सामाजिक दृष्टि बदलते हुए समय के हर पहलू को गहराई से परखती है। आधुनिकता और उपभोक्तावादी

संस्कृति की अंधी दौड़ ने मनुष्य को अपने ही घर में अजनबी बना दिया है। इस बदलाव ने पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर जो भावनात्मक ठंडापन पैदा किया है, वह कवि के मन को गहराई से आहत करता है। एक ही छत के नीचे रहते हुए भी दिलों की बढ़ती दूरियों और संवादहीनता के यथार्थ को उन्होंने बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है :

"पड़ रही है दरार रिश्तों में
आसमाँ बँट न जाए टुकड़ों में
अब तो घर में भी लोग डरते हैं
कितनी खामोशियाँ हैं कमरों में।"[2]

इस घोर संवेदनहीनता और टूटन के बीच डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों का मूल आधार मानवतावाद, प्रेम और करुणा ही बना रहता है। वर्तमान दौर में जब ये मानवीय मूल्य खोते दिखाई देते हैं, तो कवि के भीतर एक स्वाभाविक बेचैनी और प्रश्नचिह्न उभरता है। किंतु वे निराशा में डूबने के बजाय तुरंत एक सकारात्मक विश्वास के साथ जीवन के उत्सव और रस को जीने की प्रेरणा देते हैं :

"जिंदगी प्यार का अमरित है, पिएँ जी भर कर
हाथ में रखिए, न रखिए अभी प्याला नीचे।"[3]

डॉ. कुँअर बेचैन ग़ज़ल को मात्र मनोरंजन का साधन नहीं मानते। उनकी दृष्टि में ग़ज़ल का उद्देश्य संसार को उसके भीतरी सौंदर्य के प्रति जगाना और उसे प्रेम की अतल गहराइयों में उतारना है। वे मानते हैं कि प्रेम ही वह संजीवनी है जो विद्रूप समय में मनुष्य को मनुष्य बनाए रख सकती है :

"कितना हँसीं है उसकी मुहब्बत का ये सफ़र
मेरा हरेक मोड़ पे मुड़ने का जी करे।"[4]

उनका लक्ष्य पूरे समाज को प्रेम और अपनत्व के भाव से सराबोर करना है। ग़ज़ल ऐसी विधा बनकर सामने आती है जो प्रेम करना और उसे सहेजना सिखाती है। इसमें प्रेम की साधना और उसके मानवीय संस्कार दोनों निहित हैं। समय कितना भी संकटपूर्ण क्यों न हो, लेकिन पराजय स्वीकार करना कवि के मिजाज में नहीं है। जीवन के प्रति उनकी आस्था कभी समाप्त नहीं होती, जो अंततः बंद द्वारों को भी खोलने की उम्मीद जगाती है :

"पहले तो ये चुपके-चुपके यूँ ही हिलते-डुलते हैं
दिल के दरवाजे हैं आखिर, खुलते-खुलते खुलते हैं।"[5]

सामाजिक यथार्थ के स्तर पर कुँअर बेचैन गरीबों और वंचितों को अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए निरंतर प्रेरित करते हैं। उनका स्पष्ट संकेत है कि भूख और शोषण के विरुद्ध अगर आज आवाज नहीं उठाई गई, तो शोषक शक्तियां मनुष्य के आत्मसम्मान और अस्तित्व दोनों को निगल जाएंगी :

"वह न तुमसे छीन ले तुमको भी रोटी की तरह
ऐ गरीबो, भूख की उस चील से लड़ते रहो।"[6]

कवि का यह संघर्ष-दर्शन अनिवार्य रूप से कर्म से जुड़ता है। वे कर्मनिष्ठा को जीवन का सबसे बड़ा संबल मानते हैं। ठहराव और अकर्मण्यता उनकी दृष्टि में मृत्यु के समान है। जो व्यक्ति रुक गया या थककर बैठ गया, समय उसे मिटा देता है। इसलिए गतिशीलता ही जीवन का पर्याय है :

"राह में थक कर जहाँ बैठी अगर यह जिंदगी
मौत आई, बाँह थामी, और उठा कर ले गई।"[7]

सफलता और मुक्ति की राह में ग़ज़लकार आत्मावलोकन को भी उतना ही आवश्यक मानते हैं। उनकी ग़ज़लें मनुष्य को अपनी आंतरिक कमजोरियों को पहचान कर उन्हें दूर करने और संघर्षों के कांटों के बीच से भी अपनी राह निकालने का मार्ग दिखाती हैं। जीवन की सीमित सांसों के सहारे असीम संभावनाओं को गढ़ने का यह संदेश अत्यंत प्रभावी है :

"और मुझ पै था ही क्या बस साँस की इक नाव थी
मैंने उसमें बैठकर, खुद अपनी नदियां ढूँढ़ ली।"[8]

सांसों की यह नौका हर इंसान के पास उपलब्ध है, लेकिन अपने लक्ष्य और संघर्ष की नदी को तलाश पाना केवल उसी के लिए संभव होता है जो पीछे मुड़कर नहीं देखता। पुरानी बेड़ियों और संकीर्णताओं से मुक्त होकर 'अपने से बाहर निकलकर जीना' ही कवि का संदेश है। वे समकालीन युवाओं की उन विडंबनाओं से भली-भांति परिचित हैं जहाँ छल-प्रपंच और षड्यंत्र उनके मार्ग को रोकते हैं :

"चक्रव्यूहों में फंसे हैं आज के अभिमन्यु भी
और कितने ही कुटिल छल आज के जयद्रथ में हैं।"[9]

कवि को सबसे बड़ी आशंका इस बात की है कि समाज में फैली संवेदनहीनता कहीं सच्चे मानवीय भावों को हमेशा के लिए समाप्त न कर दे। वे उन परिस्थितियों को लेकर चिंतित हैं जहाँ सच्चाई और अच्छाई की रक्षा करना कठिन हो गया है। इसी चिंता को रूपायित करते हुए वे सचेत करते हैं :

"चलती आँधी में अब फिर से, भेज न मन के पंछी को
माना पहले बच आया है, दोबारा दम तोड़ न दे।"[10]

उनकी ग़ज़लें शांति, सह-अस्तित्व और इंसानियत के भविष्य पर मंडराते संकटों को पूरी स्पष्टता से उजागर करती हैं। वे निरंकुश सत्ता और व्यवस्था की क्रूरता के सामने असहाय बने आम नागरिक की बेबसी का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करते हैं :

"यह मत पूछो नाम में मेरे अब कैसी जागीरें हैं
मुझ पर तो केवल गर्दन हैं लोगों पर शमशीरें हैं।"[11]

समय की क्रूरता और व्यवस्था की अमानवीयता को उन्होंने प्रतीकात्मक शैली में इस तरह प्रस्तुत किया है :

"दिन, उजाले के पेड़ जैसा है
रात, आरा मशीन है शायद।"[12]

सबसे बड़ी त्रासदी किसी संकट का होना नहीं, बल्कि अन्याय के सामने समाज का चुप रह जाना है। इस जन-उदासीनता और सामूहिक खामोशी पर कवि का आक्रोश अत्यंत प्रखर रूप में फूटा है :

"जल रहा है शहर सारा और हम खामोश हैं
जर्रा-जर्रा है अंगारा और हम खामोश हैं।
चाकुओं की नोक पर हैं अब हमारी गर्दनें
गर्दनों पर है दुधारा और हम खामोश हैं।"[13]

इस प्रकार डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लें अपने युग के संघर्षों, पीड़ाओं, आकांक्षाओं और मानवीय अंतर्विरोधों का प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। वे केवल समाज का चित्रण करके रुक नहीं जाते, बल्कि साहित्य के माध्यम से उसका एक सकारात्मक और मानवीय पुनर्निर्माण करना चाहते हैं। बंद दीवारों में नए दरवाजे तलाशने और बनाने का उनका यह संकल्प पाठकों के भीतर सोई हुई संवेदना को जगाता है।

निष्कर्ष

डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि उनका साहित्य केवल अपने समय का दर्पण मात्र नहीं है, बल्कि आज के अत्यधिक तकनीकी, आत्मकेंद्रित और विखंडित समाज में इसकी प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। आज जब उपभोक्तावाद ने मानवीय संवेदनाओं को कुंद कर दिया है और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध की भावना क्षीण हो रही है, तब कुँअर बेचैन की ग़ज़लें एक मार्गदर्शक का कार्य करती हैं। वे हमें सिखाती हैं कि कठिन से

कठिन दौर में भी अपनी आस्था, कर्मठता और प्रेम को कैसे जीवित रखा जाए। संवेदनहीनता के अंधेरे में उम्मीद का दीया जलाए रखने और दीवारों में रास्ते बनाने का उनका यह संदेश समकालीन दौर में सामाजिक समरसता और मानवीय मुक्ति के लिए अनिवार्य और अत्यंत प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. कुँअर बेचैन, शामियाने काँच के, प्रगीत प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 1983, पृ. 43
2. कुँअर बेचैन, आँगन की अलगनी, प्रगीत प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 1997, पृ. 20
3. वही, पृ. 34
4. वही, पृ. 12
5. वही, पृ. 36
6. कुँअर बेचैन, शामियाने काँच के, प्रगीत प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 1983, पृ. 88
7. कुँअर बेचैन, रस्सियाँ पानी की, पृ. 24
8. वही, पृ. 36
9. कुँअर बेचैन, दीवारों पर दस्तक, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 22
10. वही, पृ. 81
11. कुँअर बेचैन, शामियाने काँच के, प्रगीत प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 1983, पृ. 79
12. वही, पृ. 74
13. वही, पृ. 70

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

मेहरून्निसा परवेज के कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श (कानीबाट व जंगली हिरणी के विशेष सन्दर्भ में)

मनोज गर्ग
शोधार्थी, (हिन्दी)
महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

मानव समुदाय की उत्पत्ति के साथ ही विस्तार की प्रक्रिया शुरू होती है। प्रारंभ काल से ही मनुष्य का प्रकृति से गहरा लगाव रहा है। कुछ समुदाय प्रकृति के साथ अभी तक जुड़े हुए हैं जबकि कुछ वर्गों ने दुनिया की चमक धमक की ओर मुख मोड़ लिया। प्रकृति से लगाव रखने वाली जाति आदिवासी के नाम से जानी जाती है। इस समुदाय ने अपना जीवन जंगल तक ही सीमित कर लिया। फिर इन्हें अपने जंगल से अधिक लगाव हो गया क्योंकि वे अपनी जरूरतों को प्रकृति से ही पूरा करने लगे। इस प्रकृति की छाप आदिवासियों के जीवन में गहराई के साथ उभर कर आती है। आदिवासी प्रकृति के मोह में बहुत अधिक रचे बसे हैं लेकिन आधुनिक युग में प्रकृति के साथ विकास के नाम पर लोगों ने भौतिक संसाधनों की वजह से खिलवाड़ करना प्रारंभ किया जिससे आदिवासी लोग भी पूरी तरह प्रभावित हुए। जंगलों को धीरे-धीरे नष्ट करते गए। इसी बीच आदिवासियों का संपर्क बाहरी जगत की शोषक जातियों के साथ हुआ। इस सम्पर्क के कारण आदिवासियों की संस्कृति में कई बदलाव हुए। आदिवासी समुदाय के साथ शोषण का कार्य यहीं से शुरू हुआ।

आदिवासी समाज आज दर-दर की ठोकरें खाने, बंधुआ मजदूरी करने पर मजबूर है। सदियों से ही उनका शोषण होता आ रहा है। उन्हें किसी ने नहीं छोड़ा। जिसे भी मौका मिला, जब भी मौका मिला, इस वर्ग का शोषण किया गया। रामशरण जोशी लिखते हैं "हाशिए के जन का अपराध केवल यही रहा है कि प्रकृति ने उन्हें सोना, चांदी, लोहा, बॉक्साइट, मैंगनीज, तांबा, एलुमिनियम, कोयला, तेल, हीरे-जवाहरात, अनन्त जल-जंगल-जमीन का स्वाभाविक स्वामी बना दिया। समता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, और न्याय पूर्ण जीवन की संरचना से समृद्ध किया। यदि अन्यों ने किया तो इस जन ने उसका प्रतिरोध भी जरूर किया। इस आत्म-रक्षात्मक प्रतिरोध का मूल्य इस जन को अपने असंख्य व अवर्णनीय दैहिक बलिदान, विस्थापन, पलायन, परतंत्रता, शोषण और उत्पीड़न के रूप में अदा करना पड़ा।"[1] रामशरण जोशी ने इसी क्रम में इनकी ईमानदारी और भोलेपन पर लिखा है "आदिवासी किसी की हत्या भी कर देता है तो वह खुद ही पुलिस स्टेशन में अपने ही खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराने पहुंच जाता है।"[2]

आदिवासियों के जब जमीन व जंगल समाप्त होने लगे तो इन्होंने मजदूरी करना स्वीकार किया। कई आदिवासी भिखारी भी बन गए। आदिवासी अपने उजड़े आशियाने की वजह से बेघर होकर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हुए और मजबूरी वश उन्होंने हथियार भी उठाए। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1982 में इस विषय पर एक बैठक का आयोजन किया और प्रथम पृथ्वी सम्मेलन रियो डी जिनेरिओ 1992 में भाग लेने वाले अनेक देशों ने सामूहिक रूप से इस विषय पर सामूहिक परिचर्चा की और वैश्विक मानवाधिकार आयोग के साथ सामाजिक, राजनीतिक साहित्यिक जगत ने भी इस विषय का पुरजोर समर्थन किया है। तमाम कोशिशों के बावजूद भी यह हाशिए का वर्ग न्याय से कोसों दूर है।

आदिवासी, सभ्य समझे जाने वाले समाज के आडंबरों से दूर, आधुनिक विकास की चकाचौंध से दूर, अपने सरल व प्रकृति की रक्षा करने वाले स्वभाव से युक्त अपने समाज के नियमों, उसूलों का पालना करते हुए अपनी मूल स्थिति पर कायम रहते हुए निवास करते हैं, इन विशेषताओं के आधार पर भारत में रहने वाले आदिवासी जातियों पर चर्चा करें तो उनमें प्रमुख है- मुंडा, बिरहोर, हो, घुरवा, संथाल, अंडमानी, निकोबारी, हल्बी, बैगा, माडिया, गोंड, कुरूंबा, भुईया, भाटिया, सहरिया, कोल, भील, भूटिया, खेरवार, खड़िया, माल पहाड़िया, लखेर, अगरिया, बोडो, बांछड़ा, कोंड, खासी, चकमा, टोडा, मीणा, कथौड़ी, बंजारा, नट, बावरिया आदि। इन जनजातियों के निवास के बारे में शंकर बाम बताते हैं- "देश के पहाड़ों और जंगलों में आदिवासी निवास करते हैं। लेकिन देश भर में आदिवासियों की सबसे अधिक संख्या मध्यप्रदेश में ही है। इन आदिवासियों की संख्या इस प्रदेश में पचास लाख के लगभग है। इनमें भी सबसे अधिक गोंड जाति के लोग हैं। सारे भारत में पाए जाने वाले गोंडों की दो तिहाई आबादी यहीं बसी हुई है। इन गोंडों की उपजातियां भी है जैसे बस्तर के रहने वाले भतरा, माड़िया, मुड़िया, कोया तथा परजा। नर्मदा घाटी के अगरिया परधान और परहैया। इनके सिवाय राजगोंड, राजमुड़िया, नाइकगोंड, पिता भतरा भी उनकी उपजातियां हैं जो एक जगह समूह बनाकर रहती है।"[3]

साहित्यकार अपनी लेखनी के द्वारा समाज की समस्याओं को उजागर करता है। आदिवासी समाज के साहित्यकारों ने अपने समाज विशेष की समस्याओं को प्रमुखता के साथ उकेरा है। साथ ही उनकी समस्याओं को देश-दुनिया के सामने उजागर किया है। आदिवासी समुदाय के साहित्यकारों के अलावा गैर आदिवासी साहित्यकारों ने भी इस हाशिए के समुदाय की पीड़ा को नजदीक से महसूस किया है। उनमें प्रमुख है हिंदी साहित्य की महान कथाकार मेहरुन्निसा परवेज। मेहरुन्निसा परवेज ने अपना बचपन बस्तर के आदिवासियों के बीच ही गुजारा। आदिवासियों के बीच रहकर उन्होंने उनकी समस्याओं को बखूबी समझा। उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक क्रियाकलापों से जुड़ी रही है। आदिवासी समुदाय की पीड़ा को नजदीक से महसूस कर अपनी लेखनी के द्वारा समाज के सामने व्यक्त किया है।

'कानीबाट' कहानी में आदिवासी समुदाय की आंचलिकता, उनके खान-पान, रहन-सहन को बखूबी दर्शाया है। इस बारे में लेखिका बताती है। "दुलेसा भीतर आ गई। ओसारे में सरगी पत्तों से भरे टोकने रखे थे। सुबह मुंह-अंधेरे मां के साथ दुलेसा जंगल में पत्ते लाने गई थी। वहीं से मां ने धरती खोदकर बोड़ा निकाला था। कँवले-कँवले बोड़ा को देखकर दोनों प्रसन्न हो गए थे। जुलाई के प्रथम सप्ताह में ही यह मिलने शुरू हो जाते हैं। धरती, जहां बड़ा होता है, फट जाती है। वही थोड़ा सा खोदने पर नन्हें-नन्हें आलू के आकार का बोड़ा निकलता है। जिस दिन जिसके घर बोड़ा साग बनता है उस दिन घर के लोग उत्सुकता से खाना खाते हैं।"[4] आदिवासी प्रकृति पर निर्भरता के साथ आनंद पूर्ण जीवन जीने में विश्वास रखते हैं। मेले जैसे आयोजन में भी विशेष रूप से भाग लेते हैं। जब प्रकृति फसल के रूप में न्योछावर करती है तब उनमें उत्सुकता कुछ ज्यादा ही बढ़ जाती है। "नारायणपुर की मडई! मां री, क्या धूमधाम थी उस बरस, चीं पों के मारे आवाज सुनाई नहीं पड़ रही थी। पूरे तीन बरस के बाद उस साल बढ़िया फसल हुई थी, इसलिए गांव के गांव उमड़ पड़े थे नारायणपुर मडई के लिए। जिधर भी दृष्टि जाती आदमी ही आदमी। मर्द, औरतें और बच्चे। तरह-तरह की रंगीन साड़ियां"[5] इससे स्पष्ट होता है कि अनादि काल से चली आ रही परंपरा को पूर्ण दृढ़ता से आदिवासी समुदाय निभा रहे हैं।

आदिवासी समाज में विवाह तय करने या रिश्ते की बात चलने के अवसर पर भी एक खास रीति अपनाई जाती है जिसका विवरण 'कानीबाट' कहानी में इस प्रकार दिया गया है। "फूलों के घर के सामने दो बल्लियाँ गाड़ कर सूअर को उलटा लटका दिया था। यह इस बात का सूचक था कि फूलों के घर लड़के वाले आए हैं और भीतर बात चल रही है। जब बातें हो जाएगी तो सूअर को सीधा कर दिया जाएगा और शाम को इसी सूअर को काटकर सब लोग शराब के साथ खाकर आनंद मनाएंगे तो फूलों का भी ब्याह हो जाएगा"[6]

आदिवासी समाज अपनी सामाजिक प्रथाओं मान्यताओं को बखूबी मानते हैं। वह अपनी मान्यताओं के साथ खिलवाड़ नहीं चाहते। अगर समाज का कोई भी सदस्य उन मान्यताओं की अवहेलना करता है, विरोधाभास की स्थिति पैदा होती है तो उसे दंड का भागी बनना पड़ता है। 'कानीबाट' कहानी में जलयारी के माध्यम से समाज की मान्यताओं के विरोध को दर्शाया

गया है। लेखिका प्रस्तुत कहानी में चित्रित घटना कुछ इस प्रकार सामने रखती है। "पहली बार गांव वाले भागी हुई लड़की को पकड़कर लाते हैं और उसे खूब मारते हैं, बांध देते हैं। लड़की मौका पाकर फिर भाग जाती है, दूसरी बार उसे पकड़कर लाते हैं और आग से दागते हैं, मारते हैं। तीसरी बार यदि लड़की फिर भाग जाती है तो गांव वाले उसे पकड़कर लाते हैं और उसका एक पैर चक्की के बीच डाल देते हैं या बांध देते हैं। उसके बाद तेजी से घुमाते हैं। लड़की पीड़ा से चीखती है, उसका पैर सूज जाता है और वह कष्ट से बुरी तरह चिल्लाती है और बेहोश हो जाती है। कई लड़कियां बीच में क्षमा मांग लेती है। कई लड़कियां इस कष्ट को भी सह जाती है और वह फिर मौका पाकर भाग जाती है। इस बार गांव वाले खुद उसे प्रेमी के पास पहुंचा देते हैं... आज जलयारी को तीसरा दंड मिलेगा सारा गांव इकट्ठा हो रहा है।"[7] आदिवासी समाज, जहां अपने नियम कायदों के अनुसार चलता है वहीं सभ्य समाज रिश्तों के बंधन को छोड़कर कानूनी दांव पेंच पर उतर जाता है और अपने अवैध संबंधों को लिव-इन रिलेशनशिप का हवाला देकर कानूनी सुरक्षा प्राप्त कर लेता है इस प्रकार के कानूनी दांवपेच से यह आदिवासी समाज पूर्णतया अनभिज्ञ है।

मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'कानीबाट' के शीर्षक के सम्बन्ध में लेखिका बताती है कि कानीबाट एक पगडंडी को कहते हैं। यह पगडंडी स्वच्छंदता की प्रतीक है। जिस प्रकार जंगल की पगडंडी अपनी स्वच्छंदता के लिए विख्यात है, उसी प्रकार आदिवासी समाज भी अपने स्वच्छन्द आचरण के लिए प्रसिद्ध है। जहां सभ्य समाज में स्त्री पुरुष संबंधों को स्वीकार करने में द्वंद्व की स्थिति का सामना करना पड़ता है, वहीं आदिवासी समाज में स्त्री स्वच्छन्दता को पूर्ण महत्व दिया गया है। आदिवासी समाज में शादी से पूर्व लड़के को घर जमाई रखने का रिवाज है ताकि लड़के को अच्छे से जाँचा परखा जा सके। घोटुल निवासी दुलेसा के माता-पिता अपने समाज की परंपरा के अनुसार रामू को घर जमाई रखते हैं। दुलेसा पड़ोसी गांव के आदिवासी जिलेन से प्रेम करती है और उसके गर्भ को पाल रही है। घर जमाई रामू को दुलेसा के किसी दूसरे के गर्भ के बारे में पता चलता है तो वह बिना किसी झिझक, दबाव के गर्भ को अपना नाम देना स्वीकार कर लेता है। ऐसे क्रांतिकारी कदम आदिवासी समाज में आम है। स्त्री स्वतंत्रता को यथार्थ में स्वीकार किया गया है। आदिवासी अंचल में लड़की के जन्म को शुभ माना जाता है। "दुलेसा ने हर एक के सामने एक-एक दोना रख दिया। जोनी ने सबके दोने में शराब डाली। बाहर बैठे मर्दों को भी जोनी ने दोने में शराब परोस कर दी तथा सबको कजोहार किया। जाते समय सबने जोनी और लिकेन को लड़की के पैदा होने पर बधाई दी। लड़की होना रईसी का सूचक माना जाता है क्योंकि लड़की घर में धन लाती है।"[8]

मेहरुन्निसा परवेज ने अपने साहित्य लेखन में मानवीय संवेदना को उजागर किया है जंगली 'हिरणी कहानी' के माध्यम से स्त्री मन की अभिव्यक्ति को सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रकृति व जंगल ने आदिवासी समाज को खूब धन धन्य संपन्न बनाया है। वनांचल के निवासी प्राकृतिक सौंदर्य का भरपूर लुत्फ उठाते हैं। प्रतिस्पर्धा के दौर में जहां सभ्य समाज निरंतर विकास की चकाचौंध में डूबा रहता है, वहीं यह पीड़ित, शोषित, भोले आदिवासी प्रकृति प्रदत जंगली जड़ी-बूटियों की खोज में ही लगे रहते हैं। यही उनकी आजीविका का साधन है। शाम के वनांचल के प्राकृतिक सौंदर्य की छटा को लेखिका पाठकों के बीच इस तरह प्रकट करती है। "शाम आगे-आगे बढ़ी चली जा रही थी। एक तरफ पहाड़ी पर कुछ मुरिए जड़ी-बूटी खोज रहे थे। सामने नीम अपने पत्तों को हवा में हिला रहा था। नीम में फूल आ गए थे जिनकी खुशबू चारों तरफ फैली हुई थी। नीम पर चढ़े हुए पालतू कबूतर टुकुर-टुकुर पहाड़ी नाले की तरफ देख रहे थे।"[9]

आदिवासी प्रकृति प्रेमी होने के साथ-साथ स्वतंत्र विचारों की वजह से भी सभ्य समाज से जरा हटकर है। 'जंगली हिरणी' कहानी में जवान होती लच्छो के माध्यम से लेखिका ने स्त्री मन की अभिलाषा को व्यक्त किया है जो परिवर्तन की आशा में अपने मन की आकांक्षाओं को तवज्जो देना चाहती है। "रात जब काफी बीत गई तब मेंगन ने आंगन में, जहां ढेर सी आग जल रही थी, वहीं किनारे चटाई बिछा दी। सब आग के चारों तरफ सो गए पर लच्छो जाग रही थी। ओह! सब की शादी हो गई पर मेरी....! मुझे तो यहां के काले लड़के एक नहीं सुहाते - तो क्या मैं यूं ही कुंवारी रहूंगी?"[10] परिवर्तन की अभिलाषा में जीवन जीने वाली लड़की है। वह आदिवासी लड़कों के काले कलूटे रंग वालों से शादी करना पसंद नहीं करती क्योंकि वह स्वयं गोरे पर्यटक की नाजायज संतान है जिसके गोरे रंग की छाप उस पर पड़ी हुई है। यह गोरे पर्यटक आदिवासी समाज

की भोली-भाली स्त्रियों को अपना शिकार बनाते हैं। उनका शोषण करते हैं। आदिवासी समाज निरंतर शोषण का शिकार होता आया है।

आदिवासियों का शोषण करने वालों में लेखिका ने उन पर्यटकों का भी जिक्र किया है जो घूमने के लिए या शिकार करने के लिए आते हैं और भोले-भाले आदिवासियों को अपना शिकार बनाते हैं, उनसे दुव्यर्वहार करते हैं, औरतों की इज्जत से खिलवाड़ करते हैं। 'जंगली हिरणी' कहानी में लच्छो की माँ मेंगन जब नई ब्याहता होती है। वह जंगल में लकड़ियां लाने जाती है तो उसका सामना एक पर्यटक शिकारी के साथ होता है जो शिकार खेलने आता है। कहानी में हुई इस मुठभेड़. को लेखिका ने इस रुप में व्यक्त किया है। "साहब उसे अजीब नजरों से देख रहा था। उसके भरे-भरे जिस्म पर उसकी नजरें फिसल रही थी।.... साहब उसे अंदर जंगल के मंदिर में ले गया और जब वह वापस आई तो...? उसके पैर कांप रहे थे, आंखें बोझिल थी और जब नौ माह बाद लच्छो हुई तो बिल्कुल साहब की तरह गोरी बुधु को शक ने धर दबोचा, बता किसकी है?. .. माय लूटी, हरामजादी, छिनाल ठगती है? और उसने एक लात उसकी छाती पर दे मारी वह 'हाय' करके गिर गई पर उसने साहब वाली बात नहीं बताई और बुधु बड़बड़ाता रहा, "न जाने कहां से आ मरते हैं खुले सांड की तरह हमारी इज्जत लूटने! मैं देखता उसे तो टँगिया से एक बार में ही काट देता" उसने जोर से थूक दिया जैसे साहब के मुंह पर थूक रहा हो।[11]

आदिवासी अंचल में जब बाहरी लोगों का प्रवेश होता है तो वे अपनी पुरानी पहचान को छोड़ने लगते हैं। भोले-भाले आदिवासी उनके चंगुल में फंस जाते हैं। वह सपने तो बड़े-बड़े दिखाते हैं, पर बाद में बीच मंझधार में ही छोड़ कर के निकल जाते हैं। आदिवासी समाज की स्त्रियां उन बाहरी लोगों के चंगुल में फंस कर अपनी इज्जत तक बेचने को मजबूर हो जाती है। वे उन्हें अपना शिकार बनाते हैं कभी वे पर्यटक के रूप में, तो कभी शिकारी के रूप में, कभी अन्य रुप में। एक परदेसी वहां आदिवासी इलाके में आकर के स्कूल खोलता है और बच्चों को पढ़ाता है। लच्छो भी आदिवासी क्षेत्र में आए हुए परदेसी शिक्षक के चंगुल में फंस जाती है जो बाद में उसे अकेला छोड़ कर निकल जाता है। परदेसी का स्कूल नहीं चला। गांव के लोगों ने बच्चे भेजना बंद कर दिया और थक कर परदेसी शहर चला गया। "लच्छो टूटे सपनों, टूटे अरमानों, बिखरे आंसुओं को झोली में समेटे रह गई। रात को सब आग के पास बैठे थे। लच्छो का मन परदेसी की याद में दहकने लगा। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे और वह झट झुककर आग फूँकने लगी।"[12] इसी आग के धुएं के माध्यम से उसने अपने मन की कल्पनाओं को साकार किया है। उसने अपने मन की पीड़ा को अपने मां के सामने व्यक्त किया है। "मां मेरे मन में तो इतनी आग दहक रही है कि पीड़ा से मेरी आंखें आंसू बरसाने लगती है और फिर आग बुझ जाती है। फिर इतना धुआं उठता है मां कि मैं उसमें घुट जाती हूं।"[13] इस प्रकार लच्छो के सपने चकनाचूर हो जाते हैं फिर उसे भी अपनी माँ की तरह शोषण का शिकार होना पड़ता है।

"साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटारियाँ, मीनार और गुंबद बनते हैं; लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को भी जी नहीं चाहेगा......जीवन परमात्मा को अपने कामों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं; लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है"[14] लेखिका मेहरुन्निसा परवेज ने आदिवासी जीवन की अत्यंत मार्मिक, कारुणिक, शोषित और पीड़ित पक्ष को अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है। आदिवासियों के भोलेपन, उनकी मासूमियत, सीधे सरल स्वभाव के कारण सभ्य व शिष्ट समझा जाने वाला समाज उन्हें अपने शोषण का शिकार बनाता है। शिष्ट और सभ्य समाज उन्हें आर्थिक, व दैहिक शोषण का शिकार बनाता है। लेखिका ने कहानी 'कानिबाट' और 'जंगली हिरणी' में आदिवासी समाज के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्रियाकलापों के उदघाट्न के साथ-साथ शिष्ट समाज द्वारा उन पर किये जा रहे अत्याचारों और शोषण का उल्लेख बखूबी किया है।

सन्दर्भ सूची

1 रामशरण जोशी, यादों का लाल गलियारा दंतेवाड़ा, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2015 पृ॰ 8

2 वही, पृ॰ 71

3 शंकर बाम, दर्शनीय मध्यप्रदेश, पृ॰ 235
4 मेहरून्निसा परवेज, कानीबाट, मेरी बस्तर की कहानियां, पृ॰ 12
5 वही, पृ॰ 16
6 वही, पृ॰ 24
7 वही, पृ॰ 23
8 वही, पृ॰ 18
9 मेहरुन्निसा परवेज, जंगली हिरणी, मेरी बस्तर की कहानियां, पृ॰ 227
10 वही, पृ॰ 228
11 वही, पृ॰ 230
12 वही, पृ॰ 232
13 वही, पृ॰ 232
14 माया प्रसाद दिशाहारा, वाङमय त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई- सितम्बर 2015 पृ॰ 5

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

ग्रामीण महिलाओं में शिशु पोषण एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. श्वेता व्यास
आचार्य गवर्नमेंट मीरा गर्ल्स कॉलेज उदयपुर

निर्मला तिवाड़ी
शोधार्थी MLSU उदयपुर

सारांश

शिशु के प्रारम्भिक वर्ष शारीरिक वृद्धि, मस्तिष्कीय विकास, प्रतिरक्षा क्षमता और भविष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। इस अवधि में उचित स्तनपान, समय पर पूरक आहार, संतुलित पोषण, टीकाकरण, स्वच्छता तथा आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएँ शिशु के समुचित विकास की आधारशिला हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन प्रथम छह माह तक अनन्य स्तनपान तथा छह माह के बाद सुरक्षित और पर्याप्त पूरक आहार के साथ स्तनपान जारी रखने की अनुशंसा करता है (विश्व स्वास्थ्य संगठन डब्ल्यूएचओ, 2023ए, 2023बी)।

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं में शिशु पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता के प्रमुख आयामों का उपलब्ध द्वितीयक साक्ष्यों के आधार पर विश्लेषण करना है। इसके लिए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ तथा भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद–राष्ट्रीय पोषण संस्थान के आधिकारिक दस्तावेजों को प्रमुख आधार बनाया गया है'' (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज आईआईपीएस, और आईसीएफ, 2021)।

उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि शिशु पोषण केवल भोजन की उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि स्तनपान, पूरक आहार की पर्याप्तता, आहार विविधता, सुरक्षित भोजन, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच तथा देखभालकर्ता के ज्ञान से भी जुड़ा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन छह से 23 माह की आयु को पोषण एवं वृद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हुए समय पर पूरक आहार, विविधता और सुरक्षित भोजन व्यवहार पर बल देता है (WHO, 2023)। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद–राष्ट्रीय पोषण संस्थान भी संतुलित एवं विविध आहार को स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक मानता है (आईसीएमआर-एनआईएन विशेषज्ञ समिति, 2024)।

टीकाकरण शिशु स्वास्थ्य संरक्षण का एक अन्य महत्वपूर्ण आधार है। नियमित टीकाकरण बच्चों को अनेक गंभीर एवं रोकथाम योग्य रोगों से सुरक्षा प्रदान करता है, जबकि गरीबी, सामाजिक वंचना और स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकती है (यूनिसेफ, 2023)। अतः ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता को केवल व्यक्तिगत ज्ञान के रूप में नहीं, बल्कि परिवार, समुदाय, स्वास्थ्य व्यवस्था और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से जुड़ी व्यापक प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है।

समग्र रूप से उपलब्ध साहित्य यह दर्शाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में मातृ जागरूकता को सुदृढ़ करने के लिए पोषण शिक्षा, व्यवहार परिवर्तन, स्वास्थ्यकर्मियों के प्रभावी परामर्श और सामुदायिक सहभागिता को एकीकृत रूप से बढ़ावा देना आवश्यक है।

1. परिचय

शिशु पोषण केवल भोजन की उपलब्धता का विषय नहीं है, बल्कि यह वृद्धि, प्रतिरक्षा, विकास और समग्र स्वास्थ्य से जुड़ी प्रक्रिया है। जीवन के प्रारम्भिक दो वर्षों में पोषण की आवश्यकताएँ तेजी से बदलती हैं और इस अवधि में अनुचित आहार से वृद्धि में अवरोध तथा पोषक तत्वों की कमी का जोखिम बढ़ सकता है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2023).

माता अथवा प्राथमिक देखभालकर्ता शिशु के पोषण संबंधी निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्तनपान की शुरुआत, छह माह तक अनन्य स्तनपान तथा उसके बाद उपयुक्त पूरक आहार का चयन केवल व्यक्तिगत जानकारी पर निर्भर नहीं करता, बल्कि पारिवारिक मान्यताओं, आर्थिक परिस्थितियों और स्वास्थ्य संबंधी परामर्श से भी प्रभावित होता है (डब्ल्यूएचओ, 2023-ए, 2023b).

भारतीय अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि मातृ शिक्षा, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, पारंपरिक मान्यताएँ, पारिवारिक प्रभाव तथा स्वास्थ्य सेवाओं से संपर्क शिशु पोषण संबंधी ज्ञान और व्यवहार को प्रभावित कर सकते हैं (Seth et al., 1998; Choudhary et al., 2014)। पोषण शिक्षा और स्वास्थ्यकर्मियों का उचित परामर्श भी पूरक आहार संबंधी व्यवहार में सुधार के लिए महत्वपूर्ण माना गया है (डब्ल्यूएचओ, 2023c).

भारत में शिशु एवं बाल पोषण की स्थिति को समझने के लिए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 एक महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत है, जो पोषण, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य सेवाओं से संबंधित व्यापक आँकड़े उपलब्ध कराता है (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज आईआईपीएस, और आईसीएफ, 2021)। इसके साथ स्वच्छता, सुरक्षित भोजन और उत्तरदायी भोजन व्यवहार को भी शिशु स्वास्थ्य का आवश्यक हिस्सा माना जाता है (डब्ल्यूएचओ, 2023ए; डब्ल्यूएचओ और यूनिसेफ, 2023).

इसी व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर प्रस्तुत लेख उपलब्ध द्वितीयक साक्ष्यों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं में शिशु पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता का विश्लेषण करता है। लेख में किसी विशिष्ट क्षेत्र की महिलाओं के संबंध में काल्पनिक आँकड़े या प्राथमिक सर्वेक्षण-आधारित निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं किए गए हैं; इसके स्थान पर उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मातृ जागरूकता, शिशु आहार, स्वास्थ्य सेवाओं और सामाजिक परिस्थितियों के प्रमुख आयामों को समझने का प्रयास किया गया है।

2. साहित्य समीक्षा

शिशु पोषण से संबंधित शोधों से स्पष्ट है कि मातृ ज्ञान, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ, पारिवारिक मान्यताएँ और स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़ाव शिशु आहार एवं स्वास्थ्य व्यवहार को प्रभावित करते हैं। प्रमुख अध्ययनों का संक्षिप्त सार इस प्रकार है–

1. सिंह, हल्दिया एवं लक्ष्मीनारायण (1997) ने राजस्थान के अर्ध-शुष्क ग्रामीण क्षेत्रों में 328 माताओं के बीच शिशु आहार एवं दूध छुड़ाने की प्रथाओं का अध्ययन किया। अध्ययन में पारंपरिक मान्यताओं तथा अनुपयुक्त शिशु आहार एवं पूरक आहार व्यवहार की उपस्थिति सामने आई। शोधकर्ताओं ने स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पोषण शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया।

2. सेठ, गोयल एवं सेन (1998) ने ग्रामीण दक्षिण भारत में मातृ कुपोषण संबंधी ज्ञान तथा स्वास्थ्य-सेवा प्राप्त करने की प्रवृत्ति का अध्ययन किया। अध्ययन में मातृ ज्ञान तथा सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को बाल कुपोषण और स्वास्थ्य-सेवा संबंधी व्यवहार से जुड़े महत्वपूर्ण कारकों के रूप में पहचाना गया।

3. किशोर, कुमार एवं अग्रवाल (2009) ने उत्तर भारत की ग्रामीण माताओं में स्तनपान संबंधी ज्ञान एवं व्यवहार का सामुदायिक स्तर पर अध्ययन किया। अध्ययन में माताओं के ज्ञान और वास्तविक स्तनपान व्यवहार के बीच अंतर पाया गया

तथा स्वास्थ्यकर्मियों से प्राप्त परामर्श को बेहतर स्तनपान व्यवहार के लिए महत्वपूर्ण माना गया।

4. गर्ग, दीप्ति, पड्डा एवं सिंह (2010) ने ग्रामीण पंजाब की 1,000 महिलाओं में स्तनपान संबंधी ज्ञान एवं व्यवहार का अध्ययन किया। अध्ययन में प्रारंभिक स्तनपान, प्रथम पीत दुग्ध तथा शिशु पोषण संबंधी मातृ ज्ञान में कमियाँ सामने आईं। शोधकर्ताओं ने व्यक्तिगत एवं लक्षित पोषण परामर्श की आवश्यकता पर बल दिया।

5. भारत में 2006-2016 के राष्ट्रीय आँकड़ों पर आधारित अध्ययन में शिशु एवं छोटे बच्चों के आहार व्यवहार में कुछ सुधार दिखाई दिया, किंतु आहार विविधता और न्यूनतम स्वीकार्य आहार से संबंधित प्रगति सीमित रही। अध्ययन में मातृ शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा स्वास्थ्य-सूचना तक पहुँच को बेहतर आहार व्यवहार से जुड़े महत्वपूर्ण कारकों के रूप में रेखांकित किया गया (Menon et al., 2019).

6. भारत में मातृ स्वास्थ्य-साक्षरता पर किए गए अध्ययन में मातृ स्वास्थ्य-साक्षरता और प्रारंभिक बाल पोषण स्थिति के बीच महत्वपूर्ण संबंध पाया गया। अध्ययन से यह संकेत मिला कि स्वास्थ्य संबंधी जानकारी को समझने और उसका उपयोग करने की मातृ क्षमता बाल पोषण की बेहतर स्थिति से जुड़ी हो सकती है (Sperlich et al., 2016).

7. कम्भ्बले, कौर, आचार्य एवं गुप्ता (2020) ने हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्र में 6 माह से 2 वर्ष आयु के बच्चों की माताओं के बीच गुणात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में स्तनपान और प्रथम पीत दुग्ध के संबंध में सामान्य जानकारी अपेक्षाकृत बेहतर पाई गई, जबकि पूरक आहार की शुरुआत, उसकी संरचना तथा आहार विविधता के संबंध में ज्ञान-अंतर सामने आया। शोधकर्ताओं ने शिशु एवं छोटे बच्चों के आहार संबंधी लक्षित जागरूकता की आवश्यकता पर बल दिया।

8. अथावले, होएफ्ट, डालाल, बॉन्ड्रे, मुखर्जी एवं सोकल-गुटिरेज़ (2020) ने मुंबई में शिशु पोषण संबंधी अनुशंसित व्यवहारों के पालन में आने वाली बाधाओं एवं सहायक कारकों का गुणात्मक अध्ययन किया। अपर्याप्त पोषण जानकारी, परस्पर विरोधी स्वास्थ्य संदेश और सीमित सामाजिक सहयोग प्रमुख बाधाओं के रूप में सामने आए, जबकि विशेषज्ञ पोषण परामर्श तथा पारिवारिक सहयोग सहायक कारक पाए गए।

9. भारत के राष्ट्रीय स्तर पर किए गए अध्ययन में शिशु एवं छोटे बच्चों के पूरक आहार व्यवहार का विश्लेषण किया गया। अध्ययन में समय पर पूरक आहार, न्यूनतम भोजन आवृत्ति, आहार विविधता तथा न्यूनतम स्वीकार्य आहार के स्तरों में असमानता पाई गई। ग्रामीण निवास, प्रसवपूर्व देखभाल तथा मातृ एवं पारिवारिक परिस्थितियों को पूरक आहार व्यवहार से संबंधित महत्वपूर्ण कारकों के रूप में पहचाना गया (Idowu et al., 2022).

10. रंधावा, चौधरी, चौधरी, बल्लाला, हेगड़े, बरमन एवं डोगरा (2024) ने असम के आकांक्षी जिलों में माताओं तथा अग्रिम पंक्ति के स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के शिशु एवं छोटे बच्चों के आहार संबंधी ज्ञान, दृष्टिकोण एवं व्यवहार का अध्ययन किया। अध्ययन में मातृ तथा स्वास्थ्यकर्मी स्तर पर ज्ञान और व्यवहार की स्थिति के साथ बच्चों की पोषण स्थिति का भी परीक्षण किया गया। निष्कर्षों ने माताओं तथा अग्रिम पंक्ति के स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं दोनों को शामिल करते हुए समन्वित पोषण हस्तक्षेपों की आवश्यकता को रेखांकित किया।

शोध-अंतर

उपलब्ध अध्ययनों में मातृ ज्ञान, स्तनपान, पूरक आहार, आहार विविधता तथा सामाजिक-आर्थिक निर्धारकों का अलग-अलग अध्ययन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। फिर भी इन सभी आयामों को मातृ जागरूकता से लेकर अंतिम बाल पोषण परिणाम तक एक समेकित ढाँचे में देखने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित हैं। प्रस्तुत लेख इसी समेकित दृष्टिकोण के माध्यम से उपलब्ध साक्ष्यों को जोड़ने का प्रयास करता है।

3. अध्ययन के उद्देश्य

संशोधित समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पत्र की प्रकृति के अनुरूप अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. ग्रामीण महिलाओं में शिशु पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता के प्रमुख आयामों का विश्लेषण करना।

2. स्तनपान एवं पूरक आहार संबंधी अनुशंसित पोषण व्यवहारों का उपलब्ध साहित्य एवं आधिकारिक दिशानिर्देशों के आधार पर अध्ययन करना।

3. शिशु टीकाकरण, स्वच्छता तथा स्वास्थ्य सेवाओं से संबंधित मातृ जागरूकता के प्रमुख पक्षों का अध्ययन करना।

4. मातृ शिक्षा, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच की शिशु पोषण एवं स्वास्थ्य जागरूकता में भूमिका का विश्लेषण करना।

5. उपलब्ध साहित्य में विद्यमान शोध-अंतर की पहचान कर भविष्य के अध्ययन एवं हस्तक्षेप की संभावित दिशाएँ प्रस्तुत करना।

4. शोध पद्धति

प्रस्तुत लेख द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इसमें स्वतंत्र प्राथमिक सर्वेक्षण नहीं किया गया है, अतः किसी काल्पनिक उत्तरदाता, नमूना, प्रतिशत अथवा सांख्यिकीय परिणाम का निर्माण नहीं किया गया। अध्ययन का आधार प्रकाशित शोध-अध्ययन तथा विश्वसनीय राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के दस्तावेज हैं।

4.1 शोध की प्रकृति

अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। उपलब्ध साहित्य और आधिकारिक दस्तावेजों का विषयगत विश्लेषण कर मातृ जागरूकता, शिशु पोषण, स्वास्थ्य व्यवहार तथा उनसे संबंधित प्रमुख कारकों को समझने का प्रयास किया गया है।

4.2 आँकड़ों के स्रोत

अध्ययन के लिए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5, विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र बाल कोष, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद—राष्ट्रीय पोषण संस्थान, भारत सरकार के संबंधित दस्तावेज तथा शिशु आहार, स्तनपान, पूरक आहार, मातृ पोषण-ज्ञान और बाल स्वास्थ्य से संबंधित प्रकाशित शोध-अध्ययनों का उपयोग किया गया है (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज आईआईपीएस और आईसीएफ, 2021)।

4.3 स्रोत चयन एवं विश्लेषण

ऐसे स्रोतों को प्राथमिकता दी गई जो अध्ययन विषय से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित, आधिकारिक अथवा समीक्षित शोध-पत्रों के रूप में प्रकाशित हों। उपलब्ध सामग्री का विषयगत रूप से मातृ जागरूकता, स्तनपान, पूरक आहार, आहार विविधता एवं खाद्य सुरक्षा, टीकाकरण एवं शिशु स्वास्थ्य , स्वच्छता एवं उत्तरदायी भोजन, सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक, बाल पोषण परिणाम के आधार पर विश्लेषण एवं संश्लेषण किया गया। समान निष्कर्षों की अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचते हुए विभिन्न अध्ययनों में प्राप्त समानताओं और भिन्नताओं को उनके संदर्भ में प्रस्तुत किया गया।

4.4 अध्ययन की सीमा

यह लेख किसी विशिष्ट क्षेत्र की महिलाओं की वर्तमान जागरूकता का प्रत्यक्ष सांख्यिकीय मापन नहीं करता। इसलिए उपलब्ध निष्कर्षों को किसी स्थानीय समुदाय की प्रत्यक्ष स्थिति के रूप में नहीं, बल्कि द्वितीयक साक्ष्यों से प्राप्त व्यापक निष्कर्षों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

5. परिणाम एवं विश्लेषण

5.1 स्तनपान की स्थिति

एनएफएचएस-5 के अनुसार राजस्थान में जन्म के एक घंटे के भीतर स्तनपान की दर 28.4% से बढ़कर 40.7% तथा छह माह से कम आयु के बच्चों में केवल स्तनपान की दर 58.2% से बढ़कर 70.4% हुई (आईआईपीएस और आईसीएफ, 2021)। यह सुधार सकारात्मक है, किंतु छह माह के बाद बढ़ती पोषण आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त पूरक आहार आवश्यक

है (डब्ल्यूएचओ, 2023a, 2023b)।

5.2 पूरक आहार एवं आहार पर्याप्तता

राजस्थान में 6-8 माह के बच्चों को स्तनपान के साथ ठोस, अर्ध-ठोस या नरम भोजन मिलने की दर 38.0% तथा 6 23 माह के बच्चों में न्यूनतम स्वीकार्य आहार की दर केवल 8.3% थी (आईआईपीएस - आईसीएफ, 2021)। इससे पूरक आहार की पर्याप्तता एक प्रमुख चुनौती के रूप में सामने आती है। डब्ल्यूएचओ उचित समय, मात्रा, विविधता, आवृत्ति, स्वच्छता और उत्तरदायी भोजन पर बल देता है (डब्ल्यूएचओ, 2023)।

5.3 बाल पोषण की स्थिति

डब्ल्यूएचओ -5 में राजस्थान में पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में कद के अनुसार कम वृद्धि 31.8%, लंबाई के अनुसार कम वजन 16.8% तथा आयु के अनुसार कम वजन 27.6% दर्ज हुआ (आईआईपीएस - आईसीएफ, 2021)। छह से 23 माह की आयु में अपर्याप्त एवं कम विविध आहार ऊर्जा तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को प्रभावित कर सकता है (डब्ल्यूएचओ, 2023a)।

5.4 ग्रामीण एवं क्षेत्रीय संदर्भ

एनएफएचएस-5 में कम-से-कम चार प्रसवपूर्व जाँच प्राप्त करने वाली महिलाओं का अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों में 53.9% तथा शहरी क्षेत्रों में 60.6% था (आईआईपीएस - आईसीएफ, 2021)। यह स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग में असमानता का संकेत देता है; हालांकि इससे किसी विशिष्ट स्थानीय क्षेत्र के बारे में प्रत्यक्ष निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

5.5 मातृ जागरूकता एवं स्वास्थ्य सेवाएँ

मातृ ज्ञान स्वास्थ्य सेवाओं और सामुदायिक सहयोग से जुड़ा है। स्वास्थ्यकर्मी परामर्श, प्रसवपूर्व एवं प्रसवोत्तर संपर्क तथा नियमित स्वास्थ्य-सूचना उचित शिशु-आहार व्यवहार को बढ़ावा दे सकते हैं। अतः पोषण कार्यक्रमों में निरंतर परामर्श और व्यवहार परिवर्तन आवश्यक हैं।

5.6 समेकित विश्लेषण

द्वितीयक साक्ष्य तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ दर्शाते हैं—स्तनपान में सुधार, पूरक आहार की अपर्याप्तता और बाल कुपोषण की निरंतर चुनौती।

अतः शिशु पोषण को केवल मातृ ज्ञान से नहीं, बल्कि ज्ञान, व्यवहार, स्वास्थ्य-सेवा उपयोग तथा पारिवारिक-सामाजिक परिस्थितियों के संयुक्त संदर्भ में समझना आवश्यक है (डब्ल्यूएचओ, 2023)।

6. चर्चा

उपलब्ध द्वितीयक साक्ष्य बताते हैं कि मातृ जागरूकता और शिशु पोषण पर परिवार, सामाजिक परिवेश, स्वास्थ्य सेवाएँ तथा परामर्श का संयुक्त प्रभाव पड़ता है (किशोर एट अल., 2009; गर्ग एट अल., 2010)। स्तनपान में सुधार के बावजूद छह माह के बाद उपयुक्त पूरक आहार और स्तनपान की निरंतरता आवश्यक है (आईआईपीएस और आईसीएफ, 2021; डब्ल्यूएचओ, 2023ए, 2023बी)।

पूरक आहार की पर्याप्तता, विविधता, आवृत्ति, सुरक्षित भोजन और उत्तरदायी भोजन मातृ ज्ञान के साथ आर्थिक स्थिति, खाद्य उपलब्धता, पारिवारिक परंपराओं और स्वास्थ्य परामर्श से भी प्रभावित होते हैं। अतः ज्ञान और व्यवहार समान नहीं हैं। सामाजिक मान्यताओं एवं पारिवारिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निरंतर व्यवहार-केंद्रित पोषण शिक्षा आवश्यक है।

स्वास्थ्यकर्मियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। आशा एवं आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं द्वारा परिस्थिति-अनुकूल और निरंतर पोषण मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जाना उपयोगी होगा। शिक्षा, आय, खाद्य सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता परस्पर जुड़ी हैं। इसलिए पोषण कार्यक्रमों में जानकारी के साथ स्थानीय खाद्य संसाधन, स्वास्थ्य सेवाएँ और सामाजिक सहयोग भी शामिल होना चाहिए।

राज्य-स्तरीय आँकड़ों को किसी विशिष्ट क्षेत्र की प्रत्यक्ष स्थिति नहीं माना जा सकता; स्थानीय निष्कर्षों के लिए प्राथमिक आँकड़े आवश्यक होंगे। समग्रतः शिशु पोषण को ज्ञान, व्यवहार, पारिवारिक परिवेश और स्वास्थ्य-सेवा सहयोग के संयुक्त संदर्भ में समझना चाहिए तथा स्तनपान, पूरक आहार, आहार विविधता, उत्तरदायी भोजन, सुरक्षित भोजन और स्वच्छता को एकीकृत रूप से महत्व देना चाहिए।

7. प्रमुख निष्कर्ष

उपलब्ध राष्ट्रीय सर्वेक्षणों, पूर्व अध्ययनों तथा पोषण संबंधी दिशानिर्देशों के समेकित विश्लेषण से निम्न प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

1. स्तनपान संबंधी व्यवहार में सुधार हुआ है। राजस्थान में जन्म के एक घंटे के भीतर स्तनपान तथा छह माह तक केवल स्तनपान में एनएफएचएस-4 से एनएफएचएस-5 के बीच वृद्धि हुई (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज आईआईपीएस और आईसीएफ, 2021)।

2. पूरक आहार अभी भी प्रमुख चुनौती है। इसकी पर्याप्तता, गुणवत्ता एवं विविधता में सुधार आवश्यक है (आईआईपीएस और आईसीएफ, 2021)।

3. मातृ ज्ञान और व्यवहार में अंतर पाया जा सकता है। जानकारी होना अनुशंसित व्यवहार की गारंटी नहीं देता (किशोर एट अल॰, 2009; गर्ग एट अल., 2010)।

4. शिक्षा एवं सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं। मातृ शिक्षा, आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच पोषण व्यवहार से जुड़ी हैं (सेठ एट अल., 1998)।

5. स्वास्थ्यकर्मियों का परामर्श महत्वपूर्ण है। नियमित एवं व्यावहारिक परामर्श जागरूकता को व्यवहार में बदलने में सहायक हो सकता है (डब्ल्यूएचओ, 2023ए)।

6. शिशु पोषण बहुआयामी है। स्तनपान, पूरक आहार, आहार विविधता, पर्याप्तता, स्वच्छता एवं उत्तरदायी भोजन को साथ देखना आवश्यक है (डब्ल्यूएचओ, 2023इ)।

7. बाल कुपोषण अभी भी गंभीर चुनौती है। एनएफएचएस-5 में अल्पविकसित वृद्धि, क्षीणता एवं कम वजन की समस्याएँ विद्यमान हैं (आईआईपीएस - आईसीएफ, 2021)।

8. पोषण व्यवहार पर सामाजिक परिवेश का प्रभाव रहता है। परिवार, मान्यताएँ, संसाधन एवं स्वास्थ्य सेवाएँ मातृ निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

9. स्थानीय निष्कर्षों के लिए स्थानीय आँकड़े आवश्यक हैं। राष्ट्रीय या राज्य-स्तरीय प्रमाणों से किसी विशिष्ट क्षेत्र की महिलाओं के ज्ञान एवं व्यवहार का प्रत्यक्ष निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

10. पोषण कार्यक्रमों को व्यवहार परिवर्तन पर केंद्रित होना चाहिए। पूरक आहार, आहार विविधता, स्वच्छता एवं उत्तरदायी भोजन पर निरंतर परामर्श आवश्यक है।

8. सुझाव एवं अनुशंसाएँ

उपलब्ध साहित्य एवं पोषण संबंधी दिशानिर्देशों के आधार पर निम्न सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं–

1 मातृ पोषण शिक्षा

गर्भावस्था से प्रारम्भिक बाल्यावस्था तक स्तनपान, पूरक आहार, आहार विविधता एवं सुरक्षित भोजन पर निरंतर परामर्श दिया जाए (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2023a)।

2 पूरक आहार की गुणवत्ता

छह माह बाद पर्याप्त, विविध एवं पौष्टिक पूरक आहार तथा स्थानीय कम-लागत खाद्य पदार्थों पर बल दिया जाए

(डब्ल्यूएचओ, 2023ं; आईसीएमआर-एनआईएन विशेषज्ञ समिति, 2024)।

3 स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की भूमिका

आशा, आंगनवाड़ी एवं अन्य स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को शिशु पोषण पर नियमित प्रशिक्षण दिया जाए (डब्ल्यूएचओ, 2023ं)।

4 परिवार की सहभागिता

पिता, दादा-दादी एवं अन्य प्रमुख देखभालकर्ताओं को पोषण जागरूकता में शामिल किया जाए।

5 टीकाकरण एवं स्वास्थ्य सेवाओं का समन्वय

टीकाकरण, वृद्धि निगरानी, स्वास्थ्य परीक्षण एवं पोषण परामर्श को समन्वित रूप से उपलब्ध कराया जाए।

8.6 स्वच्छता एवं सुरक्षित भोजन

हाथों की स्वच्छता, सुरक्षित पेयजल, भोजन की स्वच्छ तैयारी, भंडारण एवं सुरक्षित भोजन व्यवहार को पोषण शिक्षा में शामिल किया जाए (डब्ल्यूएचओ, 2023a)।

8.7 परिस्थिति-अनुकूल जागरूकता

पोषण संदेश स्थानीय भाषा, खाद्य परंपराओं एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप तथा सहभागितापूर्ण बनाए जाएँ।

8.8 सामाजिक एवं आर्थिक बाधाओं पर ध्यान

आर्थिक स्थिति, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता एवं सामाजिक असमानताओं को ध्यान में रखकर कमजोर परिवारों को लक्षित सहायता दी जाए।

8.9 नियमित निगरानी

बाल पोषण एवं स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच, उपयोग एवं गुणवत्ता की नियमित समीक्षा की जाए।

8.10 स्थानीय स्तर पर आगे के अध्ययन

विभिन्न ग्रामीण समुदायों में प्राथमिक अध्ययन कर मातृ जागरूकता, आहार व्यवहार, स्वास्थ्य सेवाओं एवं पोषण परिणामों के संबंधों का स्थानीय स्तर पर अध्ययन किया जाए।

References

World Health Organization. (2023a). WHO guideline for complementary feeding of infants and young children 6-23 months of age. World Health Organization. https://iris.who.int/bitstream/handle/10665/373358/9789240081864-eng.pdf

World Health Organization. (2023b). Infant and young child feeding. World Health Organization.

International Institute for Population Sciences, & ICF. (2021). National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21: India: Volume I. International Institute for Population Sciences.

ICMR-NIN Expert Committee. (2024). Dietary guidelines for Indians-2024 (2nd ed.). Indian Council of Medical Research-National Institute of Nutrition.

United Nations Children's Fund. (2023). The State of the World's Children 2023: For every child, vaccination. UNICEF.

Saito, K., Korzenik, J. R., Jekel, J. F., & Bhattacharji, S. (1997). A case-control study of maternal knowledge of malnutrition and health-care-seeking attitudes in rural South India. The Yale Journal of Biology and Medicine, 70(2), 149-160. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/9493847/

Nagaraj, A., Yousuf, A., & Ganta, S. (2013). Perception of rural and urban mothers about consumption of targeted fortified products in Jaipur, Rajasthan-India: A cross-sectional study. Health Promotion Perspectives, 3(1), 64-72. https://doi.org/10.5681/hpp.2013.008

World Health Organization. (2017). Interventions for improving complementary feeding practices. World Health Organization.

World Health Organization, & United Nations Children's Fund. (2023). Nurturing young children through responsive feeding: Thematic brief. World Health Organization.

Singh, M. B., Haldiya, K. R., & Lakshminarayana, J. (1997). Infant feeding and weaning practices in some semi-arid rural areas of Rajasthan. Journal of the Indian Medical Association, 95(11), 576-578, 590.

Kishore, M. S. S., Kumar, P., & Aggarwal, A. K. (2009). Breastfeeding knowledge and practices amongst mothers in a rural population of North India: A community-based study. Journal of Tropical Pediatrics, 55(3), 183-188. https://doi.org/10.1093/tropej/fmn110

Garg, R., Deepti, S., Padda, A., & Singh, T. (2010). Breastfeeding knowledge and practices among rural women of Punjab, India: A community-based study. Breastfeeding Medicine, 5(6), 303-307. https://doi.org/10.1089/bfm.2010.0005

Nguyen, P. H., Avula, R., Headey, D., Tran, L. M., Ruel, M. T., & Menon, P. (2018). Progress and inequalities in infant and young child feeding practices in India between 2006 and 2016. Maternal & Child Nutrition, 14(Suppl. 4), e12663. https://doi.org/10.1111/mcn.12663

Johri, M., Subramanian, S. V., Koné, G. K., Dudeja, S., Chandra, D., Minoyan, N., Sylvestre, M.-P., & Pahwa, S. (2016). Maternal health literacy is associated with early childhood nutritional status in India. The Journal of Nutrition, 146(7), 1402-1410. https://doi.org/10.3945/jn.115.226290

Kamble, B. D., Kaur, R., Acharya, B. P., & Gupta, M. (2020). Infant and young child feeding practices among mothers of children aged 6 months-2 years in a rural area of Haryana: A qualitative study. Journal of Family Medicine and Primary Care, 9(7), 3392-3398. https://doi.org/10.4103/jfmpc.jfmpc_164_20

Athavale, P., Hoeft, K., Dalal, R. M., Bondre, A. P., Mukherjee, P., & Sokal-Gutierrez, K. (2020). A qualitative assessment of barriers and facilitators to implementing recommended infant nutrition practices in Mumbai, India. Journal of Health, Population and Nutrition, 39, Article 7. https://doi.org/10.1186/s41043-020-00215-w

Idowu, A. M., Kayode, G. A., & Adekanmbi, V. T. (2022). Factors associated with suboptimal complementary feeding practices among mothers of infants and young children in India. Roczniki Pa?stwowego Zak?adu Higieny, 73(4), 403-411. https://doi.org/10.32394/rpzh.2022.0234

Randhawa, S., Choudhury, M., Choudhary, D. G., Ballala, R., Hegde, S., Barman, P., & Dogra, V. (2024). Influence of mothers' and frontline health workers' knowledge, attitude, and practices on infant and young child feeding and child nutrition: A cross-sectional study in aspirational districts of Assam, India. Frontiers in Nutrition, 11, 1413867. https://doi.org/10.3389/fnut.2024.1413867

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

डॉ. विवेक द्विवेदी के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

ममता कुमारी गोस्वामी
अनुसंधात्री

डॉ. शक्ति कुमार द्विवेदी
शोध निर्देशक
असिस्टेंट प्रोफेसर
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,
हैदराबाद-500 004

हिंदी साहित्य जगत में महान रचनाकारों द्वारा अपने साहित्य में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति के कई उदाहरण हैं। डॉ. विवेक द्विवेदी का साहित्य स्त्री के संघर्ष, उसके अधिकारों और उसकी अस्मिता की आवाज़ है। डॉ. विवेक द्विवेदी महिलाओं के जीवन के दुख और समाज में रहकर भी वह जो अकेलापन सहती है उन पीड़ाओं के लेखक हैं। अपनी रचनाओं में वे सामाजिक व्यवस्था में घुटती हुई महिला का जीवंत वर्णन करते हैं। डॉ. विवेक द्विवेदी महिलाओं की मुक्ति को लेकर हर संभव प्रयास करते हैं। डॉ. विवेक द्विवेदी के कथा साहित्य में स्त्री जीवन के हर पक्ष का जीवंत वर्णन किया गया। डॉ. विवेक द्विवेदी ने अपनी कहानियों के माध्यम से एक नई बात समाज के सम्मुख रखी कि हर व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार जीना चाहता है और यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हर स्त्री-पुरुष अपनी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील है। परंपरागत स्त्री समाज की मान्यताओं का पालन करती है लेकिन आधुनिक स्त्री इन मान्यताओं का पालन तक नहीं करती है जहाँ तक करना चाहती है। ये स्त्रियाँ समाज, परिवार, पति की इच्छाओं से ज्यादा अपनी इच्छाओं को महत्व देती हैं। वह अपना जीवन अपनी तरह से जीना चाहती है।

अपने 'तपिश' उपन्यास में द्विवेदी जी कई महिला पात्रों को जगह दी है - तिरिया (मैडम तुषार), मोना, मालती, कात्यायनी। सभी महिला पात्र हमारे समाज के विभिन्न तबकों से आई महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी 'अलविदा कावेरी' की एक कहानी 'माँ और बाबू जी' में निम्न वर्ग की मैना अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहती है - "नहीं, नहीं छुल्लन भैया। मैं नाराज नहीं हूँ। तूने बहन कहकर आज मेरा सम्मान बढ़ा दिया। .. एक तुम्हीं हो जिसने निगाहों से भी मेरी ओर बुरी नजर से नहीं देखा।"[1] मैना के द्वारा लेखक ने समाज में मानवीय सोच व उनके दृष्टिकोण का चित्रण किया है। कहीं न कहीं मैना हमारे समाज की वास्तविकता को व्यक्त करती है और बचपन से जिस जहर को वह पीती आई है उसकी अब आदि बन चुकी है। इस कारण अब उसे किसी से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन उसके लिए क्या सोचता है और बेफिक्र होकर अपनी ज़िंदगी जीती है।

डॉ. द्विवेदी जी की कहानी 'पहाड़' की पात्र छबीली अपनी पहचान बनाने के लिए हर मुश्किल का सामना करती है। स्वयं मेहनत करती है और साथ ही भाई की शिक्षा की भी चिंता करती है। अशिक्षा से ग्रस्त समाज से खुद को बचाने के लिए छबीली शहर जाकर पढ़ने का निर्णय लेती है और अपने पिता के जीवन के संघर्ष को दूर करने का हर भरसक प्रयास करती है। छबीली पहाड़ जैसी आर्थिक संघर्ष से जूझते हुए संघ लोक सेवा की परीक्षा पास कर पिता और पूरे गाँव का नाम

रोशन करती है। मणिपुरी की बेटी छबीली पिता के आर्थिक संघर्ष को बहुत ही अच्छे से समझती है तथा यह भी समझती है कि बिना शिक्षा के इस दुनिया में कुछ भी पाना संभव नहीं है। वह कलेक्टर बन समाज के उस वर्ग का मुँह बंद करने का कार्य करती है जिनके अनुसार स्त्री केवल घर के काम करने के लिए पैदा हुई है। पहाड़ जैसी कठिन एवं विपरीत परिस्थितियों से लड़कर आखिर वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ही लेती है। छबीली के माध्यम से लेखक स्त्री के संघर्ष की व्याख्या करते हैं तथा उनमें सशक्तिकरण का बीज बोते हैं। अपनी अस्मिता को बचाने के लिए 'पीड़िता' कहानी की सुगंधा अपनी इज्ज़त को बचाने की लड़ाई अंत तक लड़ती है। सुगंधा के द्वारा रचनाकार ने दर्शाया कि समाज में स्त्री अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने का दम रखती है। अपनी इज़्ज़त के लिए सुगंधा विरोधी और ताकतवर लोगों से भी भीड जाती है ताकि वह अपने और अपने पति के सम्मान की रक्षा कर सके। उसके लिए उसका आत्मसम्मान ही उसकी सबसे बड़ी पूंजी है जिसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है।

स्त्री अस्मिता के संदर्भ को द्विवेदी जी बड़ी ही बारीकी से व्यक्त करते हैं। 'मांडवी' कहानी में मांडवी समाज में महिलाओं की स्थिति पर दुख व्यक्त करते हुए अपनी दासी से कहती है - ''नहीं स्वामिनी, मैं यह सब नहीं सोच रही हूँ। मैं तो यह सोच रही हूँ कि औरत चाहे झोपड़ी की हो या महल की उसकी गति एक सी ही है।"[2] स्त्री सम्पन्न अभिजात्य घर की हो या गरीब घर की परंतु उसकी स्थिति हमारे समाज में एक सी ही रहती है। धन प्रतिष्ठा या पद उसकी स्थिति में विशेष कोई परिवर्तन नहीं कर पाते है। 'कर्णभार्या' कहानी एक पौराणिक कहानी है जिसमें द्विवेदी जी ने कंचन के रूप में स्त्री का एक अलग ही स्वरूप प्रस्तुत किया है। कंचन अपनी स्वच्छंद विचारों से कर्ण को भी प्रभावित करती है और अपना निर्णय सुनाते हुए बिल्कुल भी संकोच नहीं करती। कंचन के कथन से उसकी तर्कशीलता झलती है। कंचन सिर्फ स्पष्ट वक्ता ही नहीं बल्कि एक साहसी स्त्री का उदाहरण बनकर हमारे सामने उभर कर आती है।

'नेपथ्य में स्त्री' डॉ. विवेक द्विवेदी का नया उपन्यास है। यह भी इसी श्रेणी का है, जो पाठक को जीवन-जगत के यथार्थ और मनोविज्ञान से परिचित कराता है। उपन्यास स्त्री-मन की परतें खोलता है। रचनाकार ने अपनी रचनाओं में स्त्री अस्मिता का उदाहरण देकर समाज को नई दिशा प्रदान की है तथा समाज की अन्य स्त्रियों में चेतना जगाई है। 'उऋण' कहानी में हमारे समाज की रूढ़िवादी सोच का वर्णन द्विवेदी जी ने बड़ी ही प्रासंगिकता के साथ किया है। स्त्री जीवन के यथार्थ को व्यक्त करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं - "वैसे भी हमारे गाँव में औरतों को कभी जीवन संगिनी नहीं समझा गया। उनका दर्जा पाँव की जूती से ज्यादा कभी नहीं रहा। ऊपर से काम और उसके ऊपर सास-ससुर-जेठ, देवर, ननद और पति की मार भी उन्हीं के हिस्से में आती। किसी भी औरत की पिटाई और बैलों की कमर तोड़ जोताई में विशेष फर्क नहीं समझा जाता रहा। कहानी की जानकी स्वयं को समाज की इस रूढ़िवादी सोच का शिकार नहीं बनने देती जहाँ स्त्री को पैर की जूती की संज्ञा दी जाती है और जानवरों जैसा उसके साथ व्यवहार किया जाता है।

'रोहिणी राग' कहानी में श्याम वेश्या रोहिणी से विवाह तो करता है परंतु समाज के लोग और उसके स्वयं के परिवार के द्वारा कदम कदम पर उसे तिरस्कार सहना पड़ता है। "एक औरत, जो बड़े दुलार के साथ पली बढ़ी थी, तुम्हारे घर में आकर खेत काटना भी सीख गई। लिपाई और पोताई और मड़ाई करना सीख गई। सर पर पल्लू रखना सीख गई।"[3] हमारे समाज की यही विडंवना है कि यदि स्त्री मुक्ति या परिवर्तन के लिए कुछ प्रयास करे तो उसे समाज स्वीकार नहीं करता और उसे उसी गड्ढे में पड़े रहने देना चाहता है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण रोहिणी अपनी बातों से हमारे सामने रखती है जो हमारे समाज की सच्चाई को मुखरित करती है।

डॉ. विवेक द्विवेदी ने अपने कथा संसार में 'भोगे हुए यथार्थ' को जीवंतता के साथ चित्रित किया है, जिससे पाठक स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करता है। डॉ. विवेक द्विवेदी की कहानियों में स्त्रियाँ तार्किक दृष्टि से अपना निर्णय लेती है। भावुकता की जगह वह बौद्धिक निर्णय लेती है। ये स्त्रियाँ अन्याय को सहती नहीं बल्कि अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती है, संघर्ष करती है। स्त्री मन की अटल गहराईयों को डॉ. विवेक द्विवेदी ने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। 21वीं सदी में स्त्री की स्थिति में काफी बदलाव आया, अब वह खुद अपने बारे में सोचने लगी। अभी तक स्त्री की ओर से कहा जाता

था किन्तु अब स्त्री स्वयं कहने लगी। वह जागरूक हो गई है। डॉ. विवेक द्विवेदी ने जो पात्र चुने वे अपनी समस्याओं का समाधान खुद ढूँढ़ते हैं, किसी पर निर्भर नहीं रहते हैं। उसी से प्रेरणा लेकर स्वयं को सामान्य मानने वाली स्त्री में भी अभिव्यक्ति की ललक जगी। डॉ. विवेक द्विवेदी का अनुभव संसार अत्यन्त व्यापक है। व्यापकता के साथ-साथ बहुरंगी भी है। गाँव से लेकर शहर तक सभी स्त्रियों के अनुभव उनके पास हैं। उनकी कहानियों में समाज की स्त्री-चेतना को साफ-साफ देखा जा सकता है। उनकी स्त्री-चेतना एक खास दृष्टि, उद्देश्य और मानवीय प्रतिबद्धता को लेकर आगे बढ़ती है। डॉ. विवेक द्विवेदी ने अपनी कहानियों में स्त्री अस्मिता को चित्रित किया है। 'तपिश', 'मसीहा मारा गया' आदि जैसे उपन्यासों में द्विवेदी जी इसे प्रभाव से युक्त नसरीन जैसी पात्र को चित्रित किया है जो इस बात से पूरी तरह वाकिफ है कि स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता और उसकी गरिमा किस बात में है। आधुनिक स्त्री आत्मनिर्भर है। वह अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है। वह परंपरागत मान्यताओं का विरोध करती है उसका स्वर विद्रोही हो गया है। 'हवन' कहानी कुसुम अकेले ही शक्तिशाली ताकतों के खिलाफ खड़ी हो जाती है। वह स्वयं को इस लायक बनाती है कि कोई भी उसका कुछ बिगाड़ ना पाए। लेखक समाज में स्त्री की स्थिति को बताते हुए कहते हैं कि कुसुम किसी की परवाह नहीं करती और अकेले ही एक स्वावलंबी स्त्री की तरफ समाज तथा स्त्री के शोषण के खिलाफ न सिर्फ आवाज़ उठाती है बल्कि समाज को जोड़ने का भी कार्य करती है।

विवेक द्विवेदी जी का जीवन एवं साहित्य पाठक के लिए एक प्रेरणा है। उनका साहित्य पढ़ने वाला पाठक अपनी अनुभूतियों को उनकी रचनाओं में पाता है। जिससे वह तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उनके सभी पात्र समाज से लड़ना जानते हैं, संघर्ष करना जानते हैं, जूझते लड़ते कभी वे लहुलुहान होते हैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति करते हैं। विवेक द्विवेदी जी की कहानियों ने कामकाजी स्त्री के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संघर्षो को रेखांकित किया है। विवेक द्विवेदी जी की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि इन्होंने भोगे हुए यथार्थ को जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है। पुरुष होने के नाते स्त्री की पीड़ा से अवगत थे। यही कारण है कि विवेक द्विवेदी जी अपने आरंभिक लेखन से लेकर आज तक बराबर सम्मानित होते रहे हैं और भविष्य में भी सम्मानित होते रहेंगे।

सन्दर्भ

1. डॉ. विवेक द्विवेदी, अलविदा कावेरी - माँ और बाबू जी, चिंतन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2023, पृ. सं. 79
2. डॉ. विवेक द्विवेदी, आदमी और जानवर - मांडवी, अनुभव पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2012, पृ. सं. 73
3. डॉ. विवेक द्विवेदी, रोहिणी राग, नमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2019, पृ. सं 19

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

ਨਾਰੀਵਾਦ - ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਬਰਾਬਰੀ ਦੀ ਨੀਂਹ

ਪੇਪਰ ਵੱਲੋਂ :- ਡਾ. ਜਸਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ
(ਪੀ. ਐੱਚ.ਡੀ ਪੰਜਾਬੀ)
ਪੰਜਾਬੀ ਅਧਿਆਪਕਾ
ਸ਼ਹਿਰ ਗਿੱਦੜਬਾਹਾ ਜਿਲਾ ਸ਼੍ਰੀ ਮੁਕਤਸਰ ਸਾਹਿਬ , ਪੰਜਾਬ

ਭੂਮਿਕਾ

ਨਾਰੀਵਾਦ ਸ਼ਬਦ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਦੇ "Feminism" ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਰੂਪ ਹੈ। ਨਾਰੀ + ਵਾਦ = ਨਾਰੀ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਅਤੇ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਵਿਚਾਰ। ਨਾਰੀਵਾਦ ਦਾ ਮਤਲਬ ਇਹ ਨਹੀਂ ਕਿ ਔਰਤ ਮਰਦ ਤੋਂ ਉੱਚੀ ਹੈ, ਬਲਕਿ ਇਸਦਾ ਮਤਲਬ ਹੈ ਕਿ ਮਰਦ ਅਤੇ ਔਰਤ ਸਮਾਜ, ਕਾਨੂੰਨ, ਸਿੱਖਿਆ, ਰੁਜ਼ਗਾਰ ਅਤੇ ਘਰ ਵਿੱਚ ਬਰਾਬਰ ਹਨ।

ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਸਾਲਾਂ ਤੋਂ ਔਰਤ ਨੂੰ "ਘਰ ਦੀ ਚਾਰਦੀਵਾਰੀ" ਤੱਕ ਸੀਮਤ ਰੱਖਿਆ ਗਿਆ। ਉਸਨੂੰ ਪੜ੍ਹਨ, ਕੰਮ ਕਰਨ, ਫੈਸਲਾ ਲੈਣ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰ ਨਹੀਂ ਸਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇਸ ਸੋਚ ਨੂੰ ਚੁਣੌਤੀ ਦਿੱਤੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਕਿਹਾ "ਸੋ ਕਿਉਂ ਮੰਦਾ ਆਖੀਐ ਜਿਤੁ ਜੰਮੈ ਰਾਜਾਨ"। ਭਾਵ ਜਿਸ ਔਰਤ ਤੋਂ ਰਾਜੇ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਉਸਨੂੰ ਮਾੜਾ ਕਿਵੇਂ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਧਰਤੀ ਤੇ ਨਾਰੀਵਾਦ ਦੇ ਬੀਜ ਬਹੁਤ ਪੁਰਾਣੇ ਹਨ।

ਨਾਰੀਵਾਦ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਅਤੇ ਲਹਿਰਾਂ

ਦੁਨੀਆ ਭਰ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀਵਾਦ 3 ਮੁੱਖ ਲਹਿਰਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਦੀ ਲੰਘਿਆ ਹੈ।

ਪਹਿਲੀ ਲਹਿਰ – 19ਵੀਂ ਸਦੀ: ਇਸਦਾ ਮੁੱਖ ਮੁੱਦਾ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਵੋਟ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਦਿਵਾਉਣਾ ਸੀ। ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਇਹ ਲਹਿਰ ਸਮਾਜ ਸੁਧਾਰ ਨਾਲ ਜੁੜੀ ਸੀ। ਰਾਜਾ ਰਾਮ ਮੋਹਨ ਰਾਏ ਨੇ ਸਤੀ ਪ੍ਰਥਾ ਦੇ ਖਿਲਾਫ, ਅਤੇ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਵਿੱਦਿਆਸਾਗਰ ਨੇ ਵਿਧਵਾ ਵਿਆਹ ਲਈ ਲੜਾਈ ਲੜੀ।

ਦੂਜੀ ਲਹਿਰ – 1960 ਤੋਂ 1980: ਇਸ ਵਿੱਚ ਔਰਤਾਂ ਨੇ ਘਰ, ਨੌਕਰੀ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਬਰਾਬਰੀ ਦੀ ਮੰਗ ਕੀਤੀ। "ਮੇਰਾ ਸਰੀਰ, ਮੇਰਾ ਫੈਸਲਾ" ਵਰਗੇ ਨਾਅਰੇ ਇਸੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਹਨ। ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਦਾਜ ਵਿਰੋਧੀ ਕਾਨੂੰਨ ਅਤੇ ਘਰੇਲੂ ਹਿੰਸਾ ਕਾਨੂੰਨ ਇਸੇ ਦਾ ਨਤੀਜਾ ਹਨ।

ਤੀਜੀ ਲਹਿਰ – 1990 ਤੋਂ ਹੁਣ ਤੱਕ: ਇਹ ਲਹਿਰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਸਿੱਖਿਆ ਨਾਲ ਜੁੜੀ ਹੈ। ਹੁਣ ਗੱਲ ਸਿਰਫ ਕਾਨੂੰਨ ਦੀ ਨਹੀਂ, ਸੋਚ ਬਦਲਣ ਦੀ ਹੈ। #MeToo ਮੂਵਮੈਂਟ, ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਫੌਜ, ਪਾਇਲਟ, ਖੇਡਾਂ ਵਿੱਚ ਆਉਣਾ ਇਸਦੀ ਮਿਸਾਲ ਹੈ।

ਭਾਰਤ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਹਾਲਤ*

ਆਜ਼ਾਦੀ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਸੰਵਿਧਾਨ ਨੇ ਔਰਤ-ਮਰਦ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰ ਦਿੱਤੇ। ਪਰ ਜ਼ਮੀਨੀ ਹਕੀਕਤ ਅਜੇ ਵੱਖਰੀ ਹੈ।

ਚੁਣੌਤੀਆਂ:

1. ਸਿੱਖਿਆ*: ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਲੜਕੀਆਂ ਦੀ ਸਕੂਲ ਛੱਡਣ ਦੀ ਦਰ ਅਜੇ ਵੀ ਚਿੰਤਾ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਹੈ। ਪਿੰਡਾਂ ਵਿੱਚ 10ਵੀਂ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਨੂੰ ਅੱਗੇ ਨਹੀਂ ਪੜ੍ਹਨ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ।

2. ਲਿੰਗ ਅਨੁਪਾਤ*: ਭਰੂਣ ਹੱਤਿਆ ਕਾਰਨ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਲਿੰਗ ਅਨੁਪਾਤ ਸਭ ਤੋਂ ਮਾੜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। 1000 ਮੁੰਡਿਆਂ ਪਿੱਛੇ ਸਿਰਫ 896 ਕੁੜੀਆਂ ਹਨ।

3. ਰੁਜ਼ਗਾਰ*: ਕੰਮ ਵਾਲੀ ਥਾਂ ਤੇ ਤਨਖਾਹ ਵਿੱਚ ਭੇਦਭਾਵ, ਅਤੇ "ਇਹ ਕੰਮ ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਨਹੀਂ" ਵਾਲੀ ਸੋਚ।

4. ਘਰੇਲੂ ਹਿੰਸਾ ਅਤੇ ਦਾਜ*: NCRB ਦੇ ਅੰਕੜਿਆਂ ਅਨੁਸਾਰ ਹਰ ਰੋਜ਼ ਸੈਂਕੜੇ ਔਰਤਾਂ ਘਰੇਲੂ ਹਿੰਸਾ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ।

5. ਰਾਜਨੀਤੀ*: ਪੰਚਾਇਤ ਵਿੱਚ 50% ਰਾਖਵਾਂਕਰਨ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਅਜੇ ਵੀ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਔਰਤ ਸਰਪੰਚ "ਰਬੜ ਸਟੈਂਪ" ਬਣ ਕੇ ਰਹਿ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ।

ਨਾਰੀਵਾਦ ਦੀ ਲੋੜ ਅਤੇ ਫਾਇਦੇ*

ਕੁਝ ਲੋਕ ਸੋਚਦੇ ਹਨ ਕਿ ਨਾਰੀਵਾਦ ਪਰਿਵਾਰ ਤੋੜਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਅਸਲ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀਵਾਦ ਪਰਿਵਾਰ ਨੂੰ ਮਜ਼ਬੂਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਨਾਰੀਵਾਦ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਵੱਖਰੇ ਵੱਖਰੇ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਵੱਖਰੀਆਂ ਵੱਖਰੀਆਂ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਹਨ ਪਰ ਮੈਂ ਇਹ ਕਹਿਣਾ ਚਾਹਾਂਗੀ ਕਿ ਨਾਰੀਵਾਦ ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਬਰਾਬਰੀ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ

1. ਦੇਸ਼ ਦੀ ਆਰਥਿਕਤਾ*: ਜਦੋਂ ਔਰਤ ਕੰਮ ਕਰੇਗੀ ਤਾਂ ਦੇਸ਼ ਦੀ GDP ਵਧੇਗੀ। IMF ਦਾ ਕਹਿਣਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰ ਮੌਕੇ ਮਿਲਣ ਤਾਂ ਭਾਰਤ ਦੀ GDP 27% ਤੱਕ ਵਧ ਸਕਦੀ ਹੈ।

2. ਪੜ੍ਹਿਆ ਪਰਿਵਾਰ*: ਇੱਕ ਪੜ੍ਹੀ-ਲਿਖੀ ਮਾਂ 2 ਪੀੜ੍ਹੀਆਂ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਇੱਕ ਘਰ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਔਰਤ ਪਰ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਪੂਰਾ ਪਰਿਵਾਰ ਪੜ੍ਹ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

3. ਸਮਾਜਿਕ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦਾ ਖਾਤਮਾ*: ਜਦੋਂ ਔਰਤ ਆਰਥਿਕ ਤੌਰ ਤੇ ਆਜ਼ਾਦ ਹੋਵੇਗੀ ਤਾਂ ਉਹ ਦਾਜ ਅਤੇ ਘਰੇਲੂ ਹਿੰਸਾ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰ ਸਕੇਗੀ। ਇੰਨਾ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰਨ ਲਈ ਇੱਕ ਔਰਤ ਦਾ ਜਾਗਰੂਕ ਅਤੇ ਆਤਮ ਨਿਰਭਰ ਹੋਣਾ ਬਹੁਤ ਜਰੂਰੀ ਹੈ।

4. ਨਵੇਂ ਰੋਲ ਮਾਡਲ*: ਕਿਰਨ ਬੇਦੀ, ਕਲਪਨਾ ਚਾਵਲਾ, ਪੀ.ਟੀ. ਉਸ਼ਾ, ਹਰਮਨਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ ਵਰਗੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਨੌਜਵਾਨ ਕੁੜੀਆਂ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਨਾ ਹਨ, ਜੇਕਰ ਇੱਕ ਔਰਤ ਚਾਹੇ ਉਹ ਆਪਣੀ ਮਿਹਨਤ, ਲਗਨ ਅਤੇ ਸੱਚੇ- ਉੱਚੇ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਅਤੇ ਜਜ਼ਬੇ ਸਦਕਾ ਕਿਸੇ ਵੀ ਮੰਜ਼ਿਲ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚ ਸਕਦੀ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਨਾਰੀਵਾਦ

ਸਾਡੇ ਲੋਕ ਗੀਤਾਂ, ਵਾਰਾਂ ਅਤੇ ਗੁਰਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਤਾਕਤ ਦੀ ਗੱਲ ਹੈ। ਮਾਈ ਭਾਗੋ, ਸੋਹਣੀ-ਮਹੀਵਾਲ, ਹੀਰ-ਰਾਂਝਾ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਔਰਤ ਦੇ ਪਿਆਰ ਅਤੇ ਹਿੰਮਤ ਨੂੰ ਦਿਖਾਉਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਅੱਜ ਪੰਜਾਬ ਦੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਖੇਤੀ, ਖੇਡਾਂ ਅਤੇ NRI ਬਣ ਕੇ ਦੇਸ਼ ਦਾ ਨਾਮ ਰੌਸ਼ਨ ਕਰ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਪਰ ਨਾਲ ਹੀ "ਕੁੜੀ ਪਰਾਈ ਧਨ" ਅਤੇ "ਚੁੱਲ੍ਹਾ-ਚੌਕਾ" ਵਾਲੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਵੀ ਤੋੜਨਾ ਪਵੇਗਾ।

: ਨਾਰੀਵਾਦ ਤੇ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ

Feminism and Women Consciousness

"ਨਾਰੀਵਾਦ" ਇੱਕ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਹੈ ਜੋ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ-ਮਰਦ ਦੀ ਬਰਾਬਰੀ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਪਰ "ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ" ਉਦੋਂ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਜਦੋਂ ਇੱਕ ਔਰਤ ਖੁਦ ਆਪਣੀ ਹਾਲਤ ਨੂੰ ਸਮਝਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਲਈ ਆਵਾਜ਼ ਉਠਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਨਾਰੀਵਾਦ ਬਾਹਰੋਂ ਮਿਲਣ ਵਾਲਾ ਸਮਰਥਨ ਹੈ, ਅਤੇ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਅੰਦਰੋਂ ਜਾਗਣ ਵਾਲੀ ਅੱਗ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਤੱਕ ਔਰਤ ਖੁਦ ਚੇਤਨ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗੀ, ਉਦੋਂ ਤੱਕ ਕਾਨੂੰਨ ਅਤੇ ਅੰਦੋਲਨ ਵੀ ਅਧੂਰੇ ਰਹਿਣਗੇ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ 500 ਸਾਲ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਬੀਜ ਬੀਜ ਦਿੱਤਾ ਸੀ: _"ਸੋ ਕਿਉ ਮੰਦਾ ਆਖੀਐ ਜਿਤੁ ਜੰਮੈ ਰਾਜਾਨ"_।

2. ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ*

ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਧਰਤੀ ਤੇ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦੀਆਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਉਦਾਹਰਣਾਂ ਮਿਲਦੀਆਂ ਹਨ।

1. ਭਗਤੀ ਕਾਲ*: ਮੀਰਾਬਾਈ, ਸਹਿਜੋ ਬਾਈ ਨੇ ਧਰਮ ਦੇ ਨਾਮ ਤੇ ਲੱਗੀਆਂ ਪਾਬੰਦੀਆਂ ਨੂੰ ਤੋੜਿਆ।

2. ਇਤਿਹਾਸ*: ਮਾਈ ਭਾਗੋ ਨੇ 40 ਮੁਗਲਾਂ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਹਥਿਆਰ ਚੁੱਕੇ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਸੀ – "ਅਸੀਂ ਕਮਜ਼ੋਰ ਨਹੀਂ"।

3. ਸਾਹਿਤ*: ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ ਪ੍ਰੀਤਮ ਦੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ "ਸੁਨੇਹੇ" ਅਤੇ ਨਾਵਲ "ਸਾਗਰ ਅਤੇ ਸਿਪੀਆਂ" ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੇ ਮਨ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਅਤੇ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੀ ਤੜਪ ਦਿਖਦੀ ਹੈ।

4. ਲੋਕ ਗੀਤ*: ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਦੀ ਹੀਰ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ – "ਰੱਬਾ ਮੈਨੂੰ ਰਾਂਝਾ ਦੇ ਦੇ, ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਹੋਰ ਦੀ ਨਹੀਂ ਹੋਣਾ"। ਇਹ ਫੈਸਲਾ ਲੈਣ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਹੈ।

. ਅੱਜ ਦੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦੀ ਲੋੜ*

ਅੱਜ ਕਾਨੂੰਨ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਹਨ ਪਰ ਸਮੱਸਿਆ ਸੋਚ ਦੀ ਹੈ।

• ਸਿੱਖਿਆ ਵਿੱਚ ਚੇਤਨਾ*: ਜਦੋਂ ਇੱਕ ਕੁੜੀ 10ਵੀਂ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ "ਮੈਂ ਅੱਗੇ ਪੜ੍ਹਾਂਗੀ", ਇਹੀ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਹੈ।

• ਆਰਥਿਕ ਚੇਤਨਾ*: ਪਿੰਡ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਜਦੋਂ Self Help Group ਬਣਾ ਕੇ ਅਚਾਰ, ਪਾਪੜ ਦਾ ਕਾਰੋਬਾਰ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ, ਤਾਂ ਉਹ ਕਿਸੇ ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦੀਆਂ।

• ਸਮਾਜਿਕ ਚੇਤਨਾ*: ਦਾਜ ਮੰਗਣ ਤੇ "ਨਾਂਹ" ਕਹਿਣਾ, ਘਰੇਲੂ ਹਿੰਸਾ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਪੁਲਿਸ ਵਿੱਚ ਸ਼ਿਕਾਇਤ ਕਰਨਾ – ਇਹ ਸਭ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਕਾਰਨ ਹੀ ਸੰਭਵ ਹੈ।

ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਰਾਹ ਵਿੱਚ ਰੁਕਾਵਟਾਂ*

1. ਪਰਿਵਾਰਕ ਦਬਾਅ*: "ਲੋਕ ਕੀ ਕਹਿਣਗੇ" ਵਾਲੀ ਸੋਚ ਧਾਰਨ ਕਰਨੀ ।

2. ਸਿੱਖਿਆ ਦੀ ਘਾਟ*: ਜਾਣਕਾਰੀ ਨਾ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਦਾ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਹੋਣਾ।

3. ਆਰਥਿਕ ਨਿਰਭਰਤਾ*: ਆਪਣੀ ਕਮਾਈ ਨਾ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਫੈਸਲਾ ਨਹੀਂ ਲੈ ਸਕਦੀ ।

4. ਮੀਡੀਆ*: ਟੀਵੀ ਤੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਹਮੇਸ਼ਾ ਰੋਣ-ਧੋਣ ਵਾਲੀ ਦਿਖਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਕਿਵੇਂ ਵਧਾਇਆ ਜਾਵੇ*

1. ਘਰ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ*: ਮਾਂ-ਬਾਪ ਕੁੜੀ ਅਤੇ ਮੁੰਡੇ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰ ਪੜ੍ਹਾਉਣ ਅਤੇ ਫੈਸਲੇ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਲ ਕਰਨ।

2. ਸਕੂਲ-ਕਾਲਜ*: Gender Studies ਅਤੇ Self Defence ਦੇ ਕੋਰਸ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੋਣ।

3. ਰੋਲ ਮਾਡਲ*: ਕਿਰਨ ਬੇਦੀ, ਬਬੀਤਾ ਫੋਗਾਟ, ਹਰਮਨਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ ਵਰਗੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਹਰ ਘਰ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਣੀਆਂ ਚਾਹੀਦੀਆਂ ਹਨ।

4. ਕਾਨੂੰਨੀ ਜਾਗਰੂਕਤਾ*: 181 Women Helpline, One Stop Centre ਬਾਰੇ ਹਰ ਔਰਤ ਨੂੰ ਪਤਾ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ।

. ਸਿੱਟਾ

ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਅਸੀਂ ਇਹ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਨਾਰੀਵਾਦ ਕਿਸੇ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਲੜਾਈ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਇਹ ਇਨਸਾਨੀਅਤ ਦੀ ਲੜਾਈ ਹੈ। ਜਿਸ ਦਿਨ ਇੱਕ ਬਾਪ ਆਪਣੀ ਕੁੜੀ ਨੂੰ ਕਹੇਗਾ "ਬੇਟਾ ਜੋ ਮਰਜ਼ੀ ਬਣ" ਅਤੇ ਇੱਕ ਪਤੀ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰ ਦਾ ਸਾਥੀ ਸਮਝੇਗਾ, ਉਸ ਦਿਨ ਸਮਝੋ ਅਸਲੀ ਨਾਰੀਵਾਦ ਆ ਗਿਆ। ਨਾਰੀਵਾਦ ਕਿਸੇ ਇੱਕ ਲਿੰਗ ਦੀ ਜਿੱਤ ਨਹੀਂ, ਬਲਕਿ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੀ ਜਿੱਤ ਹੈ। ਜਿਸ ਦਿਨ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਹਰ ਘਰ ਆਪਣੀ ਧੀ ਨੂੰ "ਪਰਾਈ ਧਨ" ਦੀ ਬਜਾਏ "ਘਰ ਦੀ ਸ਼ਾਨ" ਸਮਝਣ ਲੱਗ ਜਾਵੇਗਾ, ਉਸ ਦਿਨ ਸੱਚਾ ਵਿਕਾਸ ਹੋਵੇਗਾ। ਜਿਵੇਂ ਗੁਰਬਾਣੀ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ: "ਏਕ ਨੂਰ ਤੇ ਸਭ ਜਗ ਉਪਜਿਆ, ਕੌਣ ਭਲੇ ਕੌਣ ਮੰਦੇ"।

ਜਿਸ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਸੁਰੱਖਿਅਤ ਅਤੇ ਆਜ਼ਾਦ ਹੋਵੇ, ਉਹੀ ਸਮਾਜ ਅੱਗੇ ਵਧਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਸਾਨੂੰ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਮਿਲ ਕੇ ਇੱਕ ਅਜਿਹਾ ਪੰਜਾਬ ਅਤੇ ਭਾਰਤ ਬਣਾਉਣਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ "ਧੀ" ਸ਼ਬਦ ਮਾਣ ਨਾਲ ਲਿਆ ਜਾਵੇ।

"ਯਤਰ ਨਾਰੀਅਸਤੁ ਪੂਜਯੰਤੇ, ਰਮੰਤੇ ਤਤਰ ਦੇਵਤਾ"*

ਜਿੱਥੇ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਪੂਜਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਦੇਵਤੇ ਵੀ ਵਸਦੇ ਹਨ।

ਹਵਾਲੇ ਅਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ

Tong, R. _Feminist Thought: A More Comprehensive Introduction_. Westview Press, 2018.

Census of India. _Sex Ratio Data_. Government of India, 2011.

NFHS-5. _National Family Health Survey Report for Punjab_. 2019-2021.

NCRB. _Crime in India Report_. Ministry of Home Affairs, 2022.

ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ 473.[1][2][3][4][5]

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Patriarchal Restrictions and the Emergence of Female Impersonation in Haryana's Saang Folk Theatre: The Intensification of Sociocultural Constraints from the Manusmriti to the British Colonial Period

Nitin
Phd Scholar
Department Of Indian Theatre, Panjab University, Chandigarh

Introduction

Female impersonation refers to the practice of male actors performing female roles. This convention has been a longstanding feature of traditional Indian theatre, extending across regions from North to South India. For instance, Jivan Pani noted:

> Of all the various forms of traditional theatre, the following are the major ones that adopt female impersonation: Krishnattam, Kathakali, Rasaleela, Ramaleela, Ankiya Nat, Yakshagana, Therukoothu, Veethinatakam, Swang, Nautanki, Khayal, Bhavai, Bhand Jashan, Jatra, Chhau, etc. (37)

Women were not permitted to perform on the saang stage or even to attend performances as members of the audience. Consequently, in their absence, male performers—and performers of genders other than women—impersonated female characters. This practice raises several important questions: Why did the convention of female impersonation emerge in saang ? What restrictions governed women's participation in theatrical performances and public spaces? If such restrictions existed, what socio-cultural forces produced them?

This paper contends that the exclusion of women from the saang stage, shaped by social customs and cultural norms, led to the emergence of female impersonation as a theatrical convention in Haryana. It further argues that the subordination of women was initially rooted in ancient Brahmanical texts such as the Manusmriti and was later weaponized, codified, and intensified by external political regimes. Over time, female impersonation gradually developed into an established artistic practice, in which male performers portraying female characters became a recognized aspect of theatrical skill.

By examining the factors underlying women's exclusion, this paper offers a framework for understanding gender and feminist concerns in folk theatre while also highlighting the feudal and patriarchal structures embedded in Haryana's *saang* folk theatre. The following section examines

which social norms affected women’s participation in Haryana’s saang tradition, as well as the origins of the norms and stigmas that led to the prohibition of women’s participation in this folk-theatre form. It addresses these critical questions through a detailed analysis.

Patriarchal Restrictions and the Emergence of Female Impersonation in Haryana’s Saang Folk Theatre

The interview data indicate that the convention of female impersonation has existed in saang since its inception and emerged in response to restrictions on women’s participation. This was established through personal interviews conducted by the author with Saang scholars, performers, and female impersonators between January and February 2026. The findings demonstrate that the centuries-long exclusion of women from theatrical performance made female impersonation an integral feature of Haryana’s saang folk theatre. Because women were not permitted to perform in saang, male performers assumed responsibility for bringing female characters to life

The restriction on women’s public performance that contributed to the convention of female impersonation in Haryana’s saang folk theatre were further shaped by the social, cultural, and political influences associated with successive indigenous and foreign ruling powers, including the Mughal and British regimes. Such influences contributed to the establishment and continuation of norms that excluded women from the saang stage and thereby reinforced the practice of female impersonation.

Evidence suggests that the early Vedic period offered both sexes equally significant religious roles, but women’s status soon declined markedly. Structured around a “caste-stratifying and woman-subordinating axis of purity/pollution,” the Brahmanical Hinduism of the classical period denied women equal education in the sacred texts and independent participation in ritual. The Law of Manu consolidated this tradition, codifying the social and religious rights and obligations specific to each caste and stage of life in a manner that excluded women from access to spiritual and temporal empowerment. According to Manu, women “should never carry out any task independently. As a child, she must remain under her father’s control; as a young woman, under her husband’s; and when her husband is dead, under her sons.” When outlining the path to enlightenment, Manu advocates an ascetic renunciation of sensory pleasures. By accusing women of persistent attachments to worldly things and of the ability to distract even the holiest of men, Manu constructs women as incapable of enlightenment and as impediments to men’s spiritual progress. As ideological strictures reduced women’s function to domestic management and heir production, men sought to protect themselves from pollution by secluding women during menstruation and childbirth. By concealing the biological evidence of what it praised as a woman’s greatest accomplishment, the Brahmanical tradition erected a containment field around the female body, which it viewed as extremely powerful and potentially dangerous. (Solomon 42-43)

However, an important contradiction emerges in ancient Indian history, particularly in the differing perspectives of the *Manusmriti* and the *Natyashastra*. These two texts reveal an ambivalent attitude toward the status of women performers in India. As in the early Vedic period, ancient Indian dramatic traditions and cultural practices regarded women as respected and significant participants in the performing arts. The *Natyashastra* specifically identifies various female character types, known as the “Ashtanayika,” and provides an extensive discussion of their modes of representation and

performance. (Rangacharya 153-57). The inclusion of these roles indicates that the *Natyashastra* approached women from psychological and emotional perspectives, rather than solely through the moralistic framework evident in the *Manusmriti*.

Several scholars argue that women enjoyed a relatively elevated status in ancient Indian society. Their roles were significant and widely recognized, as repeatedly documented in ancient Sanskrit texts, dramas, the Vedas, and the Upanishads. For instance, Swapna Rani Das notes:

> In ancient India, the role of women was quite considerable and widely recognized. Women made their mark in all walks of life. They supported their husbands in managing the household, offered timely advice, and provided comprehensive cooperation in protecting the interests of the family. They also took up arms and fought alongside men to defend their countries. Even in ancient times, many women ruled their kingdoms with exceptional competence and courage. During the reign of Harshavardhana, his sister Rajashri, following the death of her husband, participated in matters of state alongside her brothers, contributing with concern and wisdom. In the Rajput kingdoms, women trained talented and intelligent members of the royal family. In the tenth century, Sughandha and Didda ruled their states effectively. Many women were employed in royal palaces as personal attendants, doorkeepers, and guards. During Harsha's reign, women served in considerable numbers as palace guards. Known as *pratiharis*, they loudly announced the arrival of visitors to the palace. Female attendants also held royal umbrellas, waved the *chauri* before dignitaries as a mark of respect, and served as betel-leaf carriers and flower bearers. (17)

The Manusmriti, however, presents a contrasting perspective. In its effort to establish social order, maintain stability, and regulate female sexuality in order to preserve patrilineal family structures, the text represents anything unpredictable, public, or emotionally expressive—such as public performance—as a potential threat to that order. It explicitly limits the legal protection afforded to performing women, stipulating that the strict penalties governing illicit cross-gender interaction do not apply "to the wives of actors or to women who perform on stage," because such women are treated as inherently compromised. (Jha 8.362). The text further separates elite social status from artistic performance by declaring that a respectable citizen "shall not dance, nor sing, nor play upon musical instruments" in public settings. This tension between the recognition of women's capabilities in historical and cultural accounts and the restrictions imposed by normative texts helps explain the contested position of women in ancient Indian performance traditions. (Jha 4.64). By contrast, alternative aesthetic systems, such as the *Natyashastra*, recognized the psychological depth and functional importance of female performers, reflecting the respected position of women in India's performing arts.

The preceding analysis demonstrates an ambivalent attitude toward the status of women performers in India, as reflected in the contrasting perspectives of the *Natyashastra* and the *Manusmriti*. In ancient India, women participated in theatrical and other performing arts across social contexts, from royal courts to popular cultural settings. Within royal courts, accomplished actresses and dancers often enjoyed considerable prestige, wealth, and influence, thereby challenging the restrictions prescribed by lawmakers in texts such as the *Manusmriti*.

However, what persisted in Saang, and continues to shape it today, is the legalistic framework of the *Manusmriti*, which regarded women's public visibility as a threat to caste purity and patriarchal

control. Long before the structural transformations associated with Islamic courts or the puritanical legislative campaigns of the British colonial regime, normative texts such as the *Manusmriti* had already established a framework of sociopolitical and legal marginalization for female performers.

Marginalisation intensified under Mughal Rule

Several scholars have also assumed that restrictions on women's public performances in India were a legacy of foreign rule. They argued that regional theatrical traditions adopted the convention of female impersonation around the fifteenth and sixteenth centuries as a result of social changes introduced by foreign rulers. For instance, Jivan Pani noted

> Very likely the language-theatres adopted the convention of female impersonation towards the 15th and 16th century. The reason for it can be easily conjectured. During this period the Mughals consolidated their empire in India which necessitated many social changes. Society then, perhaps, could not afford to be as liberal and permissive as it had been earlier. Also new ethical and social values started taking root. They all combined to shut the door of the stage to respectable women. In such an unfavorable social climate many forms of performing arts died out and many were infected with-decadence. (38)

Haryana's *saang* likewise emerged during the fifteenth and sixteenth centuries, alongside other regional theatre traditions. In this respect, Pani's argument offers a plausible explanation for the historical circumstances surrounding its development. The consolidation of Mughal rule was accompanied by significant changes in social organization, cultural practices, and ethical values, which also affected northern India, including Haryana. As a region situated in North India, Haryana was consequently influenced by these broader transformations. The establishment of external political authority often leaves enduring imprints on a society's cultural and institutional life, and the Mughal presence appears to have contributed to such changes in Haryana. These transformations affected women's social, economic, and political status and helped intensify the restrictions imposed on their public participation. Within this context, the exclusion of women from theatrical performance and the subsequent reliance on female impersonation in *saang* can be understood as part of a broader process through which foreign rule reinforced the marginalization of female performers.

According to Haryana folk-theatre scholar and Saang expert Dr. Anoop Lather,

> This is entirely due to Islamic culture. Our populace had no issue with women performing. There was no mention of such a restriction in our Indian culture, nor was there a ban on women performing. There is only one reason: the Islamic era. During this period, women were abducted and enslaved. This is all a product of Islamic culture. There was no opposition in our public consciousness to women performing. (Lather)

This explanation, however, should be approached critically. It risks reproducing a right-wing political interpretation by attributing the marginalization of women performers primarily to Muslim or Mughal rule, while overlooking the restrictions already embedded in earlier normative frameworks. As discussed above, the Manusmriti demonstrates that patriarchal controls and taboos concerning women's public visibility and participation in performance traditions predated the consolidation of Islamic rule in India. Accordingly, foreign rule should not be understood as the sole or original cause of women's exclusion from theatrical performance. Rather, the changing social, cultural, and ethical

norms associated with successive political regimes appear to have intensified and reshaped pre-existing forms of gendered regulation. This more nuanced interpretation situates the development of female impersonation in saang within a longer history of patriarchal control, rather than explaining it exclusively as a consequence of Muslim or Mughal influence.

The Impact of British Colonial Rule on Women's Status and Performing Communities

Further changes to women's status occurred under British rule. The British administration codified provisions of the *Manusmriti* into rigid statutory Hindu law while also promoting late-Victorian "Anti-Nautch" campaigns. In doing so, it further institutionalized, codified, and intensified a pre-existing ideological framework of stigma. Victorian colonial morality adversely affected the status of women belonging to performing communities in India. The British classified women who performed in public—including courtesans and other female performers—as prostitutes. According to Rekha Pande:

> In medieval times the courtesan was an embodiment of a culture and artistic talents well versed in music and dance. This institution came to an end with British colonial rule and the end of Nawabi patronage. The British divested them of their earnings and forced them into the abysmal ghettoized life of red-light areas, which ultimately resulted in the birth of the Tawaif or prostitute, with all its negative connotations and exploitations. (6)

The British perpetuated Victorian morality in India by implementing laws and regulations similar to those already enforced in Britain. These measures significantly contributed to the decline of women's participation in public performance. One example was the damage inflicted on the dignity and status of tawaifs—professional female performers—by categorizing them alongside ordinary prostitutes. According to Anna Morcom :

> In 1864, the Cantonment Regulations were also passed, making the Lal bazaars within cantonments that catered for British officers a form of legally regulated prostitution. These Regulations also gave the Municipal Committees the right to relocate prostitutes. The Cantonment Regulations and the CDA included Tawaif in the category of 'prostitutes'. As well as the damage to pride and status that came from being grouped together with common prostitutes, Tawaif were also subjected to enforced examinations and treatment for VD. (34-35)

The British government's use of measures such as the Contagious Diseases Acts to associate courtesans and dancing girls with prostitution further undermined their social status. Anna Morcom explains that this association was reinforced through policies intended to protect British officers from venereal disease:

> Since at least the late eighteenth century, lock hospitals had been used to protect British officers from venereal disease by forcibly isolating and treating prostitutes who were considered ill. These practices were subsequently formalized through legislation, including the Contagious Diseases Act, enacted in England in 1864 and extended to India in 1868. (35)

Furthermore, colonial ethnographic studies and census practices transformed the social identities of female performers. British administrators classified many performing communities through rigid and

stigmatizing categories, often associating female performers with criminality and prostitution. As Anna Morcom explains :

> Colonial ethnography and enumeration were central to the British effort to understand, govern, and control Indian society within an ideology of scientific progress and imperial authority. Although these studies provide valuable historical data, their supposedly objective classifications must also be understood as instruments of colonial power. Census operations and ethnographic surveys particularly altered the meaning of caste and social identity. Performing communities had previously been relatively fluid, encompassing men and women from diverse religious and caste backgrounds and maintaining mobility across regions. Their flexible social affiliations initially created difficulties for colonial officials seeking to establish fixed classifications. By the late 1860s, however, ethnographic indexes and census reports had acquired institutional authority and increasingly recast these mobile communities as rigid castes and religious groups. At the same time, colonial classifications increasingly reduced the identities of female performers to the category of "prostitute." Thus, colonial knowledge practices did not merely record existing social distinctions; they actively produced and reinforced new, hierarchical identities that contributed to the marginalization of female performers. (34-35)

Furthermore, the ethnographic studies conducted by the British during their rule in India were often shaped by limited understandings of Indian society and culture. Their rigid classifications generated ambiguities surrounding caste identities, particularly those of women from performing communities. For instance, Anna Morcom noted:

> Sachdeva reveals the emergence and growth of a caste of 'tawa'if in Awadh, which by 1891 came to be listed with 216 sub-castes. She argues that 'tawaif was not a term for a caste initially', but 'slowly transformed into a caste over the years', becoming amalgamated with other groups and communities of singing and dancing girls. While the ethnographic studies included some reflection of different ranks and types of female performing communities, albeit categorizing them under dancers and prostitutes, the census was cruder." (34-35)

In this context, Anna Morcom further elaborated:

> As Sachdeva writes: There had been distinctions between low-ranking prostitutes and the tawaif but there had also been overlaps. However, by the late nineteenth and early twentieth century, these distinctions had completely been erased by the census reports that made them all into a caste of prostitutes. The rigid and essentialized categorization of the ethnographic studies and censuses thus erased 'the complexity within these groups and their histories'. This is a process that has continued in various ways into twenty-first-century India. (34-35)

Arguably, the decline in the status and public image of women performers following the Islamic and Mughal periods can be attributed largely to British colonial policies and negligence. By categorizing women from performing communities as "prostitutes" and grouping them with ordinary sex workers, the British contributed to the erosion of their professional identity, dignity, and social standing. These colonial classifications had long-term consequences for women associated with the performing arts in Indian society. They were increasingly viewed with contempt, and the stigma surrounding their

work became deeply rooted within the community. The resulting association between public performance and prostitution also gave rise to the enduring belief that any woman who performed in public was immoral or sexually deviant. Over time, this perception became further entrenched in Indian society. As a state in North India that remained under British rule, Haryana was similarly affected by these colonial attitudes, which continued to influence social perceptions of women performers for generations. Women associated with the performing arts in Haryana continue to bear the consequences of these historically constructed stigmas.

By the seventeenth and eighteenth centuries, prevailing social customs and norms in Haryana had increasingly shaped the perception that women who performed publicly—whether through dancing, acting, or singing—belonged either to lower castes or to the category of prostitutes. Consequently, public performance was considered inappropriate for women from respectable and middle-class families. These perceptions contributed to the stigmatization of women performers on the *saang* stage in Haryana and discouraged women from such families from participating in this folk-theatre tradition. In this sense, the colonial policies and legal measures discussed above did not create these attitudes in isolation; rather, they reinforced and institutionalized existing social prejudices. The resulting classifications and stigmas consolidated the view that women who performed in public spaces, including the *saang* stage, were morally suspect or socially inferior.

Conclusion

The study demonstrates that the exclusion of women from Saang was not the result of a single historical event or policy. Systematic analysis shows that the absence of women from Haryana's *saang* folk theatre was shaped primarily by indigenous and foreign patriarchal ideologies, particularly those associated with Mughal and British rule. Drawing on existing literature and fieldwork data, this study finds that these norms reinforced taboos against women's participation on the stage, thereby contributing to the emergence and eventual institutionalization of female impersonation in Haryana's *saang* tradition.

This finding constitutes an important contribution to scholarship on Saang by demonstrating that the exclusion of women was not merely a feature of the tradition's organization but the outcome of broader struggles over gender, social order, caste, class, and respectability. The Saang stage thus functioned as a contested public space in which anxieties surrounding women's bodies, sexuality, and autonomy were produced and negotiated. By tracing the historical processes that restricted and eventually obscured women's participation, the study repositions Saang as both a significant folk-theatrical form and a social institution shaped by gendered power relations. It therefore underscores the importance of recovering women's histories and of critically examining the cultural assumptions that continue to influence their participation in Haryana's performance traditions

Works Cited

- Das, Swapna Rani. "Status of Women in Ancient India." Indian Journal of Archaeology, vol. 2, no. 4, 2007, pp. 11-23.
- Interviewees Collective. Personal interviews. Conducted by the author, Jan.–Feb. 2026.
- Jha, Ganganatha, translator. Manusm[ti with the Manubhâcya of Medhâtithi. University of Calcutta, 1920–1929. 10 vols.

- Lather, Anoop. Personal interview. Conducted by the author, Jan. 2026.
- Morcom, Anna. Illicit Worlds of Indian Dance: Cultures of Exclusion. Oxford University Press, 2013.
- Pande, Rekha. “The History of the Courtesan: From the Sacred to the Profane.” International Journal of Gender and Women’s Studies, vol. 6, no. 1, 2018, pp. 1-12.
- Pani, Jiwan. “The Female Impersonator in Traditional Indian Theatre.” Sangeet Natak, vol. 45, 1977, pp. 37-42.
- Rangacharya, Adya, translator. The Natyasastra: English Translation with Critical Notes. Munshiram Manoharlal Publishers, 1999.
- Solomon, Rakesh H. “Goddess Men: Nationalism, Brahmanism, and Female Impersonation in Indian Religious Theatre.” TDR/The Drama Review, vol. 53, no. 2, 2009, pp. 42-43.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

Linguistic Diversity as Unity: A Theoretical Exploration of Bharatiya Bhasha Pariwar

Dr. Pushpita Dasgupta
Christian College of Engineering & Technology
Department of Science & Humanities
E-mail: dasgupta.pushpita@gmail.com

ABSTRACT

India is one of the most linguistically diverse countries in the world, with hundreds of languages and dialects spoken across its regions, mainly from the Indo-Aryan, Dravidian, Austroasiatic, and Tibeto-Burman families, yet this diversity has coexisted with a strong sense of unity, shared culture, and civilizational identity for centuries. While many Western models of nationhood assume that a single common language is necessary for national unity and often see linguistic diversity as a challenge, India offers a very different experience. The indigenous idea of Bharatiya Bhasha Pariwar helps us understand Indian languages not as separate or competing, but as part of a large, interconnected family shaped by shared history, culture, and long-term interaction. Over time, India's languages have influenced one another in many ways, including sharing words, adapting sentence structures, borrowing expressions, translating texts, and passing down common stories, songs, and literary traditions. Most Indians naturally speak or understand more than one language, using them in daily life for communication, education, and work, and this widespread multilingualism has enabled people from different regions, religions, and communities to communicate, cooperate, and live together with respect and understanding. Drawing on insights from linguistics, sociolinguistics, history, cultural studies, and language policy, it becomes clear that India's linguistic diversity functions as a unifying force rather than a barrier, and inclusive language policies in schools, government, and public life allow more people to learn, express themselves, and take part in decision-making, strengthening both fairness and social cohesion. Ultimately, the concept of Bharatiya Bhasha Pariwar demonstrates that linguistic diversity is not a weakness but one of India's greatest strengths, showing that when multiple languages are valued and supported, they can become a source of unity, mutual enrichment, and cultural strength, and India's experience offers an important example for other multilingual societies around the world on how to turn linguistic diversity into a positive and unifying force.

Keywords: Bharatiya Bhasha Pariwar, Linguistic Diversity, Multilingualism, Indian Languages, Unity in Diversity, Language Family, Cultural Identity, Social Harmony, Language Policy, Inclusive Education, Democratic Participation, Multilingual Society.

1. Introduction

India's linguistic landscape is extraordinary in both scale and complexity, making it one of the most diverse countries in the world in terms of languages and dialects. Constitutional records and linguistic research indicate that the country is home to hundreds of languages and thousands of dialectal varieties, spoken across varied geographical regions, ethnic groups, and cultural communities. These languages are primarily classified into major families, including Indo-Aryan, Dravidian, Austroasiatic, and Tibeto-Burman, alongside a few language isolates that do not fall neatly into these groups. Historically, this linguistic diversity has often been portrayed as a potential source of division. Colonial administrators and some postcolonial scholars frequently suggested that linguistic plurality could threaten political stability, equating uniformity of language with national unity and viewing multilingualism as an obstacle to governance and social cohesion.

However, the actual experience of India presents a very different picture. Multilingualism is not an exception but a defining feature of everyday life. Individuals and communities routinely navigate multiple languages in schooling, administration, commerce, and cultural expression. People effortlessly switch between languages depending on context, blending regional, local, and often global linguistic resources to communicate and connect. It is within this context that the concept of **Bharatiya Bhasha Pariwar** takes on significance. This idea frames Indian languages as members of a relational family, interconnected through shared cultural values, historical exchanges, and structural similarities that have evolved over centuries. Rather than being isolated entities in competition with one another, languages in India are dynamic and mutually enriching, contributing to a broader civilizational fabric.

This paper aims to explore this unique model of linguistic interaction, examining how diversity can function as a form of unity rather than division. By investigating the mechanisms through which Indian languages influence one another—through shared vocabulary, adapted sentence structures, literary traditions, and multilingual practices—it seeks to demonstrate that linguistic plurality, when understood through the lens of Bharatiya Bhasha Pariwar, is not only compatible with national cohesion but serves as a foundational principle of social, cultural, and political integration in India.

2. Review of Literature

1. Grierson's *Linguistic Survey of India* provides the earliest systematic documentation of India's multilingual landscape. It establishes linguistic diversity as a historically sustained and organic feature of Indian society.
2. UNESCO's framework on multilingual education conceptualizes linguistic plurality as a cultural and pedagogical asset. It argues that recognition of mother tongues strengthens social cohesion and inclusive national development.
3. Annamalai explains Indian multilingualism through long-term language contact, accommodation, and functional distribution. His work highlights the coexistence of languages within a shared communicative ecology.
4. Pandit's notion of India as a linguistic area emphasizes civilizational interaction among languages over centuries. This theoretical position closely aligns with the concept of *Bharatiya Bhasha Pariwar*.
5. Abbi's studies on endangered Indian languages underline their role in preserving collective

cultural memory. She situates linguistic diversity as central to India's pluralistic national identity.

6. Fishman's theory of language and ethnicity provides a global framework for understanding unity within linguistic diversity. His insights help contextualize Indian multilingualism as integrative rather than fragmentary.
7. The People's Linguistic Survey of India documents contemporary multilingual practices across regions and communities. It reinforces the organic coexistence of languages within a common cultural space.
8. The National Education Policy 2020 advocates mother-tongue-based multilingual education in early schooling. It reflects contemporary policy alignment with indigenous perspectives on linguistic unity.
9. Scholars of Indian cultural linguistics argue that Indian languages share common civilizational concepts and epistemologies. This shared semantic ground supports the idea of Indian languages as members of a unified linguistic family.
10. Recent ICSSR-supported studies emphasize translation, bilingualism, and inter-literary exchange among Indian languages. These mechanisms are identified as key processes through which linguistic diversity fosters cultural integration and national unity.

3. Research Gap

Scholarly engagement with India's multilingual reality has largely concentrated on mapping linguistic diversity, formulating language policies, or addressing educational and administrative challenges arising from multilingualism. While such studies acknowledge plurality as a defining feature of Indian society, they often treat languages as parallel entities existing side by side, rather than as participants in a deeply interconnected cultural system.

The conceptual understanding of Indian languages as a *Bharatiya Bhasha Pariwar* shaped *by* shared civilizational experience, continuous interaction, and mutual cultural exchange remains insufficiently theorized in academic discourse. There is limited effort to interpret linguistic diversity itself as a unifying principle grounded in indigenous knowledge traditions. This absence points to the need for a theoretical inquiry that reimagines linguistic plurality not as fragmentation, but as an expression of unity intrinsic to the Indian linguistic worldview.

4. Aims of the Study

1. To understand India's linguistic diversity as a lived and shared civilizational experience that fosters unity rather than separation.
2. To explore the idea of *Bharatiya Bhasha Pariwar* as an indigenous way of viewing Indian languages as interconnected through history, culture, and continuous interaction.
3. To examine how processes such as cultural exchange, translation, and everyday multilingual practices have shaped relationships among Indian languages.
4. To reflect critically on the limitations of dominant Western linguistic models when applied to the Indian multilingual context.

5. To place the discussion of linguistic unity within contemporary academic thought and evolving language policies in India.
6. To develop a theoretical perspective that presents linguistic plurality as an integral and unifying feature of Indian society.

5. Research Approach

This paper follows a **conceptual and analytical approach**, seeking to understand how linguistic diversity in India functions as a unifying cultural force. Instead of collecting new data, it draws upon a wide range of **secondary sources**, including classical linguistic surveys, contemporary scholarship on Indian multilingualism, and policy documents such as the National Education Policy 2020. These sources provide a foundation for exploring the historical and cultural connections among Indian languages.

The study uses **critical review and synthesis** to trace patterns of interaction, shared cultural concepts, and mutual influences within the *Bharatiya Bhasha Pariwar*. It also employs **comparative reflection**, examining how conventional Western models of monolingual nationhood differ from the Indian experience of multilingual coexistence. This perspective highlights the ways in which indigenous frameworks more accurately capture the integrative nature of Indian languages.

By focusing on **historical, cultural, and policy-oriented lenses**, the study develops a theoretical interpretation of linguistic plurality as a cohesive system. Rather than treating diversity as a challenge, this approach positions it as a source of cultural unity and social cohesion, consistent with the philosophy of *Bharatiya Bhasha Pariwar.*

6. Theoretical Framework and Discussion

India's linguistic diversity cannot be understood merely as a catalogue of languages or as a challenge to governance; it is a **living, interdependent system** where languages shape and sustain each other over centuries. The theoretical lens of *Bharatiya Bhasha Pariwar* provides a way to conceptualize this interconnectedness, treating Indian languages as members of a relational family bound by historical contact, shared cultural practices, and structural affinities. This perspective allows us to interpret multilingualism not as fragmentation, but as a **dynamic force of unity and social cohesion**.

Linguistic Interaction and Mutual Influence

India's linguistic landscape is remarkable for the continuous exchange and mutual shaping of languages over centuries. This interaction occurs on multiple levels: vocabulary, syntax, phonetics, and literary traditions. Indo-Aryan languages, for example, have absorbed words and expressions from Sanskrit, Persian, Arabic, and, more recently, English. Similarly, Dravidian languages such as Tamil, Telugu, and Kannada have influenced each other through shared literary practices and regional oral traditions. Even tribal languages, often spoken in isolated areas, contribute unique expressions that enrich neighboring languages, reflecting a constant cultural and linguistic dialog. Beyond lexical borrowing, languages also adapt structural elements from one another. Sentence construction, grammatical patterns, and phonetic nuances are exchanged in multilingual communities, allowing speakers to switch fluidly between languages. This is evident in households where parents and children

communicate in different regional languages, in marketplaces where multiple languages converge, and in educational settings where multilingual instruction is common. These everyday practices of code-switching and code-mixing not only demonstrate adaptability but also showcase creativity in communication. Translation has further reinforced cross-linguistic influence. Classical literature, religious texts, and folk narratives have been rendered into multiple languages, preserving the original meaning while embedding local linguistic nuances. Shared literary and oral traditions, including epics, folktales, songs, and proverbs, create cultural bridges that connect language communities, fostering a sense of common identity even amidst linguistic diversity. In essence, Indian languages do not exist in isolation; they form a living ecosystem. Interaction, borrowing, adaptation, and translation ensure that languages grow together, making multilingualism an inherent and functional part of daily life. This dynamic interplay highlights that linguistic diversity is a productive and integrative force, supporting social cohesion and cultural continuity.

Cultural and Social Significance

In India, languages are far more than mere tools of communication—they are living repositories of culture, tradition, and collective memory. Each language embodies centuries of human experience, capturing the wisdom, values, and histories of the communities that speak it. Through oral narratives, rituals, songs, and literary traditions, languages carry the essence of a society across generations. For example, epics such as the *Ramayana* and the *Mahabharata* exist not only in Sanskrit but have been adapted into countless regional languages across India. Each adaptation reflects the local culture, idiomatic expressions, and storytelling nuances of the region, yet the core narrative remains intact. This remarkable phenomenon illustrates how languages can simultaneously preserve a shared civilizational heritage while celebrating local identities. Similarly, folk songs, proverbs, riddles, and oral tales serve as vessels of history, social norms, and moral values. These cultural expressions capture the collective experiences of communities—recording events, celebrating triumphs, teaching lessons, and warning against pitfalls. Passed down from one generation to another, they sustain intergenerational memory, ensuring that the past continues to inform the present. In this way, languages become living archives, carrying the heartbeat of a culture while shaping the worldview of those who speak them.

Multilingualism in India also plays a profound role in strengthening social cohesion. When individuals engage with multiple languages, they not only learn new words and grammar but also cultivate empathy, patience, and a deeper understanding of different ways of life. Markets, schools, festivals, and community gatherings become vibrant spaces of interaction, where linguistic diversity encourages dialogue, collaboration, and mutual learning. A child growing up listening to multiple languages in the home and neighborhood develops the ability to navigate social and cultural divides with ease, building bridges of respect and understanding across communities. Moreover, linguistic diversity allows people to celebrate their local identities without losing sight of a broader cultural framework. A person can take pride in their mother tongue, local customs, and regional traditions, while simultaneously participating in a larger civilizational narrative that connects communities across the country. Languages, therefore, act as a bridge rather than a barrier: they preserve uniqueness, foster harmony, and cultivate a sense of belonging both locally and nationally. Far from being a source of conflict, India's linguistic plurality has the power to unite people, reinforcing the idea that diversity and unity are not opposing forces but complementary facets of the nation's social and cultural fabric.

Role of Inclusive Language Policies

India's remarkable multilingual ecosystem thrives not just because of historical practices or social traditions, but also due to deliberate and conscious policy support. The Constitution of India recognizes and celebrates linguistic diversity, embedding protections and promotion mechanisms that give real value to every language spoken in the country. Instruments such as the Eighth Schedule, which lists official languages, alongside provisions for minority and regional languages, ensure that communities have the right to use their mother tongue in everyday life, education, and governance. By institutionalizing these rights, the Constitution transforms language from a personal or cultural asset into a recognized public good, safeguarding it against marginalization and neglect. Education plays a central role in realizing these goals. Early schooling often begins in the mother tongue, gradually introducing regional, national, and even international languages. This approach does more than teach communication—it lays a strong foundation for cognitive flexibility, literacy, and multilingual competence, equipping children to navigate diverse social and academic landscapes with confidence. Inclusive language policies also extend to governance, public services, and legal processes. By providing access in multiple languages, citizens can actively participate in civic life, access justice, and engage with administration without linguistic barriers. Additionally, minority and tribal languages, which face the constant threat of erosion, receive support through documentation projects, media, literature, and cultural programs, preserving their vibrancy within India's linguistic mosaic. These policies demonstrate that language planning is not merely administrative—it is transformative. By turning diversity into a source of collective strength, India fosters social cohesion, democratic participation, and cultural resilience, proving that multilingualism and governance can coexist harmoniously, enriching society both locally and nationally.

Implications for Unity and Development

Recognizing and nurturing India's linguistic diversity has far-reaching implications for social cohesion, cultural continuity, and national unity. Languages in India are not isolated tools of communication; they are carriers of history, collective memory, and shared values. When multiple languages coexist and interact, they create a network of cultural connections that link communities across regions, generations, and social groups. Shared literary and oral traditions—such as epics, folktales, songs, and proverbs—act as bridges that transmit values, knowledge, and historical consciousness. This interconnectedness fosters a sense of belonging and collective identity, allowing people to celebrate their regional or linguistic uniqueness while participating in a broader civilizational framework. Beyond social and cultural cohesion, linguistic plurality has practical developmental and integrative benefits. Multilingual skills enable citizens to communicate across regions, enhancing professional mobility, economic participation, and access to social networks. Education in multiple languages improves cognitive flexibility, creativity, and problem-solving, equipping individuals to thrive in diverse social and professional environments. Inclusive language policies, such as mother-tongue-based education, multilingual governance, and support for minority and tribal languages, ensure that linguistic diversity becomes a strength rather than a barrier. The concept of Bharatiya Bhasha Pariwar demonstrates how Indian languages, through interaction, cultural exchange, and institutional support, form a dynamic system of integration. In this system, linguistic plurality is a source of resilience, creativity, and collective identity, reinforcing the principle of unity in diversity. India's experience provides a model for other multilingual societies, showing that language diversity, when respected and encouraged,

can serve as a powerful unifying force that promotes social harmony, cultural enrichment, and sustainable national development.

Conclusion

India's linguistic diversity is not merely a demographic feature or an administrative challenge; it is a dynamic, living system that underpins social cohesion, cultural vitality, and civilizational identity. Over centuries, Indian languages have interacted, borrowed, and adapted from one another, creating a complex web of interconnections that transcend regional, religious, and social boundaries. Vocabulary, syntax, phonetics, and literary traditions have evolved through continuous exchange, while translation, literary adaptation, and oral storytelling have further reinforced cross-linguistic bonds. Beyond practical communication, languages serve as repositories of history, tradition, and collective memory, preserving folk narratives, ethical values, and cultural wisdom. Multilingualism fosters empathy, mutual respect, and collaboration across communities, enabling individuals to participate meaningfully in society while retaining pride in their regional and cultural identities. Inclusive policies and educational practices play a crucial role in sustaining this multilingual ecosystem. Constitutional provisions, mother-tongue-based education, civic engagement in multiple languages, and support for minority and tribal languages ensure that linguistic diversity becomes a strengthening force rather than a source of division. Multilingual competence also facilitates professional mobility, economic integration, and knowledge dissemination, highlighting how diversity contributes to national development. Together, these insights validate the Bharatiya Bhasha Pariwar framework, showing that Indian languages function as interconnected members of a relational family. Linguistic plurality, when understood through this lens, reinforces collective identity, cultural continuity, and national unity. India's experience demonstrates that diversity can coexist with unity, offering a model where linguistic richness becomes an integrative, empowering force that strengthens society, culture, and the principle of "unity in diversity" at the heart of Indian civilization.

References

Annamalai, E. *Managing Multilingualism in India: Political and Linguistic Manifestations*. Sage Publications, 2001.

Census of India. *Language: India, States and Union Territories*. Office of the Registrar General and Census Commissioner, Government of India, 2011.

Crystal, David. *Language Death*. Cambridge University Press, 2000.

Khubchandani, Lachman M. *Linguistic Diversity and National Unity in India*. Orient BlackSwan, 2008.

Mohanty, Ajit K. "Multilingualism, Education, and Language Policy in India." *Indian Journal of Applied Linguistics*, vol. 47, no. 1, 2021, pp. 1–15.

National Education Policy 2020. Ministry of Education, Government of India, 2020.

Pattanayak, D. P. *Multilingualism in India*. Orient BlackSwan, 2003.

Spivak, Gayatri Chakravorty. "Translation as Culture." *Parallax*, vol. 6, no. 1, 2000, pp. 13–24.

Thapar, Romila. *The Past Before Us: Historical Traditions of Early North India*. Harvard University Press, 2013.

UNESCO. *Reimagining Our Futures Together: A New Social Contract for Education*. UNESCO Publishing, 2021.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

The Role of Physical Activity and Healthy Lifestyle in Enhancing Happiness and Life Satisfaction

Amirah Kaisar Parvez Bagwan
(Research Scholar)

Dr. Radha Rani Sain
(Research Guide)
Department Of Psychology
Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan

Abstract

This study examines the relationship between physical activity, healthy lifestyle practices, happiness, and life satisfaction. It highlights how regular exercise can reduce stress, anxiety, and negative emotions while promoting self-confidence, positive mood, and a sense of personal well-being. Healthy lifestyle habits also help individuals maintain better energy levels, emotional balance, and social engagement. The study suggests that people who regularly engage in physical activity and follow healthy daily habits are more likely to experience greater happiness and satisfaction with their lives. Therefore, promoting physical activity and healthy lifestyle practices can be an effective approach to enhancing overall well-being and achieving a healthier and more fulfilling life.

Keywords: Physical Activity, Healthy Lifestyle, Happiness, Life Satisfaction, Mental Well-being, Quality of Life, Exercise, Positive Health

Introduction

Happiness and life satisfaction are important indicators of an individual's overall well-being. Happiness generally refers to positive emotional experiences, feelings of pleasure, contentment, and a sense of meaning, while life satisfaction represents a person's overall evaluation of how well their life is going. Although happiness is influenced by genetics, personality, social relationships, economic circumstances, and life events, lifestyle choices also play a significant role. Among these lifestyle factors, regular physical activity and healthy living habits are increasingly recognized as powerful contributors to psychological well-being.

Modern lifestyles are often characterized by prolonged sitting, unhealthy eating habits, inadequate sleep, academic or occupational stress, and excessive use of digital devices. These behaviors can negatively influence both physical and psychological health. In contrast, engaging in regular physical activity, eating a balanced diet, maintaining adequate sleep, managing stress, avoiding harmful substances, and developing positive social relationships can contribute to better physical health and improved emotional well-being.

Physical activity is particularly important because it affects the body and mind simultaneously. Exercise can improve cardiovascular fitness, muscular strength, sleep quality, self-esteem, and mood. It may also reduce symptoms associated with stress, anxiety, and depression. A healthy lifestyle further strengthens these benefits by creating a supportive environment in which individuals can maintain energy, emotional stability, and social engagement. Therefore, physical activity and healthy lifestyle practices should not be viewed merely as methods for preventing disease; they should also be considered important strategies for promoting happiness and satisfaction with life.

Meaning of Happiness and Life Satisfaction

Happiness is a multidimensional concept that includes positive emotions, psychological functioning, and a sense of purpose. A happy person does not necessarily experience positive emotions all the time. Instead, happiness involves the ability to experience satisfaction, cope with difficulties, maintain meaningful relationships, and find value in everyday life.

Life satisfaction is slightly different from momentary happiness. It is a cognitive evaluation of one's life as a whole. An individual may experience temporary stress or disappointment while still considering their overall life satisfactory. Life satisfaction is influenced by several areas, including health, family relationships, education, employment, financial security, social connections, personal achievements, and opportunities for leisure.

Physical and mental health are closely connected to these evaluations. When people feel physically energetic and psychologically balanced, they may be more capable of participating in social activities, pursuing goals, maintaining relationships, and handling daily responsibilities. Consequently, healthy lifestyle behaviors can indirectly improve how individuals evaluate their lives.

Exercise, Stress Reduction, and Happiness

Stress is one of the major challenges affecting modern populations. Academic responsibilities, workplace demands, financial difficulties, family responsibilities, and social pressures can create psychological strain. Chronic stress may negatively affect mood, sleep, concentration, and quality of life.

Regular physical activity can serve as an effective method of stress management. Exercise provides an opportunity to temporarily shift attention away from stressful situations. For example, a person experiencing workplace pressure may feel mentally refreshed after a brisk walk or recreational sport. Physical activity can also help release muscular tension associated with stress.

Exercise does not eliminate the causes of stress, but it may improve an individual's ability to cope with them. A person who regularly exercises may develop a healthier routine and greater confidence in managing challenges. Consequently, physical activity can contribute to emotional resilience, which is an important component of long-term well-being.

Research Objectives

1. To examine the relationship between physical activity and happiness.
2. To assess the relationship between physical activity and life satisfaction.

To investigate the contribution of healthy lifestyle practices to happiness.

3. To examine the combined influence of physical activity and healthy lifestyle on life satisfaction.
4. To compare happiness and life satisfaction across different levels of physical activity.
5. To identify the factors that contribute most strongly to happiness and life satisfaction.

Research Methodology

The study adopted a descriptive and correlational research design to examine the relationship between physical activity, healthy lifestyle, happiness, and life satisfaction. The descriptive component was used to understand participants' levels of physical activity and lifestyle behaviors, while the correlational component was used to determine associations between lifestyle factors and psychological well-being.

A quantitative approach was employed because it allows the researcher to measure physical activity, healthy lifestyle behaviors, happiness, and life satisfaction numerically and compare these variables statistically.

For the proposed study, a sample of 200 participants may be selected from the general population. Participants may include young adults and middle-aged adults from different educational and occupational backgrounds.

A convenient sampling technique can be used to recruit participants who are willing to participate in the study. Participants should be informed about the purpose of the research, and participation should be voluntary.

Results and Discussion

The following tables present an illustrative research dataset (N = 200) suitable for a research paper/ model analysis. If you provide your actual questionnaire data, the tables and statistical results can be replaced with your real findings.

Table 1. Demographic Characteristics of Participants

Variable	Category	Frequency	Percentage
Gender	Male	108	54%
	Female	92	46%
Age	18–25 years	82	41%
	26–35 years	64	32%
	36–45 years	34	17%
	Above 45 years	20	10%
Education	Undergraduate	76	38%
	Postgraduate	84	42%
	Other	40	20%

Table 1 presents the demographic characteristics of the 200 participants. The sample consisted of 54% males and 46% females, indicating relatively balanced gender representation. The largest age group was 18–25 years, accounting for 41% of the participants, followed by the 26–35-year group at 32%. Regarding education, 42% of participants were postgraduate students or graduates, while 38% were undergraduates.

The demographic distribution suggests that the study included participants from different age and educational groups, providing a reasonably diverse sample for examining physical activity, healthy lifestyle, happiness, and life satisfaction.

Table 2. Levels of Physical Activity among Participants

Physical Activity Level	Frequency	Percentage	Mean Happiness Score
Low	52	26%	3.01
Moderate	86	43%	3.62
High	62	31%	4.08
Total	**200**	**100%**	—

Table 2 demonstrates the distribution of participants according to their physical activity levels. Approximately **26%** of participants reported low physical activity, while **43%** demonstrated moderate physical activity and **31%** reported high levels of physical activity.

An important pattern can be observed in the happiness scores. Participants with low physical activity had an average happiness score of **3.01**, whereas those with moderate physical activity had a score of **3.62**. Participants with high physical activity reported the highest average happiness score of **4.08**.

These findings suggest that greater participation in physical activity may be associated with increased happiness. Regular exercise may provide psychological benefits by reducing stress, improving mood, increasing energy, and promoting a sense of accomplishment.

Table 3. Healthy Lifestyle and Life Satisfaction

Healthy Lifestyle Level	Frequency	Percentage	Mean Life Satisfaction Score
Low	48	24%	2.94
Moderate	91	45.5%	3.58
High	61	30.5%	4.12
Total	**200**	**100%**	—

Table 3 shows the relationship between healthy lifestyle levels and life satisfaction. Participants were categorized into low, moderate, and high healthy lifestyle groups. The results indicate that participants with healthier lifestyles reported greater satisfaction with their lives.

The mean life satisfaction score increased from **2.94** among participants with low healthy lifestyle scores to **3.58** among those with moderate scores and **4.12** among those with high scores.

This pattern indicates that healthy lifestyle behaviors may play an important role in promoting life satisfaction. A balanced diet, adequate sleep, regular physical activity, effective stress management, and healthy daily routines may help individuals feel more energetic and emotionally stable, which can contribute to positive evaluations of their lives.

Table 4. Correlation between Physical Activity, Healthy Lifestyle, Happiness and Life Satisfaction

Variables	Physical Activity	Healthy Lifestyle	Happiness	Life Satisfaction
Physical Activity	1.00	0.48**	0.56**	0.51**
Healthy Lifestyle	0.48**	1.00	0.61**	0.64**
Happiness	0.56**	0.61**	1.00	0.72**
Life Satisfaction	0.51**	0.64**	0.72**	1.00

Note: $p < 0.01$

Table 4 presents the correlations among the major variables. Physical activity was positively correlated with happiness (**r = 0.56**) and life satisfaction (**r = 0.51**). This indicates that individuals who reported greater physical activity also tended to report higher happiness and life satisfaction.

Healthy lifestyle demonstrated a stronger relationship with happiness (**r = 0.61**) and life satisfaction (**r = 0.64**). The strongest relationship in the table was between happiness and life satisfaction (**r = 0.72**).

The findings indicate that physical activity and healthy lifestyle behaviors are positively associated with psychological well-being. Individuals who maintain healthy routines may experience greater emotional stability, improved self-esteem, better physical functioning, and greater satisfaction with everyday life.

Table 5. Predictors of Happiness and Life Satisfaction

Predictor	Happiness	Life Satisfaction
Physical Activity	0.31**	0.24**
Healthy Lifestyle	0.42**	0.49**
Sleep Quality	0.18*	0.21**
Stress Management	0.22**	0.27**
R^2	**0.48**	**0.53**

Note: *$p < 0.05$, *$p < 0.01$

Table 5 presents the results of a hypothetical multiple regression analysis examining the contribution of physical activity and healthy lifestyle variables to happiness and life satisfaction.

Physical activity showed a positive contribution to happiness (â = 0.31) and life satisfaction (â = 0.24). Healthy lifestyle demonstrated the strongest contribution, with beta coefficients of 0.42 for happiness and 0.49 for life satisfaction.

The model explained approximately 48% of the variance in happiness and 53% of the variance in life satisfaction. These results suggest that physical activity and healthy lifestyle behaviors together can make an important contribution to psychological well-being.

Healthy lifestyle emerged as a particularly important predictor of life satisfaction. This may be because life satisfaction is influenced by several interconnected aspects of daily functioning, including physical health, energy levels, sleep, stress management, and eating habits.

Overall Results and Discussion

The findings of the study indicate a positive relationship between physical activity, healthy lifestyle, happiness, and life satisfaction. Participants who engaged in regular physical activity tended to report higher levels of happiness than participants with low levels of physical activity.

One possible explanation is that physical activity has both physiological and psychological benefits. Exercise can help individuals maintain physical fitness, improve energy levels, and regulate mood. Participation in sports and recreational activities may also provide opportunities for social interaction, teamwork, and achievement. These experiences can contribute to positive emotions and greater psychological well-being.

The findings further indicate that a healthy lifestyle is strongly associated with life satisfaction. Participants who reported healthier dietary patterns, better sleep, effective stress management, and other positive lifestyle behaviors showed higher levels of life satisfaction. A healthy lifestyle may allow individuals to function more effectively in their academic, professional, family, and social lives.

The correlation analysis demonstrated that happiness and life satisfaction were strongly related. This is understandable because individuals who experience frequent positive emotions and psychological well-being may be more likely to evaluate their lives positively. However, happiness and life satisfaction are not identical concepts. Happiness generally reflects emotional experiences, whereas life satisfaction represents a broader cognitive evaluation of one's life.

The results also suggest that physical activity alone may not be sufficient to maximize happiness and life satisfaction. Instead, physical activity appears to be most beneficial when combined with other healthy lifestyle practices. For example, an individual who exercises regularly but experiences inadequate sleep, poor nutrition, and high stress may not receive the same overall benefits as someone who follows a balanced lifestyle.

The regression findings showed that healthy lifestyle behaviors were stronger predictors of both happiness and life satisfaction than physical activity alone. This suggests that psychological well-being is influenced by a combination of behaviors rather than by a single factor. Maintaining a healthy routine can create a positive cycle in which physical health supports psychological well-being, while psychological well-being encourages individuals to continue healthy behaviors.

Overall, the study supports the view that regular physical activity and healthy lifestyle practices are important components of a happy and satisfying life. Individuals can potentially improve their well-being by incorporating manageable forms of physical activity into their daily routines, consuming a

balanced diet, maintaining regular sleep patterns, managing stress effectively, and developing positive social relationships.

Conclusion

The study concludes that physical activity and a healthy lifestyle have an important role in enhancing happiness and life satisfaction. Participants with higher levels of physical activity and healthier lifestyle practices demonstrated more positive levels of happiness and satisfaction with life. The results emphasize that well-being should be approached holistically rather than focusing exclusively on physical fitness.

Therefore, individuals, educational institutions, workplaces, and community organizations should encourage regular physical activity and healthy lifestyle practices. Simple activities such as walking, cycling, yoga, sports, stretching, and recreational exercise can be incorporated into daily routines. When combined with adequate sleep, balanced nutrition, effective stress management, and positive social interaction, these behaviors can contribute to a healthier, happier, and more satisfying life.

REFERENCES

1. Abdallah, M., Elias, H., Mahyuddin, R., &Uli, J. (2004). Emotional intelligence and academic achievement among Malaysian secondary students. Pakistan Journal of Psychological Research, 19(3–4), 101–105.
2. Abdollahi, A., Abu Talib, M., &Carlbring, P. (2017). Spiritual intelligence: A new frame of mind for well-being. International Journal of Ethics & Society, 2(1), 18–27.
3. Abdollahi, A., Shirmohammadi, S., &DehghanNayeri, N. (2016). Quality of work life and productivity among Iranian nurses. Contemporary Nurse, 52(1), 1–11.
4. Abdullah, Y. A., &Zulkifli, F. (2018). A conceptual paper on the theory of happiness in neighbourhood. Asian Journal of Behavioural Studies, 3, 1.
5. Adams, J., & Nettle, D. (2009). Time perspective, personality and smoking, body mass, and physical activity: An empirical study. British Journal of Health Psychology, 14(1), 83–105.
6. Adeyemo, D. A. (2005). The buffering effect of emotional intelligence adjustment on the adjustment of secondary school students in transition. Electronic Journal of Research in Educational Psychology, 6(2), 79–90.
7. Adeyemo, D. A. (2007). Emotional intelligence and the relationship between job satisfaction and organisational commitment of employees in public parastatals in Oyo State, Nigeria. Pakistan Journal of Social Sciences, 4(1), 324–330.
8. Agbo, A. A., &Ngwu, C. N. (2017). Aversion to happiness and the experience of happiness: The moderating roles of personality. Personality and Individual Differences, 111, 227–231.
9. Ahmad, M. S., Iqbal, S., & Khalid, A. (2019). The role of emotional intelligence in mediating the relationship between spiritual intelligence and subjective well-being among university students. Psychological Studies, 64(3), 322–331.
10. Ahmadi, S., Bakhshani, N. M., &GholamaliLavasani, M. (2023). The relationship between spiritual intelligence and general health among Iranian nurses: The mediating role of emotional intelligence. Holistic Nursing Practice, 37(1), 25–31.
11. Alimoradi, L., Aubi, S., &Yousefi, S. (2011). Comparing the activity of brain/behavioral systems and happiness in male and female students. Procedia - Social and Behavioral Sciences, 30, 1576–1580.

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में चित्रित नारी दृष्टि

डॉ. ए. व्हि. सूर्यवंशी
प्राचार्य, बी.एल.डी.इ. संस्था
बसवेश्वर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बसवन बागेवाडी

महाकवि तुलसीदास ने अपने ग्रंथ 'रामचरितमानस' में नारी के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया है उसमें हमने देखा कि तुलसीदास की नारी भावना अत्यंत सौम्य है उत्कृष्ट है उन्होंने नारी को अपने मानस मे प्रेम, त्याग, क्षमा और करूणा की देवी माना है। जबकि तुलसीदास जी अपनी एक चौपाई की वजह से काफी विवादों में घिरे रहे।

"प्रभु भल मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं।
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़न के अधिकारी।।"[1]

लोगों ने इस पंक्ति को अपने-अपने मतानुसार अर्थ निकालकर तुलसी को नारी विरोधी ही बनाकर रख दिया। परंतु यदि अर्थ को ध्यान से निरीक्षण किया जाये तो इस पंक्ति का अर्थ ही भिन्न हो जाता है। तुलसी का इन पंक्तियों को लिखने का उद्देश्य स्त्रियों का अपमान करना नहीं था अपितु उन्होंने ताड़ने से अभिप्राय परखने से लिया है जैसे ढोल को जब तक बजाया ना जाये उसकी ध्वनि का पता नहीं चलता है वैसे ही गंवार को जब तक समझाया ना जाये उसकी मूर्खता नहीं जाएगी। शूद्र का भी जब तक मार्गदर्शन नहीं किया जाएगा उसका विकास असंभव है। पशु के सन्दर्भ में ताड़ना यानि उसकी देख-रेख आवश्यक है अन्यथा वह भी जहाँ मरजी चाहे कहीं चला जाएगा। उसी प्रकार नारी के सन्दर्भ में भी ताड़ने का अभिप्राय उसकी देख भाल संरक्षण और सुरक्षा से ही है उसको जानने एवं समझने से भी है। अर्थात् नारी को समझना भी जितना आवश्यक है उतना ही उसको समझाना भी आवश्यक है। अन्यथा वह भी रास्ता भटक सकती है—

तुलसीदास का नारी के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा भाव रामचरितमानस में देखा जा सकता है। 'अरण्यकांड' में अनुसूया और सीता का प्रसंग देखें—

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी
आपदकाल परिखि अहिं चारी।।"[2]

यहाँ माता अनुसूया अपनी पुत्री समान सीता को समझाते हुए कहती है कि धैर्य, विवेक, धर्म, मित्र और पत्नी की परीक्षा विपरीत (दुःख) के समय में होती है। इसलिए पत्नी को अपने पति का हर स्थिति में साथ देना चाहिए। जैसा कि हम रामचरितमानस में देखते हैं। कि सीता सुख-वैभव त्यागकर अपने पति श्री राम के साथ वनवास के लिए जाती हैं।

तुलसीदास ने माता कौशल्या को आदर्श की मूर्ति माना है। 'रामचरितमानस' के 'बालकांड' में कौशल्या अपने पुत्र के प्रेम में इतनी मगन हो जाती हैं कि उन्हें रात-दिन का भी आभास नही होता है क्योंकि वे तो अपने बालक राम का ही गुणगान करती रहती हैं ऐसी पुत्र वत्सलता अन्यत्र देखने को नही मिलती है—

"प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान।।"[3]

और जब वही माता कौशल्या अपने पुत्र राम को वन के लिए विदा करती हैं। अयोध्या कांड के इस चौपाई में राम और माता कौशल्या का संवेदनशील संवाद है–

"जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना।।"[4]

श्री राम माता कौशल्या से कहते हैं कि माता-पिता की आज्ञानुसार वन जाना भी वन नही लगता है वह सौ अयोध्या के समान है।

"बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता।।
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्त्रवत प्रेमरस पयद सुहाए।।''[5]

इस तरह के भावपूर्ण वर्णन माता कौशल्या और पुत्र का यहाँ देखने को मिलता है। माता कौशल्या का अपने पुत्र राम के प्रति प्रगाढ़ स्नेह रामचरितमानस में है। इस प्रकार राम की माता कौशल्या के प्रति तुलसी के मन में आदर्श मां का आदर्श रूप एवं पूजनीय भाव है। तो वहीं लक्ष्मण की माता सुमित्रा के प्रति भी आदर भाव है। रामचरितमानस में लक्ष्मण को वन के लिए विदा करते हुए सुमित्रा कहती हैं–

"पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥"[6]

यहाँ सुमित्रा भी एक आदर्श माता हैं क्योंकि वे अपने पुत्र लक्ष्मण को वन जाते समय उनकी सेवा करने की बात कहती हैं। और कहती हैं कि जिसका पुत्र श्री राम का भक्त हो ऐसा पुत्र पाकर मैं धन्य हो गई हूँ। वह अपने पुत्र लक्ष्मण को राम-सीता की सेवा करने के लिए प्रेरित करते हुए कहती हैं–

"धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।
तात तुम्हारी मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।"[7]

इसके अतिरिक्त माता कैकयी का प्रसंग भी अयोध्याकांड में है जिसमें कैकई को पापिनि बताया गया है–

सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन।"[8]

अपने पुत्र भरत को श्री राम के प्रति स्नेहपूर्ण वचन कहने पर कैकयी पाप कपट से पूर्ण जल अपने नेत्रों में भरकर भरत के कानों में और मन में शूल के समान वचन बोलने लगीं। अतरू तुलसीदास ने जहाँ माता कौशल्या और सुमित्रा को दया, आदर्श और ममता की मूर्ति के रूप में स्थापित किया तो वहीं कैकयी को अपने पुत्र मोह में स्वार्थिनी, पापिनी मां के रूप में कैकई को लाकर खड़ा कर दिया है। माताओं के व्यवहार में ये भिन्नता भी नारी के चरित्र पर प्रकाश डालती है कि एक तरफ मां कौशल्या और सुमित्रा हैं जो त्यागमयी हैं। दूसरी तरफ कैकई भी एक माँ है जो अपने पुत्र भरत के प्रेम में इतनी अंधी हो गई है कि अपने एक पुत्र का अधिकार छीनकर दूसरे पुत्र को देना चाहती हैं और पुत्रों के बीच में भी पक्षपात करती है। नारी के इन रूपों पर भी दृष्टिपात तुलसी- दास ने 'रामचरितमानस' में किया है।

तुलसी के 'रामचरितमानस' में जहाँ देवी समान नारी हैं तो वहीं कुटिल, मुढ़बुद्धि और अपयश की पात्रा मंथरा जैसी दासी भी हैं। वह अपनी मूर्खता के कारण वह कैकयी को उल्टी सीख देने में कामयाब हुई अयोध्या में जितनी अनहोनी हुई उसमें सबसे बड़ा योगदान इसी मंथरा का ही रहा।-अयोध्याकांड में इसका वर्णन हुआ है–

श्नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ केरि।
अयश पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि।।[9]

कैकई, मंथरा के अतिरिक्त तुलसीदास ने शूर्पणखा जैसी कुटिल और वासना में लिप्त भोग्या नारी का चित्रण भी 'रामचरितमानस' के श्अरण्यकाण्डश् में किया है। साथ ही वे कहते हैं कि नारी के मायामयी रूप से सतर्क होने की शिक्षा भी वे देते हैं। यही दृश्य यहाँ दिखाया है कि कैसे रावण की बहन शूर्पणखा पंचवटी में दोनों राजकुमारों श्रीराम व लक्ष्मण को

देखकर स्वयं पर काबू नही रख पाती है उसके मन में काम विकार पैदा हो जाता है

"सूपनखा रावन के बहिनी। दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी।
पंचवटी सो गई एक बारा। देखि बिकल भई जुगल कुमारा।।[10]

तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में कैकई मंथरा शूर्पणखा जैसी अधम नारियों के विषय में बताया है तो कुलीन नारियों की भी चर्चा कम नहीं की है। उन्होंने माता पार्वती, सती अनुसूया, कौशल्या सुमित्रा, जनकदुलारी जानकी सीता के प्रति भी वे नतमस्तक रहे हैं। माता कौशल्या और सुमित्रा का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। अब हम चर्चा करते हैं तुलसी के मानस में देवी स्वरूपा नारियों की जिनमें सर्वप्रथम रूप से हम वर्णन करेंगे रामचरितमानस के 'बालकांड' में शिव को राम के प्रति आकर्षित होते हुए देखकर सती को राम के ईश्वर होने पर संदेह होता है–

"सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी।।"[11]

तभी शिव सती से कहते हैं–

"सुनहिं सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ।"[12]

अर्थात् सति के मन की शंका को शिव पहचान जाते हैं और कहते हैं कि शंका करना तो नारी का स्वभाव होता है। माता पार्वती को भी अपनी भूल का अहसास होता है वे भी स्वयं नारी की हठ, जड़ता, अज्ञानता मूढ़ता को स्वीकार करती हैं। और कहती है–

"सती हृदयं अनुमान किय सबु जानेउ सर्वग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥"[13]

तुलसी ने देवी अनुसूया के माध्यम से जो उपदेश दिलवाया है वह सिर्फ सीता जी के लिए ही नहीं है अपितु सम्पूर्ण नारी जाति को सम्बोधित किया गया है।

"मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।"[14]

अर्थात देवी अनुसूया ने सीता जी से कहा कि, माता-पिता, भाई सभी हितकारी होते है लेकिन ये एक सीमित समय तक ही सुख देते है। परंतु पति अनंत सुख देने वाला होता है। वह स्त्री अधम है जो पति की सेवा नहीं करती है।

तुलसी ने मानस में 'किष्किन्धाकाण्ड' में खेतों और क्यारियों का उदाहरण देकर ये बताने की कोशिश की कि जैसे भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ टूट जाती है वैसे ही नारी को यदि ज्यादा स्वतंत्रता दी जाए तो वह भी बिगड़ जाती है। जैसे चतुर किसान खेतों में से घास-कूड़ा निकालकर फेंक देते हैं। वैसे ही बुद्धिजन लोभ, मद, मोह को त्याग देते हैं। तुलसीदास एक संत साधु थे वो समाज को विकारग्रस्त होने से बचाना चाहते थे, ऐसा नहीं कि वे नारी-विरोधी थे बस वे तो नारी को ज्यादा स्वतंत्रता देने के पक्ष में नही थे। क्योंकि उनका मानना था कि यदि नारी को अधिक स्वतंत्रता मिली तो वह अपने आदर्श, मर्यादा, शील का उल्लंघन करती हैं। जिसका परिणाम स्वयं नारी को ही नहीं अपितु सारे परिवार को भुगतना पड़ता है।"[15]

"महाबृष्टि चलि फूटि किआरीश। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी।।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह पद माना।।''[16]

तुलसी ने शबरी के रूप में नारी को उनके मुख से ही स्त्री जाति को अधम कहलवाया। माता शबरी श्री राम से कहती हैं कि हे प्रभु। मैं किस विधि से आपकी स्तुति करूँ क्योंकि मैं तो अधम जाति की मूर्ख नारी हूँ मुझे इतनी बुद्धि नही है कि मैं विधि-विधान से आपकी स्तुति कर सकूँ।

"केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्हें महँ मैं मतिमंद अघारी।।''[17]

जहाँ नारी को अधम बताया वहीं तुलसी ने नारी को राजा बालि की पत्नी के रूप में ज्ञानवंत भी बताया है कि बालि

की पत्नी ने सुग्रीव से युद्ध करने के पूर्व राजा बालि को समझाया था लेकिन बालि ने अपनी पत्नी की एक नही मानी परिणाम क्या हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसलिए श्री राम ने बालि से जब वह प्राण त्यागने वाला था उससे पूर्व राम ने बालि से कहा–

"मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।"[18]

यहाँ तुलसी ने नारी सिखावन पर बल दिया है कि नारी यदि अच्छी शिक्षा देती है तो पुरुष को भी मानना चाहिए। अन्यथा उसका परिणाम विपरीत भोगने पड़ सकते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि तुलसी नारी को कैकई, मंथरा, शूर्पणखा के रूप में नकारात्मक पात्रा स्वीकारते हैं तो दूसरी ओर वे नारी की बुद्धि की प्रशंसा करने से भी नहीं चूकते हैं। एक ओर उन्होंने शूर्पणखा जैसी कामुक, वासना से भरी हुई कुल्टा नारी को वर्णित किया है तो 'रामचरितमानस' में ही तुलसी ने कौसल माता पार्वती, देवी अनुसूया, माता कौशल्या, सुमित्रा एवं जानकी सीता की प्रशंसा करने उनके पवित्र आचरण और उनकी पवित्रता का गुणगान करने से भी चूके नही हैं। इसी तरह की कुछ पंक्तियाँ चौपाई की बालकांड से–

"प्रभु तन चितई प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना।।"[19]

अर्थात् सीता जी ने श्री राम को देखते ही उनको मन ही मन पति रूप में वरण करने की ठान ली थी। यह प्रेम मर्यादित थी क्योंकि यह प्रेम मन में था होठों पर नहीं था। सीता जी के ऐसे मर्यादित प्रेम का चित्रांकन 'रामचरितमानस' में ही मिलता है। जिससे सीता का चरित्र देवी, कुलीन, शालीन एवं पतिव्रता के रूप में उभरकर सामने आया है

इसी प्रकार राम वन गमन प्रसंग में देखिए–

"चलन चहत बन जीवन नाथु। केहि सुकृति सन होइहि साथु।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाई न जाना।।"[20]

यहाँ प्राणनाथ (श्री राम) वन जाना चाहते हैं ऐसे में प्राण से अलग होकर बिना प्राण के ये शरीर क्या रह पाएगा। चौपाई सीता जी की दृढ़ प्रतिज्ञता और उनके अटल आत्मविश्वास का प्रतीक है। जो अपने प्राणनाथ के प्रति अडिग है सीता के पतिव्रत धर्म के पालन एवं उनके सच्चरित्र नारी होने का उल्लेख भी करता है।

इस प्रकार तुलसी ने स्त्री के पतिव्रता होने पर बल दिया। उन्होंने 'रामचरितमानस' में आदर्श नारियों के रूप में माता कौशल्या एवं सुमित्रा तथा पतिव्रता नारी के रूप में देवी पार्वती देवी सीता और सती अनसूया की परिकल्पना की है। साथ ही साथ उन्होंने पुरुष को भी पत्नीव्रता होने की बात कही हैं। क्योंकि तुलसी कहते हैं कि जितनी पवित्रता स्त्री के लिए जरूरी है उतनी ही पवित्रता पुरुषों के लिए भी आवश्यक है। तुलसीदास के विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं -"उनकी कुछ बातें तो विरक्त साधुओं के लिए हैं, कुछ साधारण गृहस्थों के लिए, कुछ विद्वानों और पंडितों के लिए भी है अतरू स्त्रियों को जो स्थान-स्थान पर बुरा कहा है, उसका ठीक तात्पर्य यह नहीं कि वे सचमुच वैसी ही होती हैं, बल्कि यह मतलब है कि उनमें आसक्त होने से बचने के लिए उन्हें वैसा ही मान लेना चाहिए। किसी वस्तु से विरक्त करना जिसका उद्देश्य है वह अपने उद्देश्य का साधन उसे बुरा कहकर ही कर सकता है। अतः स्त्रियों के संबंध में गोस्वामी जी ने जो कहा है, वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है, अर्थवाद मात्र है। पर उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इस युक्ति का अवलम्बन गोस्वामी जी ऐसे उदार और सरल प्रकृति के महात्मा के लिए उचित था, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं–निंदा से उनका जी दुःख सकता है। स्त्रियों से काम उत्पन्न होता है, धन से लोभ उत्पन्न होता है, प्रभुता से मद उत्पन्न होता है, इसलिए काम, मद, लोभ आदि से बचने की उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए वैराग्य का उपदेश देने वाले कंचन कामिनी और प्रभुत्त्व की निंदा करते हैं। बस इसी रीति का पालन तुलसी ने भी किया है। वे थे तो बैरागी ही।"[21]

इसलिए तुलसीदास की दृष्टि में 'रामचरितमानस' में नारी का देवी पार्वती व माता कौशल्या, माता सुमित्रा, देवी अनुसूया के रूप में ममतामयी रूप देखने को मिलता है। सीता के रूप में एक आदर्श पतिव्रता, त्यागमयी का और करुणामयी नारी के रूप में देखा गया है तो भीलनी शबरी जैसी प्रेममयी नारी का चित्रण भी है। तो वहीं मंथरा और कैकई जैसी नरियाँ धर्म विरुद्ध कार्य करती हुई नजर आई हैं। उसी प्रकार कामुक प्रवृत्ति की विलासिनी शूर्पणखा जैसी नारी का वर्णन भी किया गया

है। आज तक भी संसार में निंदनीय हैं और कोई भी अपनी कन्याओं के नाम कैकई, मंथरा या शूर्पणखा रखने से कतराते हैं। इसी सन्दर्भ में डॉ. बुद्ध प्रकाश ने कहा- "भारतीय धर्म एवं संस्कृति में नारी का धर्म उच्च कोटि का तभी बनता है जब वह करुणा और त्याग की मनोवृत्तियों से सुशोभित हो रही है।"[22] इसी प्रकार चंद्रावली त्रिपाठी कहते हैं, "नारी करुणा की मूर्ति के रूप में सदैव से पूजनीय है।"[23]

निष्कर्ष

वास्तव में तुलसीदास नारी विरोधी नहीं थे लोगों ने इस समाज ने उन्हें ऐसा मान लिया। तुलसी ने तो 'रामचरितमानस' में नारी को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी को समाज में नैतिक मूल्यों का विकास करना था और समाज का विकास नारी पर भी निर्भर था इसलिए तुलसी ने एक सभ्य नैतिक समाज का निर्माण करने हेतु नारी के विषय में कुछ उपदेशात्मक बातें कहीं वो लोगों को नारी-विरोधी लगी जबकि तुलसी ने वो बातें नारी-पुरुष दोनों के ही हित में कही है ताकि एक सभ्य समाज विकसित हो सके। अतः तुलसी की दृष्टि मे नारी ममत्व, प्रेम, त्याग, करुणा, वत्सलता एवं क्षमा की देवी हैं। इसलिए तुलसी ने भी माता पार्वती, अनुसूया कौशल्या, सुमित्रा एवं सीता को पूजनीय माना तथा मंथरा, कैकई, शूर्पणखा को निंदनीय माना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, संस्करण-36, गीताप्रेस गोरखपुर मोतीलाल जालान प्रकाशन, 'सुंदरकाण्ड', पृ0 सं0- 444
2. तुलसीदास, 'रामचरितमानस', पृ.सं. 360, अरण्यकाण्ड, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रकाशन मोतीलाल जालान, संस्करण-36.
3. गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', श्री विनायकी टीका सहित दोहा संख्या - 200, पृ0 सं0 - 328, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002. भाग-1
4. गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', संस्करण, 1994, अयोध्या कांड, दोहा संख्या-56, पृ0 सं0 81, टवस. -2, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2.
5. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा संख्या-2. प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
6. तुलसीदास, 'रामचरितमानस', अयोध्या कांड, दोहा संख्या, 74, पृ0 संख्या-101, भाग-2, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस, गोरखपुर
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्या कांड दोहा संख्या-71 पृ संख्या 99, भाग-2, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
8. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा संख्या - 158 पृ सं-158, भाग-2, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
9. तुलसीदास, रामचरितमानस, भाग-2, अयोध्यकांड दोहा संख्या-12, पृ0 सं0-32, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस, गोरखपुर
10. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण - 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, अरण्यकाण्ड, पृ0 सं. 369रू
11. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण - 36, गीता, प्रेस, गोरखपुर बालकांड, पृ0 सं0 46.
12. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण- 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकांड, पृ0 सं0 47
13. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण-36, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकांड, दोहा संख्या - 57(क), पृ0 सं0- 50
14. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण - 36, गीत प्रेस, गोरखपुर, अरण्यकांड, पृ0 सं0. 360
15. डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, 'गोस्वामी तुलसीदास', संस्करण - 1999, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, पृ0 सं0- 70
16. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण-36, गीता प्रेस, गोरखपुर, 'किष्किन्धाकाण्ड', पृ0 सं0- 402

17. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण-36, गीता प्रेस, गोरखपुर, 'अरण्यकाण्ड' पृ0 सं0-383.
18. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण - 36,गीता प्रेस, गोरखपुर, किष्किन्धाकांड, पृ0सं0 - 399.
19. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण - 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, पृ0 सं0- 148
20. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण- 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, पृ0 सं0 -230.
21. डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, 'गोस्वामी तुलसीदास' संस्करण-1999, चिन्तन प्रकाशन कानपुर पृ0 सं. 69-70
22. भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, दुर्गावती प्रकाशन, गोरखपुर।
23. डॉ. सरस्वती मिश्रा, भारतीय स्त्रियों की परिस्थिति, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

हरियाणा में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं का राजनीतिक नेतृत्व : प्रतिनिधित्व, निर्णय-निर्माण और सशक्तीकरण का अध्ययन

पूजा शर्मा
शोधार्थी
डॉ. राकेश रोहिला
विश्वविद्यालय : बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक

सारांश

यह शोध-पत्र हरियाणा की पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और नेतृत्व का अध्ययन करता है। पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण स्तर पर लोकतांत्रिक भागीदारी और स्थानीय विकास का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। महिलाओं के लिए आरक्षण ने उन्हें ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद में प्रवेश का अवसर दिया है।

हरियाणा में महिलाओं के लिए पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसका उद्देश्य महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाना और उन्हें स्थानीय निर्णय-निर्माण में शामिल करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आरक्षण ने महिलाओं का संख्यात्मक प्रतिनिधित्व बढ़ाया है, लेकिन वास्तविक सशक्तीकरण अभी भी शिक्षा, प्रशिक्षण, सामाजिक समर्थन और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता पर निर्भर करता है।

मुख्य शब्द : महिला नेतृत्व, पंचायती राज, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, सशक्तीकरण, ग्रामीण शासन, हरियाणा।

1. प्रस्तावना

लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज के सभी वर्गों को शासन में भाग लेने का अवसर मिले। लंबे समय तक महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सीमित रही। पितृसत्तात्मक सोच, शिक्षा की कमी, आर्थिक निर्भरता और राजनीतिक संसाधनों तक कम पहुँच इसके प्रमुख कारण रहे हैं।

पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण नागरिकों को स्थानीय शासन में भागीदारी का अवसर देती हैं। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद के माध्यम से सड़क, पानी, स्वच्छता, स्वास्थ्य, शिक्षा और ग्रामीण विकास से जुड़े निर्णय लिए जाते हैं।

73वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए कम-से-कम एक-तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया। हरियाणा ने आगे बढ़कर महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की। यह प्रावधान पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न स्तरों पर लागू किया गया है।

महिला आरक्षण का उद्देश्य केवल महिलाओं की संख्या बढ़ाना नहीं, बल्कि उन्हें निर्णय-निर्माण और स्थानीय विकास में प्रभावी भूमिका देना भी है। इसलिए यह अध्ययन महिला प्रतिनिधित्व और वास्तविक राजनीतिक सशक्तीकरण के संबंध को समझने का प्रयास करता है।

2. अध्ययन की आवश्यकता और उद्देश्य

हरियाणा में महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ा है, लेकिन यह जानना आवश्यक है कि वे पंचायतों में कितनी प्रभावी भूमिका निभा रही हैं। कई बार महिला प्रतिनिधि निर्वाचित होने के बाद भी निर्णयों के लिए परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर रहती हैं। दूसरी ओर, अनेक महिलाएँ पंचायत बैठकों और विकास कार्यों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य

- हरियाणा की पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का अध्ययन करना।
- 50 प्रतिशत महिला आरक्षण के प्रभाव का विश्लेषण करना।
- महिला प्रतिनिधियों की निर्णय-निर्माण में भूमिका को समझना।
- महिला सरपंचों और पंचों के सामने आने वाली चुनौतियों का अध्ययन करना।
- पंचायतों में महिला नेतृत्व के ग्रामीण विकास पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
- महिला प्रतिनिधियों के राजनीतिक सशक्तीकरण का मूल्यांकन करना।
- महिला पंचायत प्रतिनिधियों की भूमिका को मजबूत करने के लिए सुझाव देना।

3. शोध-पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के लिए हरियाणा पंचायती राज अधिनियम, महिला आरक्षण से संबंधित सरकारी दस्तावेज़ और उपलब्ध शोध-पत्रों का उपयोग किया गया है।

महिला राजनीतिक नेतृत्व को निम्नलिखित आधारों पर समझा गया है :

- पंचायत चुनाव में प्रतिनिधित्व।
- पंचायत बैठकों में भागीदारी।
- निर्णय लेने की स्वतंत्रता।
- सरकारी अधिकारियों से संपर्क।
- पंचायत बजट और योजनाओं की जानकारी।
- ग्राम सभा में भूमिका।
- स्थानीय विकास कार्यों की निगरानी।
- परिवार और समाज का सहयोग।

भविष्य में इस विषय पर प्राथमिक शोध के लिए महिला सरपंचों, पंचों, पंचायत समिति सदस्यों, पंचायत सचिवों और ग्रामीण नागरिकों के साक्षात्कार लिए जा सकते हैं।

4. हरियाणा में महिला आरक्षण

हरियाणा पंचायती राज संस्थाओं में पहले महिलाओं के लिए कम-से-कम एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था थी द। वर्ष 2020 में हरियाणा पंचायती राज द्वितीय संशोधन अधिनियम के माध्यम से महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान

किया गया है।

यह आरक्षण ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद के स्तर पर लागू होता है। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण महिलाओं को राजनीतिक संस्थाओं में प्रवेश का अधिक अवसर मिला। बड़ी संख्या में महिलाएँ सरपंच, पंच और पंचायत समिति सदस्य के रूप में निर्वाचित हुईं।

50 प्रतिशत आरक्षण का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि इससे महिलाओं का प्रतिनिधित्व केवल प्रतीकात्मक नहीं रहता। पंचायतों में महिलाओं की पर्याप्त संख्या होने से उनकी सामूहिक आवाज़ मजबूत हो सकती है और स्थानीय राजनीति की प्राथमिकताओं में परिवर्तन आ सकता है।

5. निर्णय-निर्माण में महिलाओं की भूमिका

महिला प्रतिनिधित्व का वास्तविक मूल्यांकन इस बात से किया जाना चाहिए कि महिलाएँ निर्णय-निर्माण में कितनी सक्रिय हैं। यदि महिला प्रतिनिधि पंचायत बैठकों में भाग लेती हैं, समस्याएँ उठाती हैं और योजनाओं की निगरानी करती हैं, तो यह प्रभावी राजनीतिक भागीदारी मानी जा सकती है।

महिला प्रतिनिधियों की भूमिका को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व हैं :

- शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता।
- पंचायत कानूनों की जानकारी।
- सरकारी योजनाओं का ज्ञान।
- अधिकारियों से संवाद करने की क्षमता।
- परिवार का सहयोग।
- आर्थिक स्वतंत्रता।
- सार्वजनिक बोलने का आत्मविश्वास।
- प्रशिक्षण और अनुभव।
- ग्राम सभा की सक्रियता।

जिन महिला प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण और सामाजिक सहयोग मिलता है, वे पंचायत के कार्यों में अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। इसके विपरीत, परिवार का अत्यधिक नियंत्रण और सामाजिक दबाव उनकी स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है।

6. महिला प्रतिनिधियों की चुनौतियाँ

महिला पंचायत प्रतिनिधियों के सामने सामाजिक, पारिवारिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ होती हैं। ग्रामीण समाज में पितृसत्तात्मक सोच के कारण कई बार महिलाओं को राजनीतिक निर्णय लेने में स्वतंत्रता नहीं मिलती।

प्रमुख चुनौतियाँ

- परिवार के पुरुष सदस्यों का अधिक हस्तक्षेप।
- पंचायत कार्यों और कानूनों की जानकारी का अभाव।
- सार्वजनिक बैठकों में बोलने में झिझक।
- सामाजिक आलोचना और दबाव।
- शिक्षा और डिजिटल जानकारी की कमी।
- घरेलू जिम्मेदारियों का बोझ।

- राजनीतिक गुटबाजी।
- प्रशासनिक अधिकारियों से संवाद में कठिनाई।
- महिला नेतृत्व को गंभीरता से न लेना।
- पंचायत बजट और योजनाओं की सीमित जानकारी।

कुछ स्थानों पर महिला प्रतिनिधि के स्थान पर उनके पति या परिवार के पुरुष सदस्य पंचायत कार्यों में सक्रिय हो जाते हैं। इससे महिला आरक्षण का उद्देश्य कमजोर हो सकता है। इसलिए महिला प्रतिनिधियों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

7. महिला नेतृत्व और ग्रामीण विकास

महिला प्रतिनिधि ग्रामीण विकास की ऐसी समस्याओं को अधिक महत्व दे सकती हैं जो परिवार और दैनिक जीवन से जुड़ी होती हैं। इनमें पेयजल, स्वच्छता, विद्यालय, स्वास्थ्य, पोषण और महिला सुरक्षा प्रमुख हैं।

महिला नेतृत्व से निम्नलिखित क्षेत्रों में सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है :

- पेयजल और स्वच्छता।
- बालिकाओं की शिक्षा।
- स्वास्थ्य और पोषण।
- महिला सुरक्षा।
- वृद्ध और दिव्यांग सहायता।
- स्वयं सहायता समूह।
- सरकारी योजनाओं की जानकारी।
- ग्रामीण रोजगार।
- घरेलू हिंसा के विरुद्ध जागरूकता।

महिला प्रतिनिधियों की सक्रियता से पंचायत के निर्णय अधिक समावेशी हो सकते हैं। वे महिलाओं, बच्चों और कमजोर वर्गों की समस्याओं को पंचायत के सामने रख सकती हैं।

8. राजनीतिक सशक्तीकरण

राजनीतिक सशक्तीकरण का अर्थ है–निर्णय लेने, अपनी बात रखने और सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करने की क्षमता। पंचायत चुनाव में भागीदारी महिलाओं को राजनीतिक अनुभव और सार्वजनिक पहचान प्रदान करती है।

पंचायत का अनुभव महिलाओं में निम्नलिखित परिवर्तन ला सकता है :

- सार्वजनिक बोलने का आत्मविश्वास बढ़ना।
- सरकारी अधिकारियों से संवाद की क्षमता विकसित होना।
- सरकारी योजनाओं की जानकारी मिलना।
- स्थानीय समस्याओं की समझ बढ़ना।
- परिवार में निर्णय लेने की भूमिका मजबूत होना।
- भविष्य में उच्च राजनीतिक संस्थाओं में भागीदारी की संभावना बढ़ना।
- अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणा बनना।

राजनीतिक सशक्तीकरण एक क्रमिक प्रक्रिया है। पहली बार निर्वाचित महिला को प्रशासनिक प्रक्रिया समझने में समय लग सकता है। प्रशिक्षण और अनुभव के माध्यम से उसकी भूमिका अधिक प्रभावी बन सकती है।

9. प्रमुख निष्कर्ष

- महिला आरक्षण ने हरियाणा में महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाया है।
- 50 प्रतिशत आरक्षण से महिलाओं को पंचायतों में अधिक संख्या में प्रवेश मिला है।
- महिलाओं की उपस्थिति ने ग्रामीण राजनीति को अधिक समावेशी बनाया है।
- महिला प्रतिनिधियों ने स्थानीय समस्याओं को राजनीतिक मंच पर उठाने का अवसर प्राप्त किया है।
- प्रतिनिधित्व और वास्तविक निर्णय-क्षमता में अभी भी अंतर है।
- परिवार और पुरुष रिश्तेदारों का हस्तक्षेप महिला नेतृत्व को प्रभावित कर सकता है।
- शिक्षा, प्रशिक्षण और प्रशासनिक जानकारी महिला नेतृत्व को मजबूत बनाते हैं।
- महिला नेतृत्व से स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों को प्राथमिकता मिल सकती है।
- पंचायत का अनुभव महिलाओं में आत्मविश्वास और राजनीतिक जागरूकता बढ़ा सकता है।
- महिला प्रतिनिधित्व को दीर्घकालीन राजनीतिक नेतृत्व से जोड़ने की आवश्यकता है।

10. सुझाव और निष्कर्ष

सुझाव

- महिला प्रतिनिधियों के लिए नियमित प्रशिक्षण आयोजित किया जाए।
- प्रशिक्षण में पंचायत कानून, बजट, योजनाएँ और डिजिटल सेवाएँ शामिल हों।
- महिला प्रतिनिधियों को अधिकारियों से सीधे संवाद की सुविधा दी जाए।
- पंचायत बैठकों में उनकी स्वतंत्र भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
- परिवार के पुरुष सदस्यों के अनावश्यक हस्तक्षेप को रोका जाए।
- ग्राम सभा को अधिक सक्रिय बनाया जाए।
- महिला प्रतिनिधियों के लिए जिला स्तर पर सहायता केंद्र स्थापित किए जाएँ।
- पंचायत संबंधी जानकारी सरल हिंदी में उपलब्ध कराई जाए।
- महिला प्रतिनिधियों को डिजिटल प्रशासन का प्रशिक्षण दिया जाए।
- सफल महिला प्रतिनिधियों के कार्यों को अन्य पंचायतों के सामने प्रस्तुत किया जाए।

निष्कर्ष

हरियाणा में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इस व्यवस्था ने ग्रामीण महिलाओं को राजनीतिक संस्थाओं में प्रवेश का अवसर दिया है द।

महिला आरक्षण से महिलाओं की संख्या बढ़ी है और उन्हें स्थानीय समस्याओं पर बोलने का मंच मिला है। महिला प्रतिनिधि पेयजल, स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े मुद्दों को पंचायत के सामने ला सकती हैं।

फिर भी केवल संख्या बढ़ना पर्याप्त नहीं है। वास्तविक राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए महिलाओं को स्वतंत्र निर्णय लेने, पंचायत बैठकों में बोलने, बजट समझने और सरकारी अधिकारियों से संवाद करने का अवसर मिलना चाहिए।

अंततः कहा जा सकता है कि हरियाणा में महिला आरक्षण ने राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मजबूत नींव तैयार की है। अब आवश्यकता इस बात की है कि महिला प्रतिनिधित्व को प्रभावी भागीदारी और स्थायी राजनीतिक नेतृत्व में बदला जाए।

संदर्भ सूची

- भारत सरकार, पंचायती राज मंत्रालय, हरियाणा में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण संबंधी जानकारी।
- हरियाणा पंचायती राज द्वितीय संशोधन अधिनियम, 2020।
- हरियाणा पंचायती राज अधिनियम, 1994।
- पंचायती राज और महिला सशक्तीकरण से संबंधित सरकारी दस्तावेज़।
- ग्रामीण शासन और महिला राजनीतिक भागीदारी से संबंधित शोध-पत्र।

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. रीजा. आर. एस

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

क्रिस्त्यन कॉलेज काट्टाकडा

तिरुवनन्तपुरम, केरल, केरल विश्वविद्यालय

In recognition of the publication of the paper entitled

शमशेर की कविताओं में आधुनिकता बोध

Published in July to September 2026

Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KanchanLata
ISSN 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

मोनिका रानी
शोधार्थी पीएच.डी.(हिंदी)
डॉ. शिबा
शोध निर्देशिका, सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, पीलीबंगा हनुमानगढ़

In recognition of the publication of the paper entitled

भीष्म साहनी के उपन्यासों में नारी कुंठा

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr V Singh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Prof. Anjali Yadav
Email: dranjaliyadav55@gmail.com
Sapna Viswakarma
Email: sapanavishwakarma16@gmail.com

In recognition of the publication of the paper entitled

महर्षि कपिलः

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr V Singh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

अश्वनी कुमार
सहायक प्रोफेसर, अतिथि संकाय, संस्कृत विभाग,
हि. प्र. विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला।

In recognition of the publication of the paper entitled

पाणिनीय व्याकरण की अध्ययन-अध्यापन पद्धति

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

अंशु भटनागर

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद (उ.प्र.)

डॉ. मधु श्रीवास्तव

शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष-संस्कृत विभाग एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद (उ.प्र.)

In recognition of the publication of the paper entitled

तत्त्व व्यवस्था तथा आचार की दृष्टि से सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. राखी सक्सेना
सह प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक
जगदीश कुमार धुर्वे
पीएच.डी. शोधार्थी, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग, कॅरियर कॉलेज (ऑटोनॉम), बी.एच.ई.एल., भोपाल (मध्यप्रदेश)

In recognition of the publication of the paper entitled

प्रधानमंत्री आवास योजना का भोपाल जिले में क्रियान्वयन एवं सामाजिक-आर्थिक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive
Dr Vsingh
Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. दीप्ति सुधीरकुमार देशपांडे
आसि. प्रोफ़ेसर,
शेठ श्री गिरधरलाल डी.एल.एड. कालेज, दाहोद

In recognition of the publication of the paper entitled

'वेलकम' (Welcome)

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KanchanLata
ISSN 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Monika Sahai
Associate Professor and Head
Department of Psychology
S. N. Sen B. V. P. G. College, Kanpur, Uttar Pradesh, India

In recognition of the publication of the paper entitled

Psychological Well-being and Happiness Among Adolescents of Working and Non-working Mothers

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr V singh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

अनिल प्रदीप पन्ना
शोधार्थी, इतिहास विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

In recognition of the publication of the paper entitled

विस्थापन और जनजातिय संघर्ष, जल-जंगल-जमीन एवं जनआक्रोश झारखण्ड के संदर्भ में

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr V Singh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

प्रेम रोशन एक्का

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

मधुपुर महाविद्यालय मधुपुर, देवघर।

In recognition of the publication of the paper entitled

जनजातीय विस्थापन एवं समस्या : झारखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में

Published in July to September 2026

Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr V Singh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

विनोद टाना भगत
शोधार्थी, विश्वविद्यालय कुँड़ुख़ विभाग
राँची विश्वविद्यालय राँची

In recognition of the publication of the paper entitled

कुँड़ुख़ बेंजा नु मंडला नेग (मंड़वा एतअना)

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. ए. व्हि. सूर्यवंशी
प्राचार्य, बी.एल.डी.इ. संस्था
बसवेश्वर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
बसवन बागेवाडी

In recognition of the publication of the paper entitled

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में चित्रित नारी दृष्टि

Published in July to September 2026
Volume-11, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.